दक्षिण भारत के मंदिर

भारत—देश और लोग

दक्षिण भारत के मंदिर

के. आर. श्रीनिवासन

अनुवाद
उमेश दत्त दीक्षित

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1867-5

पहला संस्करण : 1996 *(शक 1918)*

TEMPLES OF SOUTH INDIA *(Hindi)*

रु. 51.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

मूल अंग्रेजी पुस्तक के तृतीय संस्करण का प्राक्कथन

यह पुस्तक, दक्षिण भारतीय मदिरों के अविराम, कालक्रमानुसार, एक विशाल भू-भाग और लंबी समयावधि में, अपने अनेक क्षेत्रीय मुहावरों तथा प्रारूपों में पल्लवित होती विकास गाथा की विशद छवि की झांकी प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। कालानुसार तथा क्षेत्रीय प्रारूपों के इस वर्णन में प्रतिनिधि तथा अति महत्वपूर्ण उदाहरणों की चर्चा पर्याप्त विस्तार से हुई है।

इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन सन 1972 में हुआ था। वैसे इसका लेखन मुख्यतया सामान्य पाठकों को ध्यान में रखकर किया गया था, किंतु ज्ञात हुआ है कि यह एक प्राथमिक संदर्भ पुस्तिका के रूप मे भी बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका दूसरा तथा परिवर्द्धित सस्करण सन 1979 में प्रकाशित हुआ था।

पुस्तक के इस तीसरे संस्करण में अनेक स्थलों पर और भी महत्वपूर्ण सामग्री संजोई गई है।

तिरुचिरापल्ली **के. आर. श्रीनिवासन**

चित्रों की सूची

श्वेत-श्याम

रंगीन

परिचय

भारतवर्ष में एक धार्मिक संस्थान तथा पूजा स्थल के रूप में मंदिरों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। एक ढांचे के रूप में जिसमें कोई देवता प्रतिष्ठित अथवा कोई अन्य पूज्य वस्तु स्थापित हो, जिसमें प्रदक्षिणा, सेवा भक्ति तथा पूजा स्थान हो। भारतीय प्रायद्वीप के विभिन्न भागों में मंदिरों ने अपनी एक विविध विकास यात्रा तय की है। यह सब स्थानीय आवश्यकताओ, आस्था तथा विषय विशेष के अनुसार हुआ है। निश्चय ही इसमें विचार विनिमय तथा पारस्परिक विचारों के आदान प्रदान का काफी योगदान रहा। यद्यपि मंदिरो के मूल तत्व तथा उनकी पूजा विधि वेद तथा पुराण स्रोतों से निसृत हुई किंतु सदियों के काल प्रवाह में उन्होंने अपने एक विशेष ढंग तथा शैली को अपनाया। यह इसलिए भी हुआ कि यह परंपरा मूल रूप में उत्तर भारत से प्रारंभ हुई और पूरे देश में फैली। ईसा पूर्व युग में जब जैन और बौद्ध धर्म विरोधी स्वरों के साथ उभर कर सामने आए तो उन्होंने अपनी गाथाएं, आस्थाएं, देवताओं के आकार प्रकार, पूजा संबंधी क्रियाकलाप आदि सभी बातें मंदिरों की पूजा विधि से ही लीं, किंतु किंचित प्रकारांतर से वे ही अपनाई, जो कि उनकी अपनी पूजा विधि, अपने देवता की महिमा के अनुरूप थीं। मंदिर मूलतया अपने आकार प्रकार तथा बनावट के लिए इस बात पर निर्भर रहे कि उनमें कौन से देवता की स्थापना है ? उसकी पूजा विधि किस प्रकार की है ? उपरोक्त तीनों धर्म मूलतया भारतीय होने के कारण, उनके मंदिरों के आकार प्रकार में उन पर कोई बाहरी प्रभाव नहीं है। जो कुछ भी उन्होंने लिया है वह अपने ही देश की परंपरा से प्राप्त किया है। यही कारण है कि तीनों ही प्रकार के मंदिरों की बनावट और उनका स्थापत्य शुद्ध देशीय सिद्धांतों और स्थापत्य की परंपरागत शैली के अनुसार ही है। हां, अपनी विभिन्न आस्था और विश्वासों के अनुसार पहचान की दृष्टि से उनमें अपने मतों के लिए विशिष्ट महत्व रखने वाले कुछ परिवर्तन अवश्य किए गए हैं।

इनके निर्माता या कारीगर स्थपति तथा शिल्पी, एक ही श्रेणी के लोग थे। जिनके निर्माण के ढंग तथा बनावट एवं स्थापत्य के, स्वकीय, किंतु एक जैसे ही सिद्धांत थे। वे पुरोहितों के साथ मिलकर काम करते थे जिन्हें कर्मकांड आराध्य

के वैशिष्ट्य तथा उसकी पूजा विधि का ज्ञान था। ये लोग ही मिलकर मंदिर का प्रारूप तैयार करते थे और उनमें उन नई बातों का समावेश भी करते थे जो स्थिति विशेष में आवश्यक होती थीं। यही बात विग्रह की स्थापना तथा भवन के सौंदर्य नियोजन पर लागू होती थी। मूर्तियों तथा स्थापत्य का अलंकरण भी इसी तालमेल से होता था। इसके फलस्वरूप ही वास्तु, शिल्प तथा आगम शास्त्रों तथा सिद्धांतों का विकास हुआ। मंदिर की रचना, निर्माण तथा विग्रह पूजा के लिए जो भी ज्ञात था अथवा आवश्यक था वह सब विधि विधान में आया। इस प्रकार भारतीय मनीषा प्रणीत भारतीय स्थापत्य के मूल आधार शुद्ध भारतीय हैं, उन्हें हिंदू, जैन अथवा बौद्ध स्थापत्य कहकर विभाजित नहीं किया जा सकता, जैसा कि बहुधा प्रयास होता है।

सुसंगठित हिंदू, जैन तथा बौद्ध धर्म अपने प्रारंभिक विकास काल में ही विंध्याचल तथा वहां के वनों के पार दक्षिण तक पहुंच चुके थे। इसका मुख्य कारण उसकी अपनी जीवनी शक्ति थी। यह विस्तार अनेक कालखंडों में हुआ। ऐसे जैसे कि एक लहर के बाद दूसरी लहर आगे बढ़ती जाती है। यह जरूर था कि ये धर्म दक्षिण भारत में प्रचलित धर्मों के साथ घुलमिल गए। उसका कारण था कि वहां प्रचलित धर्मों, वहां की संस्कृति, सामाजिक बनावट, परंपराएं, धर्मविश्वास इतने जीवंत थे कि उन्हें नए धर्म को अपने में सन्निविष्ट करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। वहां की भाषाएं और उनका साहित्य भी इतना समृद्ध था, जिससे यह संभव हो सका। इन संपर्कों को मौर्य विजयों ने और अधिक प्रोत्साहन दिया जबकि मौर्य साम्राज्य की सीमा मैसूर पठार के उत्तरी छोर को छूने लगी। मौर्य शासक अशोक जो कि स्वयं बौद्ध धर्म का संरक्षक था, उसने भी स्वीकारा कि दक्षिण में उसके साम्राज्य की सीमा के परे ऐसे अनेक संगठित तथा स्थिर राज्य हैं जिनकी अपनी संस्कृति है। उसने उन सबसे पड़ोसी जैसे, मित्रता के संबंध रखे और दक्षिण प्रदेश में स्थित अपने प्रशासकों द्वारा बौद्ध धर्म का संदेश उन दूरस्थ प्रदेशों तक पहुंचाने में भी सफलता पाई।

चट्टानों को काटकर, उत्खनन द्वारा आवासीय निर्माण की परंपरा जो बिहार में गया के पास के चैत्यों और विहारों की रचना शिल्प में दृष्टिगत होती है, सम्राट अशोक द्वारा प्रारंभ की गई और उसी के प्रयास से वह परंपरा पश्चिमी प्रदेशों तथा दक्षिण तक पहुंची। इस कला विधि में लकड़ी और ईंटों से बनने वाला मूल नमूना पत्थरों पर उतारा गया। कारण यह था कि लकड़ी अथवा कपड़े आदि से बनी चीजें बहुत दिनों तक टिकती नहीं थीं। इस प्रकार की प्रस्तर मूर्तिकला तथा स्थापत्य ने इन कला रूपों को स्थायित्व प्रदान किया। यह विधि पहले पहल बौद्धों ने अपनाई और बाद में हिंदू तथा जैन समुदायों ने भी इसको अपनाया। इसी के कारण तत्कालीन स्मारक सदियों तक सुरक्षित रहे और हमें उनसे तत्कालीन धार्मिक

स्थापत्य और मूर्तिकला के वारे में जानकारी प्राप्त होती है। पूर्वी आंध्र तथा उत्तरी कर्नाटक के क्षेत्रों में ईंट के बने स्तूप तथा चैत्य मिले हैं, वे वस्तुतया मंदिर ही हैं और वे इतनी कालावधि तक बने रहे, इसका मुख्य कारण यही है कि उनके ऊपर पत्थर की एक परत चढ़ाई गई थी और उस पर अनेक प्रकार की मूर्तियां उत्कीर्ण की गई थीं। पत्थर की बनी इनकी चहारदीवारी तो शुद्ध रूप से लकड़ी की चहारदीवारी के नमूने पर ही बनी है जो कि इनकी बनावट, जोड़ तथा एक दूसरे में फंसाने के ढंग से स्पष्ट परिलक्षित होती है। इनके निर्माण में मूलतया तो ईंटों का ही उपयोग हुआ है, किंतु इनमें स्थायित्व के लिए पत्थर का प्रयोग किया गया है। ये स्तूप तथा चैत्य अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं का स्पष्ट दर्शन कराते हैं जो उनके समकालीन उत्तर तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशों के मंदिरों में दृष्टिगत नहीं होती हैं।

छठी और सातवीं शताब्दी ईस्वी से दक्षिण के हिंदुओं और जैनों ने भी प्रस्तर माध्यम को अपनाया और चट्टानों को काटकर गुहा मंदिर बनवाए। ऐसे भी मंदिर बने जब एक ही चट्टान को काटकर उसे मंदिर का रूप दिया गया और इस प्रकार अंततः मंदिर पत्थर के बनने लगे। आज हमें दक्षिण प्रायद्वीप में इस प्रकार के प्रस्तर निर्मित मंदिर हजारों की संख्या में प्राप्य हैं, जहां बहुत से मदिरों में तो आज पूजा भी होती है। ये मंदिर अनेक कालावधियों में बने और सदियों तक उनका निर्माण होता रहा। संभवतया ये निर्माण इसलिए सभव हुआ कि भारत का दक्षिणी प्रदेश बाह्य आक्रमणों तथा उनसे उत्पन्न उत्पीड़न से अछूता रहा, दूसरे स्थानीय राज्य सशक्त रहे और समाज भी संपन्न तथा समृद्ध रहा। यहा के प्राचीन हिंदू और जैन मंदिर भी राजकीय संरक्षण से बने और बढ़े। चालुक्य, पल्लव तथा पांड्य राजाओं ने तथा कई अन्य दूसरे छोटे राजाओं ने भी इस परंपरा को कायम रखा। उस समय के अभिजात्य वर्ग, व्यापारिक संस्थानों तथा कृषि कर्म एवं दूसरे कारीगरी के काम में लगे लोगों में भी काफी समृद्धि थी। इसी कारण उन्होंने भी मंदिर बनाने की इस परंपरा में अपना योगदान दिया। फलतः दक्षिण मे हर गांव, कस्बे और शहर में छोटे, बडे मंदिरों की एक श्रृंखला-सी बन गई। इसी कारण यह क्षेत्र मंदिरों का प्रदेश के नाम से जाना जाने लगा। मंदिरो के बारे मे जानकारी उनमें लगे शिलालेखों से प्राप्त होती है। तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति की अनेक बातों का ज्ञान भी इनसे मिलता है। चोल राजाओं के समय से (नौवीं तथा दसवीं शती) ये मंदिर समग्र ग्रामीण तथा नगर जीवन की धुरी बन गए थे, उनमें धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक अर्थात समस्त जीवन समाहित था। इसीलिए ये वस्त्र, स्थापत्य, मूर्तिकला तथा अन्य कलारूपों के अप्रतिम भंडार बन गए थे।

जैसे जैसे हिंदू मंदिरों की प्रमुखता हुई और जैन मंदिरों का निर्माण प्रारंभ हुआ, वैसे वैसे बुद्ध धर्म लगभग विलीन-सा हो गया। यद्यपि अपने विकास काल में, इन तीनो धर्मो में स्वभावतया विचारों तथा परंपराओं का पारस्परिक आदान

प्रदान हुआ तथापि उनका मानदंड मूलतया देशीय ही रहा। उदाहरणार्थ बुद्ध को हिंदू देव परंपरा में कृष्ण के स्थान पर विष्णु का नौवा अवतार मान लिया गया और कृष्ण को विष्णु का पूर्णावतार स्वीकारा गया। महाबलिपुरम के एक प्राचीन गुहा मंदिर में उत्कीर्ण पल्लवकालीन शिलालेख से इसकी पुष्टि होती है। इसी प्रकार बौद्ध तांत्रिक कर्मकाड हिंदू पूजा पद्धति में समाहित हो गए। इस समय तक जैनियों ने मदुरै में अपने संघ स्थापित कर लिये थे और इसके पहले भी इनके दिगंबर संप्रदाय ने श्रवण बेलगोला (मैसूर) में अपने पैर जमा लिये थे। यहां से उनकी शाखाएं (गुच्छ) आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल तक फैलीं। इस बीच हिंदू धर्म का पुनर्जागरण हुआ जिसके मूल में शैव संतों 'नयनमार' तथा वैष्णव संतों 'आलवार' का मुख्य योगदान था। ये सभी संत समुदाय हिंदू देव कुल में समाहित होकर नए रूप तथा नाम से परिभाषित तथा अभिहित हुए तथा कर्मकांड के अंग बनकर उत्सव त्यौहारों के साथ एकाकार होकर हिंदू पंचांग में शामिल हो गए। महान् दार्शनिक तथा शिक्षक आदि शंकराचार्य ने पारंपरिक हिंदू 'षण्मतों' और तदनुरूप पूजा विधान का संस्कार किया, उसे सुधारा। इस पृष्ठभूमि में मंदिरों एवं उनमें पूजा व्यवस्थापन का अप्रतिम विकास हुआ।

दक्षिण के मंदिरों की प्रमुख विशेषताओं में, उनके सीढ़ीदार छोटे बड़े विमानों, उनमे लगे धुरीय तथा परिधीय मडपों—जिनकी छत समतल होती है, और ऊंचे गोपुर प्रवेश द्वारों को लिया जा सकता है, जबकि उत्तर के मंदिर प्रासाद जैसे महलनुमा होते हैं, उनके ऊपरी भाग गोलाई लिये हुए होते हैं और शिखर पर उत्तुंग आमलक होता है। मंडपों की छतें सीढ़ीदार उठती हुई होती हैं। दक्षिण में विमानों का प्रारूप, अपने अनेक प्रकारों तथा मानचित्रों सहित, सातवीं सदी से पहले ही विकसित हो चुका था। ये मुख्यरूपेण ईटों तथा लकड़ी से बनते थे। यह तथ्य महाबलीपुरम के एक ही पत्थर में उत्कीर्ण तथाकथित रथों की प्रतिकृति से स्वयं सिद्ध है—जिन्हें प्रारंभिक प्रस्तर विमानों के साक्ष्य के रूप में समझा जाना उचित होगा। इसी प्रकार मंडपों का साक्ष्य गुहामंदिरो से प्राप्त और गोपुरों के प्राचीन मंदिरों के प्रारूपों से होता है। ये शिला से अनायास तो बन नहीं सकते थे।

उस समय के समुद्री व्यापार ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, विशेषकर हिंद महासागर के पूर्व के देशों में—वहां भारतीय मुख्यतया व्यापार तथा बसने के लिए गए थे। यह कोई उपनिवेशिक आकांक्षा से नहीं था इसीलिए ये सब शांतिपूर्वक हो सका। और फलतः प्रवासी भारतीयों ने इन देशों की तत्कालीन संस्कृति, धर्म, कला तथा स्थापत्य आदि पर अपनी एक स्पष्ट छाप छोड़ी। इस क्षेत्र मे दक्षिण भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला का अंशदान बहुत बड़ी मात्रा मे दृष्टिगत होता है। सत्य तो यह है कि इन देशों में भारतीय धर्मो, कला तथा स्थापत्य को अपने जन्म स्थान से दूर, नई जमीन मिली, और इनका प्रभाव

आज भी वहां देखा जा सकता है। जावा (इंडोनेशिया) तथा कंबोडिया में, तंजावुर तथा मदुरै की ही तरह के स्थापत्य का प्रचलन, इन्हीं प्रवासी भारतीयों की देन है।

इसीलिए भारतीय मंदिरों के संपूर्ण अध्ययन के लिए दक्षिण के मंदिरो का अलग से विशद् अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। तभी उनके प्रारंभ, विभिन्न क्षेत्रीय शैलियों का दिक्काल में विकास तथा उत्तर एवं दक्षिण के मंदिरों की समानताओ एवं विभिन्नताओं का सम्यक् अध्ययन संभव है और साथ ही तभी यह तथ्य भी उजागर हो सकता है कि इन दोनों महान शैलियों ने किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित किया। आगे के पृष्ठों में इसी विचार से दक्षिण के मदिरों की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कारण स्थापत्य तथा कला के सरलतम पारिभाषिक शब्दों को भी जब भारतीय मंदिरों की व्याख्या के संदर्भ में, योरोपीय शास्त्रीय शब्दावली में प्रस्तुत किया जाता है तो उनसे बात नहीं बनती। इस पुस्तक में इसीलिए संस्कृत मूल के सर्वज्ञात शब्दों को ही उपयोग में लाया गया है जिनका वास्तु तथा शिल्प ग्रंथों में बड़ी मात्रा में प्रयोग किया गया है। दक्षिण में मंदिरों के दर्शनार्थी जिन शब्दों से भली भांति परिचित हैं, उन्हें ही मंदिरों के वर्णन में प्रयुक्त किया गया है। साथ ही पुस्तक के अंत में उन्हें एक शब्दावली के रूप में संगृहीत भी कर दिया गया है ताकि अंततः पाठकगण उनका और अधिक सार्थक उपयोग कर सके।

प्रारंभ–प्राचीन मंदिर

वस्तुओं तथा अति मानवीय प्रतीयमान तथ्यों की पूजा की परंपरा एक निश्चित स्थान पर और निश्चित विधा से करने की परंपरा मानव समाज में अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है। इनका प्रारंभ शताब्दियों के बाद आज भी साहित्यिक साक्ष्यों, परंपराओं तथा भौतिक अवशेषों में उपलब्ध हो जाता है। प्राचीन तमिलों के प्रदेश तमिलकम में किस प्रकार सुसंगठित पूजा परंपरा थी तथा किस प्रकार से जीवन नियमित था, इसकी छवि हमें प्राचीन तमिल साहित्य में पर्याप्त स्पष्टता से मिलती है। भारतीय प्रायद्वीप का धुर दक्षिण भाग जिसमें केरल प्रदेश भी सम्मिलित है, प्राचीन तमिलकम में आता था। यह प्राचीन तमिल साहित्य ईसा पूर्व अथवा ईसवी सन् के प्रारंभ काल का है। इस समय की जो साहित्यिक सामग्री हमें उपलब्ध है उसमें तत्कालीन अनेक ऐसी परंपराएं मिलती हैं जो आज भी प्रचलित हैं। बड़े बड़े पत्थरों को काट कर बनाए गए विभिन्न आकार प्रकार के अनेक स्मारक आज भी हैं। ये स्मारक अधिकतर अंत्येष्टि अथवा समाधि स्थान दर्शाते हैं और विंध्य पर्वत शृंखला के दक्षिण में दूर दूर तक पाए जाते हैं। ये स्मारक बहुत बड़े बड़े पत्थरों के बने हैं और उनके आकार प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि वे एक अति विकसित भौतिक सस्कृति के अवशेष हैं। तमिल के संगम साहित्य और बाद के साहित्यिक साक्ष्यों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस साहित्य में इस प्रकार का उल्लेख हुआ है कि आदर भावना से मृतक के स्मारक के रूप में ये पत्थर खड़े किए गए थे जिन्हें नाडुकल भी कहा जाता है। यह संस्कृति ईसा पूर्व के प्रथम सहस्राब्द में प्रारंभ हुई थी और हो सकता है यह उससे भी अधिक प्राचीन हो। इस संस्कृति का प्रचलन ईसवी सन् के बाद तक कायम रहा। और किसी न किसी रूप में सदियों तक ये पाषाण स्मारक बनते रहे।

इसी संगम साहित्य में हमें सामान्य जनों में बहुप्रचलित अनेक अन्य देवताओं तथा आत्माओं की पूजा का उल्लेख भी मिलता है। इससे हमें महा धर्मातरक ब्राह्मण धर्म (जिसे सुविधा के लिए हिंदू धर्म कहते हैं) बौद्ध तथा जैन धर्म, आजीवक धर्म आदि से पहले की प्रचलित पूजा पद्धति आदि का भी ज्ञान होता है। ये बाद के धर्म एक प्रकार से अधिक उदारवादी रहे। वस्तुतया स्थानीय देवताओं, पेड़ों पर

बसने वाली आत्माओं, नदियों, पर्वतों, गांव-नगर के संरक्षक, चौराहे, समुद्र तट, नदी के घाट, तालाब, झील आदि के किनारे रहने वाले भूत, प्रेतों, देवों तथा यक्षों आदि की सर्वात्मवादी पूजा परंपरा उत्तर भारत में प्राचीन काल से प्रचलित रही है। इसका स्पष्ट उदाहरण हमें उस कथा से मिलता है जिसमें शिशु बुद्ध को जन्म के तुरंत वाद शाक्यवर्धन यक्ष के मंदिर में ले जाया गया था।

छतविहीन मंदिर*

एक समय मे देवताओं तथा आत्माओं के वासस्थान के रूप में वृक्षों की पूजा का बड़ा प्रचलन था। कई प्रकार के वृक्ष इस श्रेणी में आते थे जैसे कि अल (बरगद), आरासु (पीपल), ईस्ती, इलंजी, कंदव, जामुन, केकाई, बन्नी, वेल्ली, वेम्बु (नीम), वेंमई आदि। कंदववृक्ष को मुरुगन (कार्तिकेय) तथा बरगद को शिव का वासस्थान जताया गया है। अति प्राचीन तमिल ग्रंथ 'अहनानूरु' में एक ऐसे बरगद के पेड़ का वर्णन आता है जिसकी चहारदीवारी ईटों की बनी थी और उस पेड़ की पूजा होती थी। इसे 'वृक्ष चैत्य' अथवा वृक्ष मंदिर का उदाहरण माना जा सकता है जो वस्तुतया बौद्ध परंपरा से परे था। बाद के शिलाव्यादिकारम् ग्रंथ में एक पोदिमनरम् बोधिवृक्ष के मंदिर का उल्लेख हुआ है जिसका बौद्धों से संबंधित होने का स्पष्ट संकेत है—वौद्ध साहित्य में इसे बोधिगृह के नाम से अभिहित किया गया है। इस प्रकार के सभी मदिर जो बिना छत वाले तथा खुली हवा वाले थे, छतविहीन मंदिरों की श्रेणी में आते हैं।

पुरातात्विक साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि वृक्ष पूजा हमारे यहां अति प्राचीन काल से प्रचलित है। हड़प्पा संस्कृति काल में लोग पेड़ों की पूजा करते थे। उत्तर तथा दक्षिण भारत में वृक्ष पूजा समान रूप से प्रचलित थी, इस तथ्य की पुष्टि अनेक बौद्ध ग्रंथों से होती है, जो वृक्ष पूजा को बुद्ध के जन्म के पहले से ही प्रचलित बताते हैं। बौद्ध ग्रथों में इन वृक्ष मदिरों को 'रुक्काचैत्य' (वृक्ष चैत्य अथवा चैत्य वृक्ष) कहा गया है। जबकि अति पूज्य बोधिवृक्ष के मदिरों को 'वोधिघर' कहते हैं। इस प्रकार के पूजित वृक्षों के साथ ही कभी कभी मंदिर भी होते हैं और कभी कभी वहां कोई मंदिर नहीं होता केवल वृक्ष ही—विग्रह के रूप में पूजा जाता है। उरुवेला स्थित वोधिवृक्ष की पूजा तो अति प्राचीन काल से होती रही है—उसे बुद्ध पूर्वकाल में पूजा जाता था और लोग वहां जाकर सेवा करते थे, दान दक्षिणा देते थे, उसे देवता अथवा यक्षदेव का वासस्थान माना जाता था। लोग शादी व्याह और संतान प्राप्ति आदि के लिए, उसकी मनौती मानते थे। दूसरे पेड़ों की भी इसी प्रकार

* खुले छत वाले मदिर, जिनमे केवल चहारदीवारी हो, छप्पर न हो

पूजा करने का प्रचलन था। इन पर फूल मालाएं चढ़ाई जाती थी, सुगंधित जल उन पर तथा उनके तने के चारों ओर चढ़ाया जाता था। कुछ लोग साफ बालू भी उनके चतुर्दिक बिछाते थे, तो कुछ चबूतरा (वरम) बनवाते थे। इन वृक्षों के चारों ओर प्रदक्षिणा के लिए छायादार दालान भी बनते थे, जिनमें उत्सव भी संपन्न होते थे और यह स्थान धार्मिक अनुष्ठानों हेतु भी प्रयुक्त होता था। कभी कभी इनके चारों ओर मेंड अथवा चहारदीवारी भी बनाई जाती थी, जिसे झंडियों, पताकाओं तथा छत्रों से सजाया जाता था।

चूंकि इन वृक्षों के चारों ओर जो निर्माण कार्य होता था वह केवल वृक्षों के समादर के लिए नहीं होता था वरन ये स्थान पूजा तथा धार्मिक अनुष्ठानों के काम भी आते थे, इसीलिए इन्होंने कालातर में एक विशेष स्थापत्य का आकार प्रकार ग्रहण कर लिया। यह तथ्य उत्तर तथा दक्षिण भारत के बोधिघरों के मूर्तिशिल्प में उजागर होता है। इस प्रकार के निर्माण भारतीय बौद्ध स्थलों के उत्खनन से प्रकाश में आए हैं, जो कि ईसा पूर्व की दूसरी शती तक के हैं। बोधिघरों को ऊंचे गलियारों के रूप में दर्शाया गया है, जो कभी तो छतदार और कभी मुक्ताकाशी होते थे। ये बोधिवृक्ष को घेर कर बनाए जाते थे और इनके नीचे ही वज्रासन होता था और घिरे हुए पवित्र स्थल (बोधि मांडा) तक जाने का प्रवेश द्वार इन्हीं से लगा होता था। 'अशोकावदान' में उल्लेख मिलता है कि सम्राट अशोक ने अपनी शपथ पूर्ण न होने पर बोधगया स्थित बोधि वृक्ष के चतुर्दिक एक गलियारा बनवाया था और 1000 कलशों में भरा सुगंधित जल बोधिवृक्ष के अभिषेक रूप में चढ़ाया था।

दक्षिण भारत में अमरावती बोधिघरों के दो प्रारूप मिलते हैं जिनमें एक तो अभी भी काफी कुछ ठीक है हालांकि उसकी देखरेख ठीक से नहीं हो रही है किंतु दूसरा क्षत-विक्षत है। पहला बोधिघर चौकोर है और जिसकी बगलें कोनों से आगे तक बढ़ी हुई हैं। इसमें दूसरा तल नीचे के बरामदे के ऊपर काफी ऊंचाई पर बना हुआ है। संभवतया इस प्रकार के अन्य बोधिघरों की तरह यहां भी ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां रही होंगी जो कि प्रस्तर पट्ट मे स्पष्ट उकेरी हुई प्राप्त नहीं होतीं। प्राचीन योजना के अनुसार इसमें चार सैट (समूह) रहे होगे जो चारों कोनों पर आठ स्तंभों की गणना बनाते होंगे। जिनमे से चार तो चारों कोनों पर होंगे और शेष चार कोनों के निकट ही जोड़ा बनाने के लिए खड़े किए गए होंगे। अमरावती से प्राप्त दूसरी प्रस्तर पट्ट आकृति में बौद्धघर को गोल तथा तीन मंजिल का दर्शाया गया है। इसमें भी जमीन पर ऊंचे स्तंभ हैं, जो ऊपर की दो मंजिलों को संभाले हुए हैं। अमरावती के प्रस्तर पट्ट पर वैशाली के प्रसिद्ध 'बहुपुत्र चैत्य' की प्रतिकृति भी दर्शाई गई है। यह चैत्य बुद्ध का बहुत प्रिय निवास स्थान था और वहां वैशाली प्रवास के बीच वे बहुधा जाते थे। इस प्रस्तर उत्कीर्णन में बुद्ध के इस चैत्य तक

जाने की अंतिम यात्रा का चित्रण है, यद्यपि वे इस यात्रा में इस चैत्य में ठहरे नहीं थे। इस दृश्य में तीन वृक्ष दिखाए गए हैं जिनमें से दो चहारदीवारी द्वारा घिरे हुए प्रदर्शित किए गए हैं। इनमें से जो प्रमुख वृक्ष दाहिनी ओर है, उसके चतुर्दिक वेदिका है और दो भक्तों को उसकी पूजा करते हुए दिखाया गया है जिनमें से एक तो हाथ जोड़े हुए है और दूसरा अपने बच्चे को वृक्ष की ओर किए हुए है। जैसे आशीष मांग रहा हो। इस प्रस्तर पट्ट चित्रण के नीचे यह लिखा हुआ है कि यह वैशाली का बहुपुत्र चैत्य है। संभवतया यह चित्रण वृक्ष चैत्य की प्राचीनता प्रदर्शित करने के लिए बनाया गया है कारण कि यह प्रस्तर पट्ट और शिलालेख दोनों ही सम्राट अशोक के समय के नहीं हैं, काफी बाद के है। बुद्ध घोष के अनुसार इस बोधिवृक्ष में कई शाखाएं थीं और लोग संतान प्राप्ति की इच्छा से उसकी पूजा करने आया करते थे। इससे उपरोक्त चित्रण की सहज ही व्याख्या हो जाती है कि उसमें दिखाए गए दो व्यक्तियों में से एक तो संतान प्राप्ति के लिए प्रार्थना कर रहा है और दूसरा सतान प्राप्ति के बाद आभार प्रकट कर रहा है और बालक को वृक्ष के सम्मुख करते हुए शिशु के कल्याण की कामना स्पष्ट परिलक्षित होती है।[1]

संक्षेप में बोधिघर के ढांचे तथा उसके आसपास के दालान आदि के निर्माण को एक प्रकार से बाद में आने वाले छतदार मंदिरों अर्थात विमानों आदि का प्रथम रूप माना जा सकता है। जो अधिकतर दो-तीन मंजिल के होते थे और जिनके भीतर पूजा विग्रह स्थापित होता था। तमिल शिलालेखों में इस प्रकार के निर्माणों को मलिकई (मालिका) कहा गया है और शिल्प तथा आगम साहित्य में मंदिर स्थापत्य के वर्णन में भी इसका संकेत मिलता है। अंतर केवल इतना है कि प्रारंभिक उदाहरण छतविहीन मंदिरों के हैं और बाद के उदाहरण छत वाले मंदिरों अथवा विमान सहित मंदिरों के है जिनमे पूजा विग्रह की स्थापना होती थी।

हिंदू संप्रदायों तथा पंथों की संगठित पूजा आराधना पद्धति प्रचलित होने के बाद भी, दक्षिण भारत—विशेषकर तमिल प्रदेश में, अति प्राचीन काल से वृक्ष पूजा की परंपरा चलती रही है। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि अधिकांश धार्मिक स्थलों में कोई न कोई पूज्य वृक्ष होता है और अधिकतर वह किसी न किसी नदी,

---

1 आरासु (पीपल वृक्ष) तथा वेम्बु (नीम) एक साथ, नदी अथवा तालाब के तट पर हों अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान पर हों, तो सतान प्राप्ति के लिए लोग उसकी सेवा और पूजा करते हैं और उसे अश्वत्थनारायण प्रदक्षिणा कहते है। सोमवार तथा अमावस्या के बाद नवचद्र दर्शन के दिन इनकी पूजा विशेष महत्व रखती है। आरासु को विष्णु नारायण प्रिय और जनार्दन का प्रिय बताया गया है। उसे पितरो का भी बहुत प्रिय घोषित किया गया है और इसीलिए संतान प्राप्ति के लिए पीपल वृक्ष की आराधना बहुत प्रचलित है।

तालाब अथवा किसी जल-स्रोत के पास स्थित होता है। यह भी कहा गया है कि सभी पवित्र स्थानों पर—स्थल, वृक्ष और तीर्थ होने आवश्यक हैं और साथ में मूर्ति अथवा विग्रह भी होना आवश्यक है तभी वह स्थान पवित्र स्थान अथवा तीर्थ स्थान बनता है। उदाहरण के लिए चिदंबरम् में तिल्लई स्थल—वृक्ष है, जांबुकेश्वरम् (तिरुचिरापल्ली के निकट) में जामुन का वृक्ष है, कांची में एकाम्ररंथ अथवा आम्र वृक्ष है और मदुरै में स्थल वृक्ष के रूप मे कदंब का पेड़ है। इस प्रकार के अनगिनत उदाहरण हैं और अधिकाश का संबंध शैव मत से है। प्राचीन तमिल ग्रंथों में कुछ वृक्षो को राजाओं तथा अन्य शासकों के साथ भी कावाल मरम अथवा गण चिह्नों के रूप में दर्शाया गया है। उदाहरणार्थ पनई, चेरवंश, अत्ती, चोल वंश तथा वेम्बु पांड्य राजाओं के राज चिह्नों के रूप में चित्रित हुए हैं।

मंदिरो का दूसरा प्रकार जो बौद्धों ने प्रारंभ किया उसे हम स्तूप के रूप में जानते हैं और जिसे बहुधा महाचैत्य भी कहा जाता है। प्रारंभ में स्तूप ठोस गुंबद अथवा अंडे के रूप में होते थे, जो कि बाद में एक बेलनाकार मेधि पर बनाए जाने लगे और उसके ऊपर यह अंडाकार गुंबद बनने लगा। इस रूप में स्तूप का प्रचलन दक्षिण भारत में प्रारंभ हुआ। मेधि का व्यास ऊपर के अंडे से बड़ा होता था, अतः उसके चतुर्दिक प्रदक्षिणा करने का थोड़ा-सा स्थान निकल आता था। इस प्रदक्षिणा पथ से लगा एक जंगला होता था, जो नीचे के तल के जंगले के अतिरिक्त होता था। सीधे खड़े स्तंभों को, जो थोड़ी थोड़ी दूरी देकर स्थापित किए जाते थे, अर्धमुखी शिला पट्टों से जोड़कर बनाया जाता था। मेधि एक चबूतरे के रूप में चारों दिशाओं की ओर उन्मुख बनाई जाती थी जिस पर स्तूप के सम्मुख दी जाने वाली पूजा भेंट सामग्री इन चबूतरों (आयकों) पर रखी जाती थी। कभी कभी वहां तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां भी बनती थीं, कभी कभी इन आयकों (चबूतरों) में 5 ऊंचे स्तंभ बाहर की ओर लगाए जाते थे जिन्हें आयक स्तंभ कहा जाता था। अंडे के ऊपर हर्मिका चौकोर रूप में होती थी, जिसके बीच में छत्र अथवा अनेक छत्र (छत्रावलि) स्थित होते थे। इस पूरे निर्माण के चतुर्दिक एक जंगला (रेलिंग) होता था जिसमें चारों ओर प्रवेश द्वार होते थे। यद्यपि वे सांची के तोरण द्वार जैसे अलंकरणों से सज्जित नहीं होते थे। ईटों के बने स्तूपों में अड, मेधि और आयक (चवूतरा) बने होते थे। प्रारंभ में तो उनके ऊपर एक प्लास्टर जैसा लेप चढ़ा दिया जाता था और अंड के ऊपर एक छल्लेदार बड़ी माला उसकी सज्जा के रूप में बनाई जाती थी। कृष्णा नदी घाटी तथा उसके आसपास के इलाकों में इन्हें गोलाई लिए हुए चट्टानों से घेर दिया जाता था। ये चूना पत्थर की चट्टानें यहा वहुतायत से प्राप्त होती थीं। पालनाड का चूना पत्थर संगमरमर की तरह होता है और उसकी वड़ी वड़ी चट्टानें बहुत आसानी से खोदकर निकाली जा सकती हैं और उन्हें अपेक्षित रूप में बनाया जा सकता है। इन शिलापट्टों पर बुद्ध के जीवन की अनेक गाथाएं

उत्कीर्ण की हुई हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक मूर्तियों, वस्तुओं तथा अल्पनाओं का चित्रण इन्हे सजाने के लिए किया गया है।

पहले के बने छोटे-बड़े स्तूप ठोस तथा विशाल थे किंतु शेप काफी कुछ पोले थे। उनके भीतर ईटों का काम था और उन पर तरह तरह की सज्जा थी—कहीं स्वास्तिक, कहीं हत्थेदार पहिया तो कहीं वृत्तों में ज्यामितीय समकोण वाले चतुर्भुज। बीच का स्थान ईट गारे से भर दिया जाता था। ये सारी सज्जा ईंटों की सुरक्षा के लिए आवश्यक थी और साथ ही स्तूप को स्थायित्व भी प्रदान करती थी, क्योंकि उसे काफी भार वहन करना होता था और प्राकृतिक तत्वों की मार भी झेलनी पड़ती थी। इन स्तूपों तथा महाचैत्यों में महात्मा बुद्ध और अन्य महात्माओं के अवशेषों को भी, इन स्तूपों में वद कर पर्याप्त सुरक्षित ढंग से रख दिया जाता था।

अमरावती का महाचैत्य अब खंडहर हो चुका है। उसकी आधारशिला सम्राट अशोक के समय में रखी गई थी बाद में उसे बड़ा किया गया और चूने के पत्थर की पट्टियों से ढांक दिया गया था, जिन पर तरह तरह की आकृतियां उकेरी गई थीं, उसके चारों तरफ एक रेलिंग (चार दीवारी) भी बनाई गई थी। प्रारंभ में गरी कपाड़ू, जगटयापेट और भट्टीप्रोलू के स्तूपों में भी आयक चबूतरा अच्छी तरह सज्जित किया जाता था और उसकी ऊपरी तह पर अनेक प्रकार की सज्जा उकेरी जाती थी। शेष बेलनाकार स्तूप पर इतनी सज्जा नहीं होती थी। यह शायद इसलिए भी था कि संभवतया आयक चबूतरा वेदी के रूप में काम आता था, जिस पर भक्त लोग फल, फूल और धूप आदि चढ़ाया करते थे। बेलनाकार भाग में अधिकतर सादी बटियां ही प्रयोग में आती थीं और उन पर बहुत कम ही खुदाई होती थी। कभी कभी किनारों पर थोड़ी सज्जा उकेरी जाती थी। किंतु इनमें लगे भित्तिस्तंभों पर सजावट का थोड़ा काम होता था। इन स्तंभों के शीर्ष घंटाकार होते थे और उन पर अनेक जानवरों की आकृतियां उकेरी रहती थीं। इनके साथ बुद्ध भगवान से संबंधित प्रतीकों के आसपास भक्तों की भी आकृतियां उकेरी जाती थीं। कालांतर में अन्यत्र अवस्थित स्तूपों की तरह जब इनका जीर्णोद्धार हुआ, तब भी शिल्पियों ने इन आयक चबूतरों पर विशेष ध्यान दिया। मेधि के ऊपर की परिक्रमा के ऊपर छत में लगे पत्थरों में बड़ी सुंदर सजावट देखने को मिलती है। इसी प्रकार की सज्जा नागार्जुनकोंडा, जगय्यापेट, घंटशाला तथा पेद्दा गंजाम के महाचैत्यों में भी प्राप्त होती है। वृत्त मे सीधे खड़े स्तंभो के ऊपर परिधि में इन शिलापट्टो को लगाया गया तथा उनके ऊपर ढलाई कर दी गई थी। मूलरूप में यह चहारदीवारी 200 वर्ष ईसा पूर्व की है किंतु सन् 150 और 200 ई. के वीच इसका जीर्णोद्धार हुआ। उसी समय इसकी चहारदीवारी भी बढ़ाई गई और सभी मरम्मत मूल शिल्प के अनुरूप की गई। इन स्तूपों की अंतिम सज्जा के रूप में, नीचे के भाग के अनेक शिलापट्टों को उखाड़कर, उन्हें पलटकर लगाया गया तथा उनकी सपाट

सतह पर नए ढंग से अनूठी सजावट की गई। यह कार्य सन् 200 से 250 ई. के बीच हुआ।

नागार्जुनकोंडा का महाचैत्य इच्छवाकु काल के प्रारंभिक वर्षो में बना था, जो अनावृत्त स्तूपों की बहुत सुंदर मिसाल है। इसकी ईटों पर प्लस्तर किया हुआ है तथा अंड को एक बड़ी माला से सजाया गया है—जिस पर की गई गचकारी देखने योग्य है। अमरावती का स्तूप तो ठोस है कितु इस स्तूप में बीचोंबीच एक स्तंभ है—जिससे आठ त्रिज्यात्मक दीवारें बाहरी दीवार से जुड़ी बनाई गई हैं। इस प्रकार इसकी संयोजना गाड़ी के एक पहिए जैसी लगती है—जिसमें मध्य भाग, तीलिया तथा नेमि सभी शामिल हैं। इसके साथ ही वृत्ताकार एक बाहरी दीवार भी थी जो भीतर की दीवार से त्रिज्याओं से जुड़ी थी। ये दोनों दीवारें अंड तथा मेधि का आधार थीं। भीतर की आड़ी तिरछी दीवारों के बीच भराई करके इस आकार को सहारा दिया गया था। संभवतया इसके बाहर की ओर एक वृत्ताकार चहारदीवारी भी थी। इस क्षेत्र के अनेक स्तूपो में शिला आवरण मिलते हैं जिन पर बड़ी सुंदर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं और उनके चारों ओर चहारदीवारी भी होती थी। इस क्षेत्र के स्तूपों में आयक चबूतरे अधिकतर पाए जाते हैं किंतु शालिहुंडम तथा रामतीर्थम मे ये नहीं हैं किंतु पहाड़ काटकर बनाए गए शंकरम् के स्तूप में एक ओर ये पाए गए हैं। इसी प्रकार पूर्वी समुद्र तट पर नागार्जुनकोंडा तथा अमरावती के बीच और दूसरी दिशा में शालिहुडम तक, शंकरम् स्तूप की तरह ही आयक चबूतरे स्तूपों के केवल एक ओर ही प्राप्त होते हैं।

इस संदर्भ में यह बात ध्यान देने योग्य है कि अमरावती स्तूप के नीचे से दफनाए गए लोगों के साक्ष्य मिले हैं किंतु नागार्जुनकोंडा के स्तूप में केवल एकाश्म स्मारक ही मिले हैं—यद्यपि ये पत्थर भी अमरावती के स्तूप के पत्थरों के समकालीन हैं। इस प्रकार के एकाश्म स्मारक तथा स्तूप दक्षिण भारत के आंध्र तथा मैसूर के उत्तरी भागों में कई स्थलों पर प्राप्त होते हैं—जहां जहां मौर्य साम्राज्य की जड़ें दक्षिण मे फैली थीं अथवा जिन स्थानों पर उत्तर भारतीय धर्मो तथा बौद्ध धर्म का प्रसार था। इसी से संभवतया स्तूप पूजा तथा स्तूपों के प्रति भक्ति भावना लोगों में उपजी हो क्योंकि मूल रूप में स्तूप तो अस्थिकलशों अथवा बर्तनों को दफनाने के निमित्त ही बनते थे। इस क्षेत्र में इसका प्रचार सहज ही हो गया, कारण यहां विशाल प्रस्तर खडों का बाहुल्य था। इसी मान्यता के चलते यह स्वीकार्य हो सकता है कि इन्हीं स्तूपों का प्रभाव था, जिससे कालांतर मे ईटों से स्तूपों की रचना होने लगी। कभी उन्हें आवरण के रूप में तो कभी बाहरी दीवार के रूप में, सुरक्षा की दृष्टि से बनाया गया। कभी कभी ये केवल स्तंभों के रूप में खड़े किए गए, जिन पर कोई और संरचना नहीं की गई अथवा कभी उन्हें आधार के रूप में प्रयुक्त किया गया। ईटों की अत्यधिक विकसित वास्तु-शैली, पत्थरों में नहीं अपनाई जा सकी—जो कि बहुधा

आकार प्रकार एवं बनावट में बहुत सादे होते थे और उन्हें परिधि की दीवार, छत ढालने आदि के काम में लाया जाता था। यह एक प्रकार से लकड़ी के काम की सादी नकल थी। वास्तविक प्रस्तर वास्तु-विन्यास, जिसमें अल्पना की संरचना, वास्तु-सिद्धांत, आधार, जोड़ प्रतिबल तथा भार वहन की सूक्ष्म बातें आती हैं, वह तब तक विकसित नहीं हो पाया था।

धुर दक्षिण में अथवा मौर्य साम्राज्य के दक्षिणी सीमांत पर जहां समृद्ध चेर, पाण्ड्य, चोल तथा सत्यपूत तमिल राज्य थे—वहां इन बौद्ध स्तूपों का प्रायः प्रचलन न था। किंतु तत्कालीन साहित्य में हिदू धर्म तथा जैन धर्म के साथ ही बुद्ध धर्म का भी संदर्भ मिलता है—यद्यपि ये उत्तर भारत मे अधिक प्रचलित थे। प्रथम सहस्राब्द तक आजीवकों का उल्लेख मिलता है, संभवतया बाद में वे जैन मतावलंबी हो गए। जैन धर्म तब तक मुख्यतया दिगंबर संप्रदाय वालों का ही था और मैसूर के दक्षिणी भाग तथा कन्नड़ प्रदेश मे उसकी जड़ें गहरी जम चुकी थीं।

महापापाणी मत तथा बड़े बड़े प्रस्तर खंडो तथा मृतकों को दफनाने के बाद उनकी स्मृति में खड़े किए गए वृहदकाय स्तंभों की पूजा का उल्लेख अनेक बार, अनेक स्थलों पर हुआ है। 'नाडुकल' (मेनहीर अथवा महापाषाण) स्तभों की पूजा प्रचलित थी, उनको ताड़ी तथा पशुओं की बलि से प्रसन्न किया जाता था, दीपदान होता था और ढेर के ढेर उबले हुए चावल (पेरमचोरु अथवा पवाडी) उनको नैवेद्य के रूप में अर्पित किए जाते थे। लोगों का विश्वास था कि मृतक ही प्रस्तर खंड बन जाते थे और उनमें देवत्व उपज आता था—इस प्रकार का उल्लेख साहित्य ग्रंथों में भी पाया जाता है। ये प्रस्तर खंड, किसी नायक, योद्धा, राजा तथा कभी कभी साधारण जनों की स्मृति में भी स्थापित किए जाते थे। जो स्त्रियां अपने पति की मृत्यु होने पर आग में आत्मदाह करती थीं—उनकी स्मृति में भी ये स्तंभ बनते थे। यह प्रथा पतिभक्ति की एक कसौटी-सी बन गई थी। ये पत्थर 'सती प्रस्तर' कहलाते थे—कालांतर के अभिलेखों में इन्हें 'तोस' अथवा 'मासत्तीक्कल' (महासती का काल) कहा गया है। इस प्रकार के 'सती प्रस्तर' अथवा स्मारक आध्र प्रदेश में कई स्थलों पर, विशेषकर नागार्जुनकोंडा में पाए गए हैं—जिनका समय ईसा की दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी है। इन्हें 'छाया खबस' अथवा 'छाया खंवस' कहा जाता था। चौथी सदी से आगे ये तमिल प्रदेश के कन्नड़ प्रदेश से लगे स्थानों में भी पाए जाते हैं, जबकि कन्नड़ प्रदेश में इनका चलन आम था। तमिल ग्रंथों में इस प्रकार के स्मारकों का— नाडुकल का कई जगह उल्लेख मिलता है और कई संदर्भो में इनका जिक्र आया है। इनके ऊपर गेरू के घोल से किसी ब्रश के द्वारा मृतक का नाम तथा उसकी वीरता की गाथा भी लिखने का प्रचलन था। पूजा स्थल को एक चहारदीवारी से घेर दिया जाता था। उसके सामने एक ढाल तथा भाला रख देते थे तथा उन्हें ताड़ी और भोजन भी अर्पित किया जाता था। छतविहीन

मंदिर का एक प्राचीन उदाहरण, कोयंबटूर जिले की रंगास्वामी पीक पर उपलब्ध है जहां पर एक ऊर्ध्वमुखी प्रस्तर स्तंभ धरती में गाड़ा गया है, उसके सामने एक त्रिशूल विद्यमान है तथा पत्थर के छोटे छोटे टुकड़ों से इस स्तंभ को घेर दिया गया है।

इस प्रकार की वीरपूजा संबंधी पीच्या अथवा वीरकाल जो कि किसी व्यक्ति विशेष की याद में अथवा उसकी कब्र के ऊपर स्थापित की जाती थी—बहुधा दोनों पार्श्वों में एक एक स्तंभ वाली होती थी। इसे महापाषाणी तंबू जैसा मंदिर भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें तीन स्तंभ होते थे और उनके ऊपर एक पटिया छा दी जाती थी—ठीक तिकोने तंबू की तरह। इसके पीछे की दीवार पर मूर्ति होती थी—जिसकी पूजा की जाती थी। तमिलनाडु के कोंगू क्षेत्र में, पश्चिमी जिलों में तथा कन्नड़ प्रदेश के मैसूर पठारी क्षेत्र तथा उसके आसपास के जिलों में इनकी बहुतायत है और इन्हें अन्नतमार कोबिल कहा जाता है। इन शिलापट्टों पर मूर्ति तो उकेरी ही जाती थी, साथ ही साथ सातवीं-आठवीं सदी एवं उसके बाद के अभिलेख भी अंकित मिलते हैं।

पूजा के स्थान के रूप में मंदिर में—पोदीइल, मनरम अथवा मुर्रम की संरचना में, पूज्य मूर्ति स्थापित होती थी—कभी कभी ये मात्र एक छोटे टीले के रूप में होते थे या फिर मात्र एक चबूतरा (मेदेई) ही होता था और अधिकतर किसी वृक्ष विशेष की छाया में होता था। कभी कभी ये त्रिपाषाणी होते थे—एक बड़ी पटिया को दो अन्य बड़े पाषाण स्तंभों पर टिका दिया जाता था। इस प्रकार की 'तेरी' संरचना आज भी दूरस्थ क्षेत्रों में देखने को मिल जाती है। कुछ चबूतरों पर एक स्तंभ अथवा कांडु होता था, जो देवता का प्रतीक माना जाता था। इस प्रकार के मंदिरों का उल्लेख कांडुडै-प-पोदीदूल कहा जाता है जिसका अर्थ है—पूजा का सार्वजनिक स्थान, जहां पर कांडु प्रतिष्ठापित हो। प्राचीन तमिल ग्रंथों में कांडु का उल्लेख आया है कि इस प्रकार के पूजागृह कांडु की पूजा के लिए बनते थे—इनमें कई स्तंभ होते थे और कांडु एक चबूतरे पर स्थापित रहता था। युवतिया स्नान के बाद इस स्थान को गोबर से लीपती पोतती थीं और कांडु को जल स्नान कराती थीं तथा उसके सामने निरंतर प्रदीप्त दीपक रखती थीं। हमें ये भी उल्लेख मिलता है कि बहुत से लोग इनकी पूजा अर्चना को आते थे तथा इसे भोग अथवा बलिक भी अर्पित करते थे।

तमिल महाकाव्य मणिमेकलाइ में बौद्धों द्वारा बुद्ध पिटक अथवा धम्मपिटक की पूजा का उल्लेख हुआ है। इसके संक्षिप्त विवरण से पता चलता है कि यह बहिर्मुखी दलों वाला वृत्ताकार पद्म पीठ रहा होगा। यह एक चतुर्भुज कुरसी पर आधारित रहा होगा। इस कुरसी का आकार भी कमलदल की तरह होगा और निश्चयपूर्वक यह सारी संरचना ईंटों की बनी होगी। अभी हाल में कावेरी नदी के

मुहाने पर स्थित प्राचीन चोलकालीन समुद्र तटीय नगर कावेरी पट्टनम् की खुदाई से एकमात्र साक्ष्य बुद्ध पद तिरुवादी (अथवा पुण्य पद) प्राप्त हुआ है, जिसे भगवान बुद्ध का पद चिह्न बताया गया है। यह चरण चिह्न पालनाड के चूने के पत्थर की पटिया पर उत्कीर्ण है और संभवतया चौथी सदी के आसपास का है। शायद यह किसी ईटों के चबूतरे पर कभी स्थापित रहा हो और शायद किसी मंदिर में रहा हो, जहां इसकी पूजा होती हो। इस प्रकार इन दो उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि तमिल प्रदेश में स्तूपों की पूजा तो नहीं होती थी किंतु बुद्ध पिटक तथा बुद्ध पद की पूजा अवश्य प्रचलित थी। यह स्थिति कई सदियों तक रही—जब तक कि बुद्ध की मूर्ति का आविर्भाव् नहीं हुआ।

अभी हाल में, तमिल तथा आंध्र प्रदेश के सीमावर्ती जिले चित्तूर स्थित गुडिमल्लम मंदिर की खुदाई से पता चलता है कि ईसा पूर्व दूसरी शती में लिंग तथा पीठ दोनों ही बलुहे पत्थर के बने होते थे और वे मुक्ताकाशी मंदिरों में स्थापित रहते थे, जहां इनकी पूजा होती थी। इन्हें ईंटों के गजपृष्ठीय अथवा बहुकोणीय मंदिरों में बहुत बाद में, संभवतया ईसा की पहली या दूसरी शती में प्रतिष्ठापित किया गया हो। ये मंदिर भी बहुकोण शिखर वाले होते थे।

छतवाले मंदिर

जहां कहीं भी इस प्रकार के मंच आराधना सामग्री प्रतीकों तथा प्रतिभाकारों को छतवाले मंदिरों में स्थान मिलता था, उन इमारतों की रचना, योजना तथा शैली की दृष्टि से लौकिक ही होती थी। केवल अंतर इतना होता था कि मंदिर को अधिक स्थायित्व देने वाली सामग्री, जैसे ईंट, मजबूत लकड़ी आदि से बनाया जाता था। उन पर पलस्तर भी अच्छा होता था तथा तरह तरह की चित्रकारी एवं पच्चीकारी का काम भी सजावट के लिए किया जाता था। वे भवन विशाल भी होते थे। जबकि साधारण जनों के आवास मिट्टी ठट्टर के बने होते थे—उन पर साधारण छप्पर होता था। तथा आकार में भी वे छोटे होते थे।

इस प्रकार का कोई भी मंदिर आज तमिलनाडु में उपलब्ध नहीं है—यद्यपि इस प्रकार के एकतल्ले और दुतल्ले मदिरों के शब्दचित्र तमिल संगम साहित्य में प्राप्त होते हैं। एक स्थान पर एक मंदिर का उल्लेख हुआ है जो ऊंची ऊंची दीवारों (ईटों की) तथा लकडी की शहतीरों से बना था और उसके भीतर की दीवार पर कडवुल प्रस्थापित था। यह भित्ति-चित्र भी हो सकता है या हो सकता है कि लकड़ी पर ही कोई नक्काशी की गई हो। इसी प्रकार के मुख्य आराध्य की, इन मंदिरों में पूजा होती थी। इस प्रकार के पूजा स्थलों अथवा मंदिरों को संगम साहित्य में कोट्टम्, नगरम्, कोइल और पल्ली नाम दिया गया है। स्पष्टतया ये नाम उन

संरचनाओं की योजना तथा शैली की ओर इंगित करते हैं। मणिमेखलाई महाकाव्य में ऐसे मंदिरों का उल्लेख है, जो ईटों के बने होते थे तथा जिनमें विशाल प्रवेश द्वार अथवा गोपुर होते थे। कुछ मंदिर एक से अधिक मंजिल के भी होते थे—जिन्हें 'मडम' कहते थे—इनमें कुछ तो किसी की स्मृति में भी बनाए जाते थे। तमिल तथा कन्नड़ के अभिलेखों से पता चलता है कि इस प्रकार के स्मारक-मंदिर पल्ली प्यदाई, ईसा की नौवीं तथा दसवीं सदी तक बनते रहे थे।

तमिलनाडु के धुर दक्षिण में, जैसा कि वहां के साहित्य से भी पता चलता है, विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न देवताओं का प्राधान्य था—पहाड़ी, घास के मैदान, नदी घाटी क्षेत्र, कृषि क्षेत्र, समुद्र तट तथा बंजर प्रदेश के अलग अलग देवता थे। इन्हें सियोन, मायोन, वेंडन, वलियोन, कोरांवेई अथवा काडुबल के नाम से पुकारा जाता था। इनके अतिरिक्त और भी छोटे छोटे देवता थे। ईसवी सन् के प्रारंभ होने के आसपास ही वैदिक धर्म, जैन, बौद्ध तथा आजीवक मतों ने दक्षिण भारत की भाषाओं, धार्मिक मान्यताओं तथा सांस्कृतिक चेतना पर अपना महत्वपूर्ण प्रभाव जमा लिया था। मौर्य साम्राज्य के विस्तार के राजनीति मानचित्र से भी इसी बात का पता चलता है कि दक्षिण में संगठित राज्यों, उनकी अपनी सुविकसित भाषा तथा संस्कृति के कारण, मौर्यों की वहां पर कुछ न चल पाई थी। इसी कारण उत्तर से वहां पहुंचे लोगों ने, स्थानीय भाषा को समझने की चेष्टा की ताकि वे आसानी से वहां के लोगों में अपने मत तथा विश्वास का प्रसार कर सकें। इस प्रक्रिया में उन्होंने स्वयं भी तमिल भाषा, साहित्य तथा व्याकरण से बहुत कुछ ग्रहण किया। संगम महाकवियों में अनेक रचनाकार ब्राह्मण तथा जैन थे। यही बात कुछ काल बाद कन्नड़ भाषा के साथ भी हुई। इस प्रकार बाहर से आए धर्म तथा सांस्कृतिक विचारों का वहां प्रसार हुआ। साथ ही स्थानीय भाषा, संस्कृति तथा धर्म ने नवागंतुक विचारधारा को भी प्रभावित किया। यह बात इस तरह और स्पष्ट हो जाती है कि जब भारतीय धर्म तथा विचार, देश से बाहर श्रीलंका, बर्मा, थाईलैंड, कंबोडिया और इंडोनेशिया आदि पहुंचे तो भारतीय तथा वहां के देवताओं में भी एक प्रकार की संश्लेषण क्रिया हुई—जिसने धर्म कथाओं, पूजाविधि तथा मूर्तिकला आदि को भी प्रभावित किया। हिंदू वैदिक धर्म जब तमिल प्रदेश में पहुंचा, जिसमें बहुत कुछ केरल का क्षेत्र भी समाहित था, तो उसने स्थानीय मतों, विश्वासों तथा वहां के पूजित देवकुल को भी आत्मसात कर लिया, बहुत-से देवताओं को उसने अपने देवताओं का ही रूप मान लिया। स्थानीय देवता मायोन कृष्ण अथवा विष्णु हो गया, वलियोन बालभद्र हो गए, कोर्रावी बन गई दुर्गा, सेयोन अथवा मुरुगन कार्तिकेय बन गए तथा वेंडन को इंद्र माना गया। संगम तथा उसकी अनुवर्ती काव्यधारा जो सातवीं सदी तक चली उसमें इस प्रकार के देवताओं तथा मदिरों के अनेक उल्लेख हैं—कोट्टम्, नगरम् तथा कोइल पूजास्थल जो शिव, इंद्र की सवारी

ऐरावत हाथी, उनके अस्त्र वज्र, कल्पवृक्ष अथवा सूर्य तथा चंद्र को समर्पित थे। यहां पर आगम पूजा का प्रारंभ भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। यद्यपि दिगंबर जैनों तथा बौद्धों का भी यहां इसी प्रकार प्रसार हुआ किंतु वह अधिक न था। इसी काल में शिव, विष्णु, दुर्गा, कार्तिकेय, सूर्य आदि देवताओं को मूर्त रूप मिला। यह संश्लेषण लगभग पांच सदियो—आठवीं से तेरहवीं सदी तक के आदान प्रदान से ही संभव हुआ, जिसमें दक्षिण ने समस्त देश की संस्कृति को बहुत कुछ दिया। उदाहरणार्थ शिव की नटराज अथवा दक्षिणमूर्ति के रूप में सकल्पना, देवी की ललिता के रूप में पूजा, भक्ति धारा के नयनमार तथा आलवारों की गरिमा, वैष्णव संतचरित लेखको का अवदान तथा अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, तथा द्वैत दर्शन—जिन्हें दक्षिण के आचार्यो शंकर, रामानुज तथा मध्व ने प्रतिपादित किया। कालांतर में इसी प्रकार दक्षिण भारत ने जैन तथा बौद्ध धर्मो को बहुत गहराई तक प्रभावित किया।

दक्षिण में इन प्राचीन देवताओं तथा मंदिरों का आज कोई अवशेष नहीं है क्योंकि वे सहज नष्ट होनेवाली चीजों के बने थे—जैसे कि लकड़ी और ईट आदि, फलतः काल-कवलित हो चुके हैं।

दक्षिण भारत का उत्तरी भाग जो दक्षिणी पठार कहलाता है—वह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य से निकटता के कारण अधिक प्रभावित हुआ। इस क्षेत्र में आंध्र तथा कन्नड़ प्रदेश के भाग भी आते हैं जहां पर उत्तर से आने वाली संस्कृति, उनकी भाषाओं (प्राकृत तथा संस्कृत) का, अपेक्षाकृत अन्य बातों के, अधिक प्रभाव पड़ा। इसी के कारण क्षेत्रीय साहित्य का विकास यहां विलंब से हुआ, फलतः इनसे तत्कालीन क्षेत्रीय परंपराओं तथा मान्यताओं की अधिक सूचना नहीं मिल पाती। किंतु खुदाई से प्राप्त साक्ष्यों से उस समय के धार्मिक विश्वासों की बांकी झांकी मिलती है, ठीक उसी प्रकार जैसी कि उत्तर भारत की पुराकालीन अवस्थिति है। यद्यपि उत्खनन से बौद्ध अवशेष अधिक प्राप्त हुए हैं किंतु तत्कालीन शैव, वैष्णव तथा अन्य मतों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। इनसे यह भी पता चलता है कि विभिन्न धर्मो तथा मतों के मंदिरों की बनावट, उनकी योजना तथा संरचना लगभग एक जैसी ही थी। धर्म या मत वैभिन्न्य केवल इन मंदिरों से प्राप्त आराध्यों के विषय में, उनकी बनावट, सज्जा आदि में ही झलकता है। जैन धर्म को संभवतया कन्नड़, तमिल तथा केरल प्रदेश में अधिक उपयुक्त वातावरण मिला तथापि उनके धर्म स्थान विशेषकर मंदिर आदि अपनी योजना तथा संरचना में हिंदू धार्मिक स्थलों से मिलते जुलते हैं—यह स्थिति आज भी यथावत् है। बौद्ध मंदिर इस क्षेत्र में शायद कम ही थे, अतः उनके बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती, यद्यपि बाद की सदियों की अनेक बुद्ध प्रतिमाएं कई स्थानों में उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। यदि उनका पता चलता तो वे भी हिंदू तथा जैन मंदिरों जैसी एकरूपता ही प्रस्तुत करते।

वास्तु-विन्यास की दृष्टि से ये सरल, अनलंकृत मंदिर तत्कालीन, लौकिक जन निवासों की तरह ही थे—कभी चौकोर, लंबे, वृत्ताकार, बहुकोणीय अथवा अंडाकार, कभी कभी ये षट्कोणीय तथा अष्टकोणीय भी होते थे तथा लकड़ी और ईटों से वनते थे। इस प्रकार के धार्मिक तथा लौकिक ढाचे ईसवी सन् के प्रारंभ तथा तत्काल बाद की उकेरी गई आकृतियों तथा मूर्तियों की नक्काशी में दृष्टिगत होते हैं—उदाहरणार्थ भारहुत और सांची—उत्तर में तथा दक्षिण में नागार्जुनकोंडा और अमरावती आदि स्थानों पर। इनकी चर्चा पहले ही योजना अंकन के रूप में की गई है जहां पर वृक्ष चैत्यों, बौद्ध स्तूपों तथा वौद्ध मांडा (**पोदी मनरम** तमिल में) का उल्लेख हुआ है।

इन चौकोर ढांचों की छत एक बिंदु (कूट) पर मिलती थी, वृत्ताकार अथवा अष्टकोणीय इमारतों की छत (कूट) गुंबद सरीखी होती थी। आयताकार संरचनाओं की छतें मेहराबदार (शाला) और कभी कभी वे त्रियंकी (सभा) भी बनाई जाती थीं—जैसी कि सीतामढ़ी तथा सोने भंडार में प्राप्त होती हैं। अंडाकार इमारतों की छतें लंबी रीढ़ वाली होती थीं और उन पर अनेक स्तूप अथवा कलश बने होते थे। जिन्हें 'शाला' भी कहा जाता था। बहुकोणीय संरचनाए (सामने की) अनेक नक्काशीदार फलकों में उपलब्ध हैं।

साहित्यिक विवरणों तथा मूर्तिकला के साक्ष्यों तथा कुछेक उत्खनित अवशेषों से (उदाहरणार्थ—बैराट के वृत्ताकार मंदिर, नागार्जुनकोंडा तथा शालिहुंडम के मंदिर तथा पश्चिमी दक्षिणावर्त तथा आंध्र के चेजेरना और तेर के मंदिर) यह स्पष्ट पता चलता है कि इन छत वाली संरचनाओं की छतें स्तभों पर आधारित होती थीं तथा बीच का भाग जालीदार सज्जा से भर दिया जाता था। कभी कभी ये सीधे दीवारों पर ही आधारित होती थीं किंतु सज्जा के लिए दीवारों में बाहर से स्तंभों की आकृति उकेर दी जाती थी। बहुधा ईट के मदिरों में भीतर की ओर भी स्तभ होते थे, जो छत को सहारा देते थे—जो लकड़ी की शहतीरों को आधार वनाकर निर्मित होती थीं। यह संपूर्ण ढांचा किसी ऊची कुरसी और चबूतरे (अधिष्ठान) पर बनाया जाता था।

गुंटूपल्ली का बहुकोणीय चैत्य (ईसा की दूसरी सदी) पूरी तरह ईंटों का बना हुआ है। प्रवेश द्वार में ईटों द्वारा ही लकड़ी के कपाटों के लिए स्थान बनाया गया था। स्पष्टतया छत मेहराबदार थी, जो ईटों की बनी थी—जिस पर प्लास्टर किया हुआ था। मेहराब में भीतर की ओर लकड़ी से आड़ी तिरछी आधार भित्ति-सी बनाई गई थी। जैसी कि चट्टान काटकर बनाए गए एक पूर्ववर्ती चैत्य में भी विद्यमान थी। विजयवाड़ा के निकट विद्याधरपुरम के चैत्य अवशेष बिल्कुल उसी प्रकार के हैं। आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले के शालिहुंडम नामक स्थान की खुदाई से एक स्तूप मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिसमें एक स्तूप की प्रतिकृति की पूजा होती

थी। यह वृत्ताकार चैत्य ईंटों का बना है। यहां विशालकाय दीवार को सीढ़ीनुमा बनाया गया है—जिसमें प्रवेश के लिए अग्रभाग में, बाद में बने मदिरों जैसा अंतराल भी उपलब्ध है। वहां पर एक ही रूप के और भी अनेक छोटे छोटे मंदिर हैं।

आंध्र प्रदेश के नागार्जुनकोंडा तथा दूसरे बौद्ध स्थलों पर ईंटों के बने चैत्य मंदिर विहार अथवा मठ से ही संबद्ध रहे हैं। ये अधिकतर विहार के प्रवेशद्वार से लगे दालान के दोनों ओर अथवा मुख्य स्तूप और महाचैत्य के अगल-बगल बने मिलते हैं। ये चैत्य बहुधा बिना छतवाले थे, इनमें से एक में स्तूप होता था तथा उसे स्तूप चैत्य कहते थे। दूसरे में बहुधा बुद्धचरण अथवा बुद्ध प्रतिमा होती थी—उसे बुद्ध चैत्य कहा जाता था। नागार्जुनकोंडा में आमतौर पर पुराकालीन अन्य स्वतंत्र बहुकोणीय मंदिरों अथवा चैत्यों के विषय में जानकारी थी। वहां एक वृत्ताकार ढांचा भी प्राप्त हुआ है और कुछेक मंदिरों की आयताकार योजना भी द्रष्टव्य है।

नागार्जुनकोंडा में खुदाई से बौद्ध धर्म से इतर धर्मो के मंदिरों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जो कि इक्ष्वाकु राजाओं के समय (ईसा की तीसरी तथा चौथी सदी) के हैं तथा शिव, विष्णु, कार्तिकेय एवं देवसेना को समर्पित थे। इनके गर्भगृह चौकोर अथवा बहुकोणीय हैं जो कि एक ऊंचे चबूतरे पर बने हैं। गर्भगृह के सामने, स्तंभों वाला एक मंडप तथा उस मंडप के अग्रभाग में एक और चबूतरे वाला रंगमंडप है। इसके साथ ही मंडप से लगा हुआ एक परिक्रमा पथ भी है। यह पूरी संरचना ईंटों की एक दीवार से घिरी है जिसमें सामने की ओर (पूर्व अथवा पश्चिम) में गोपुरम की शैली में प्रवेश द्वार बने हैं और उत्तर एवं दक्षिण में भी अनलंकृत छोटे प्रवेश द्वार है। मंडप के स्तंभ पालनाड के चूने के पत्थर के बने हैं—उनका आधार चौकोर तथा बीच का भाग तिरछा नोकदार होता था जो कि शीर्ष तक जाता था और अंत में पुनः चौकोर रूप में हो जाता था। ऊपर के भाग में लकड़ी की शहतीरों को फसाने के लिए साचे बने रहते थे, ये शहतीरें बहुधा अनुलंब अवस्था में ही रखी जाती थीं। इन शहतीरों के ऊपर स्थानीय मचेरला पत्थर की पट्टियां रख दी जाती थीं और संभवतया इनके ऊपर ईट और गारे से दालान या छज्जा बना दिया जाता था। बहुकोणीय मंदिर बहुधा युग्म रूप में बनते थे और ईंटों के होते थे। पुष्पभद्रस्वामी के मदिर की तरह कभी कभी इनके ऊपर का भाग चूने के पत्थरों के स्तंभो पर टिकाया जाता था। आगे के भाग में ये स्तंभ सीधी रेखा मे होते थे तथा पीछे के भाग मे वर्तुलाकार, जिनके ऊपर उसी आकार की धन्नियां अथवा शहतीरें लगा दी जाती थी। खंभों के बीच का भाग दीवार से भर दिया जाता था। मंदिर के सामने, स्तभों वाले महामंडप के बीच मे कभी कभी चौकोर अर्धमंडप की संरचना भी होती थी। कभी कभी महामडप को पार्श्वो में कक्ष बनाकर

बढ़ा दिया जाता था तथा ये स्तंभयुक्त मंदिर कक्ष (मालिका-मालिकायै) महामंडप को तीन ओर से घेरे रहते थे। अधिकतर ये मंदिर एक ही देवालय वाले होते थे किंतु कभी कभी इन परिसरों में एकाधिक मंदिर भी होते थे। एक देवालय वाली संरचनाएं आयताकार, चौकोर अथवा बहुकोणीय होती थीं। जहां एक से अधिक देवालय थे वहां मंदिर अपनी योजना में एक से तथा विभिन्न शैली के भी बनते थे। इन मंदिरों की दीवारों पर बहुत अलंकरण नहीं होता था। मंडपों की छत सपाट होती थी किंतु मंदिर का शीर्षभाग—विशेषकर बहुकोणीय मंदिर के ऊपर का भाग गजपृष्ठीय होता था—जैसे कि हाथी की पीठ का उभार हो। यह पूर्ण विश्वास से नहीं कहा जा सकता कि चौकोर अथवा आयताकार ये मंदिर ही कालांतर में निर्मित होने वाले विमानों के पूर्व रूप थे—जिनका दक्षिण के मंदिरों में प्राधान्य है। किंतु इस बृहत उत्खनन से प्राप्त सामग्री एवं अवशेषों को देखकर कोई भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि उस समय के बौद्ध तथा उस धर्म से इतर सभी मंदिरों का वास्तु-विन्यास अथवा परंपरा एक जैसी ही थी।

कार्तिकेय स्वामी का मंदिर, पूर्वाभिमुख तथा चौकोर था एवं ईटों से बना था और उसके सामने एक संकरा अर्धमंडप था—जो ईटों से बना था। उसकी उत्तर दक्षिण धुरी के साथ ही बंद महामंडप था जिसमें पांच पांच स्तंभों की छह पंक्तियां थीं। पुष्पभद्रस्वामी मंदिर के पास वाले दूसरे कार्तिकेय मंदिर का मंडप चौकोर था और बंद भी। उसके पीछे की दीवार के बीचोंबीच एक चौकोर पीठिका थी जिसके दोनों कोनों पर स्तंभ थे। इस प्रकार यह स्तंभ वाले मंडप का आभास देताा था। पुष्पभद्रस्वामी मंदिर के मेहराबनुमा (गजपृष्ठाकार) गर्भगृह में स्थापित आराध्य प्रतिमा के ध्वजस्तंभ के लेख में मूर्ति का 'महादेव.पुष्पभद्रस्वामिन्' नाम से उल्लेख है।

अष्टभुजा स्वामी की मूर्ति लकड़ी की थी जिसकी आठ भुजाएं थीं—वह पत्थर की एक पीठिका पर स्थापित थी—जिस पीठिका पर अभिलेख खुदा हुआ था कि उसकी स्थापना ईसवी सन् 278 में हुई थी। इसी स्थान से प्राप्त एक शख पर भी इसी आशय का अभिलेख प्राप्त हुआ है। मदिर में सामने की ओर दो यज्ञमडप थे—एक आयताकार तथा दूसरा बहुकोणीय—दोनों में ही स्तंभ योजना थी। पीछे की ओर एक और बड़ा मंडप था, जिसके ध्वजस्तंभ के शीर्ष पर विष्णु का प्रतीक चक्र, आसीन था।

नदी के पुराने घाट के निकट पुतलागुदेम ग्राम में पूर्वाभिमुख एक मंदिर परिसर है जो विशेष महत्व का है। उसके महामंडप के उत्तरी एवं दक्षिणी पार्श्व में, ईंटों के बने, परिवार देवालय (कुल देवता) मिले हैं। इनकी छतें पत्थर की पतली पटिया से बनी हैं जो कि अन्य चौकोर, वृत्ताकार, अष्टकोणीय मंदिरों के फर्श का काम देती हैं।

इसी प्रकार के ईटों के बने मंदिर जो कि उत्तर इक्ष्वाकु तथा पूर्व चालुक्य काल के हैं (संभवतः छठी ई. सदी) आंध्र के श्री शैलम् योजना के जलमग्न होने वाले क्षेत्र में कर्नूल एवं महबूब नगर जिलों में—वीवापुरम, रंगापुर, गुमाकोंडा, वुडावेली तथा सिद्धेश्वरम आदि स्थानों में भी प्राप्त हुए हैं। ये मंदिर विन्यास में चौकोर हैं—इनके सामने कहीं अधिक अर्धमंडप प्राप्त होता है और कहीं कही वह प्राप्त नहीं होता। इनमें स्थापित लिंग, नदी के बहाव से प्रकृत्या ढले, बलुहे पत्थर के हैं जो कहीं कहीं पीठासीन है और कहीं पर पीठासीन नहीं भी हैं। पीठों की टोंटी उत्तरमुखी है। आराध्य की मूर्ति तो पत्थर की है किंतु शेष निर्माण ईटों तथा लकड़ी से किया गया है। अधिष्ठान ढली हुई ईटों के बने हैं। ऊपर के भाग के कुछ अवशेष भी ढले हुए ढंग से बने प्राप्त हुए हैं।

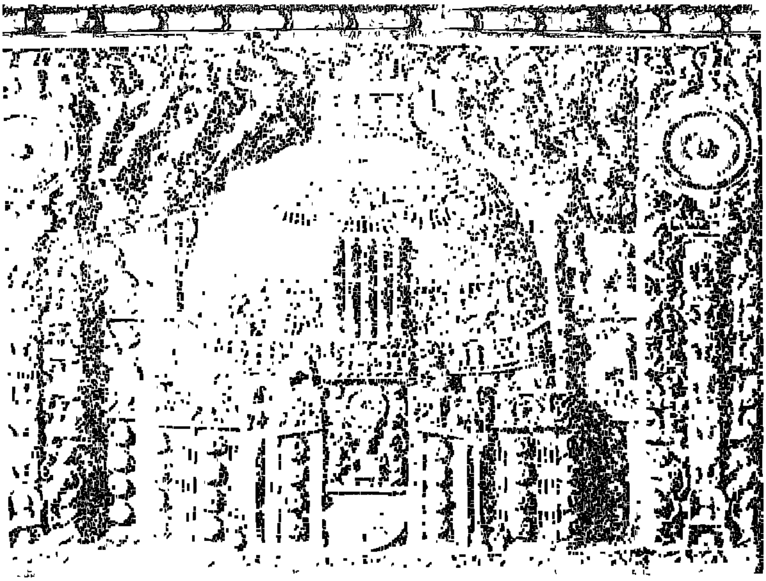
(डा. सुब्रमण्यम तथा आई. के. शर्मा)

यह अच्छा संयोग है कि इस काल के दो मेहरावनुमा या गुंबद वाले मंदिर लगभग पूरी तरह, अभी भी शेष हैं। ये मूलतया बौद्ध मंदिर हैं किंतु कालातर मे ये हिंदू देवालय बन गए। ये हैं—पश्चिमी दक्षिण में स्थित तेर का त्रिविक्रम तथा समुद्र तट अवस्थित चेजेरला के कपोतेश्वर मंदिर, दोनों ही ईसा की तीसरी तथा छठी सदी के बीच बने थे। दोनों में शैली तथा वास्तु की दृष्टि से कपोतेश्वर मंदिर अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। यह मंदिर बड़े आकार की ईटों का बना है तथा इसमें भीतर की ओर कही कोई प्लस्तर का चिह्न नहीं है, केवल सामने की ओर दो स्थानों पर प्लस्तर किया गया है किंतु यह मूल रूप में नहीं था, बाद का किया हुआ है। भीतर से पत्थर की पटियों की छत को प्रस्तर स्तंभो से टिकाया गया है, जो पांच पांच की दो पंक्तियों में बहुकोणीय शिखर के आधार हैं। उनके ऊपर पत्थर की शहतीरें हैं। नागार्जुनकोंडा शैली में ये शहतीरे लकड़ी की थीं, अतः यह अंतर स्पष्ट करता है कि ये संरचना बाद की है तथा प्रस्तर वास्तुकला में विकास का एक और सोपान जोड़ती है। मेहराबदार ईटों का शिखर, सीधे खड़े स्तंभों पर आधारित है, जो ईंट अथवा पत्थर के बने हैं। छत की पटियों में भी भराव दिखाई देता है। किनारों के ढले हुए कपोत, आले जैसी ग्रीवा तथा भौंधरी रीढ़वाला शिखर, पीछे की ओर ढलुआं है।

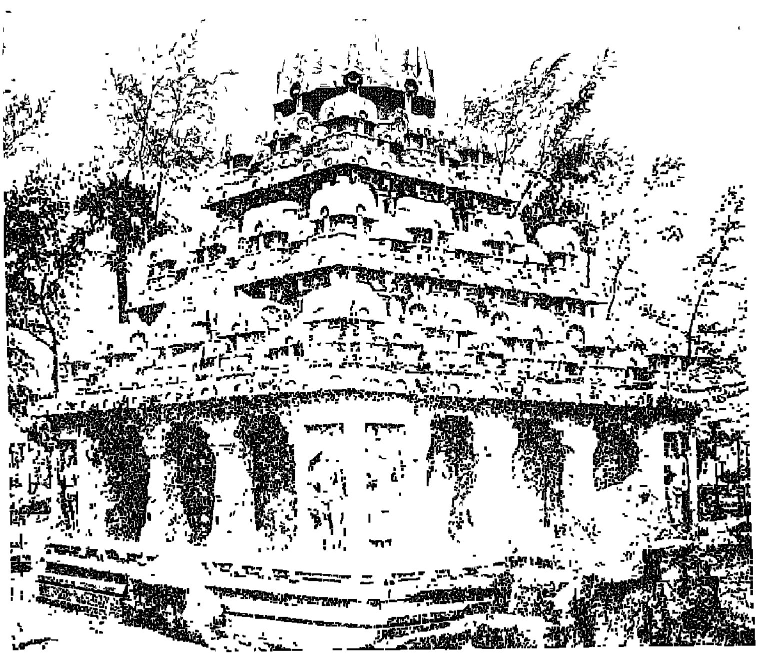
अभी हाल के उत्खनन से पता चलता है कि यह मंदिर मूलतया शैव पूजा स्थल था—जो कालातर में बौद्ध पूजा स्थान बन गया। ऐसा नहीं कि यह पहले बौद्ध मंदिर था और बाद में शैव मंदिर बन गया।

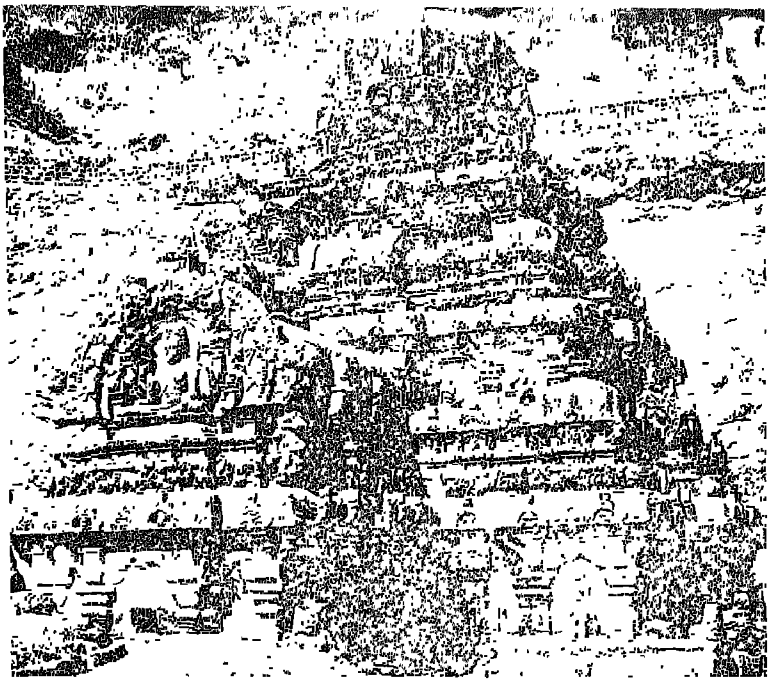
तेर के मंदिर में अव तक एक त्रिविक्रम की मूर्ति है—जो निश्चितरूपेण विकास के कुछ और सोपानों को उजागर करता है। यह मंदिर पूर्णरूपेण ईंटों से बना है। भीतर कोई स्तंभ नहीं है और न ही छत में पटियां हैं। शिखर की रीढ़ क्षैतिज है। वाहर की दीवार में स्तंभ बनाकर उसे दृढ़ता प्रदान की गई है। तहखाने

की रचना ईंटों की सीढ़ीदार चिनाई से बड़ी सावधानी से की गई है जिससे ऊपर तक जाते जाते बीच का छिद्र स्वतः बंद हो जाता है। भारतीय शिल्प में इस प्रक्रिया को कदलिकाकरण कहा जाता है। तेर के चैत्य के शिखरांत में एक बजरे के तख्ते (वलभिपट्ट) तथा नाव की पट्टिका जैसा नजर आता है, जो कि मध्य में आड़े रूप मे बने चार स्तंभों पर आधारित है, साथ में प्रकाश के लिए स्थान भी खुला छोड़ा हुआ है। यह पूरा विन्यास लकड़ी पर होने वाली नक्काशी की प्रतिकृति है। चेजेरला मंदिर के शिखर में नक्काशी का काम है। इन बातों को देखते हुए इन मंदिरों के शिखरों तथा एलौरा के विश्वकर्मा मंदिर एवं मामल्लपुरम के नकुल सहदेव मंदिर के शिखरों मे तथा उनके प्रतीकों में बहुत साम्य है।

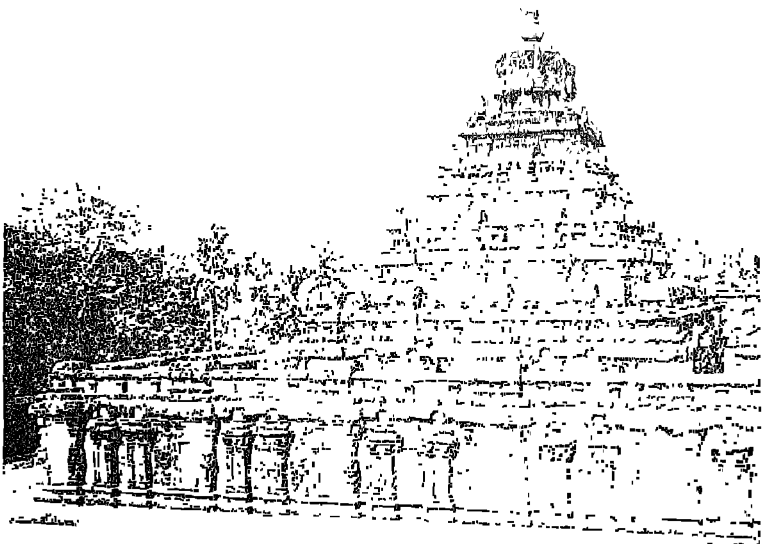


1 अमरावती—स्तूप पट्टी

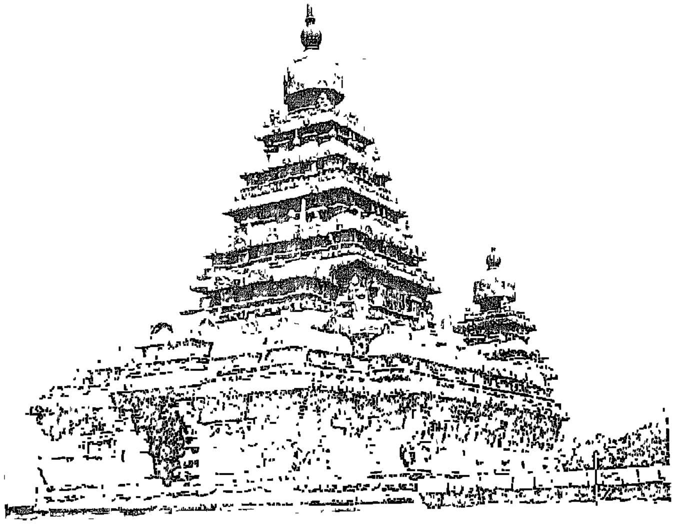




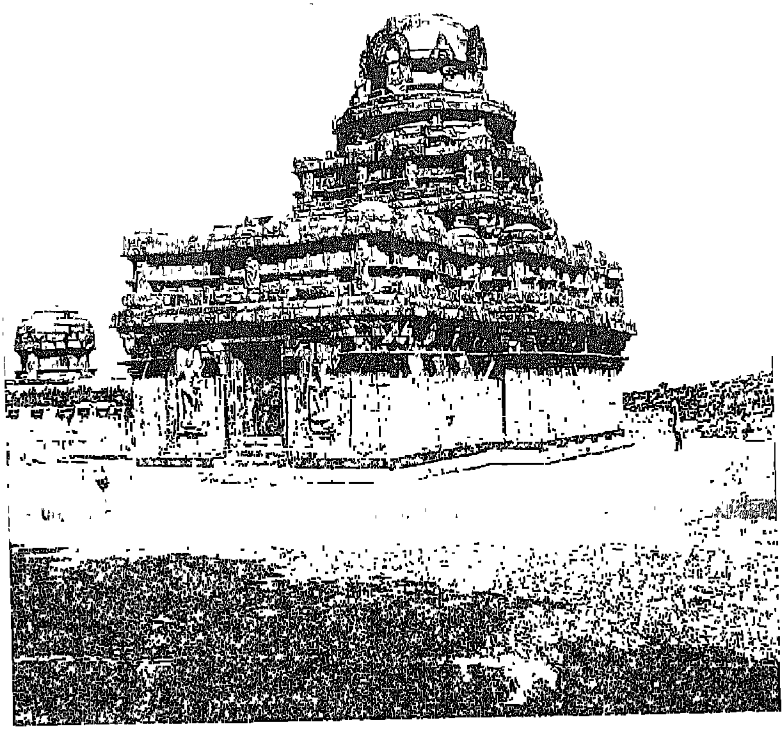
3. एलोरा—कैलास विमान बाहरी संरचना



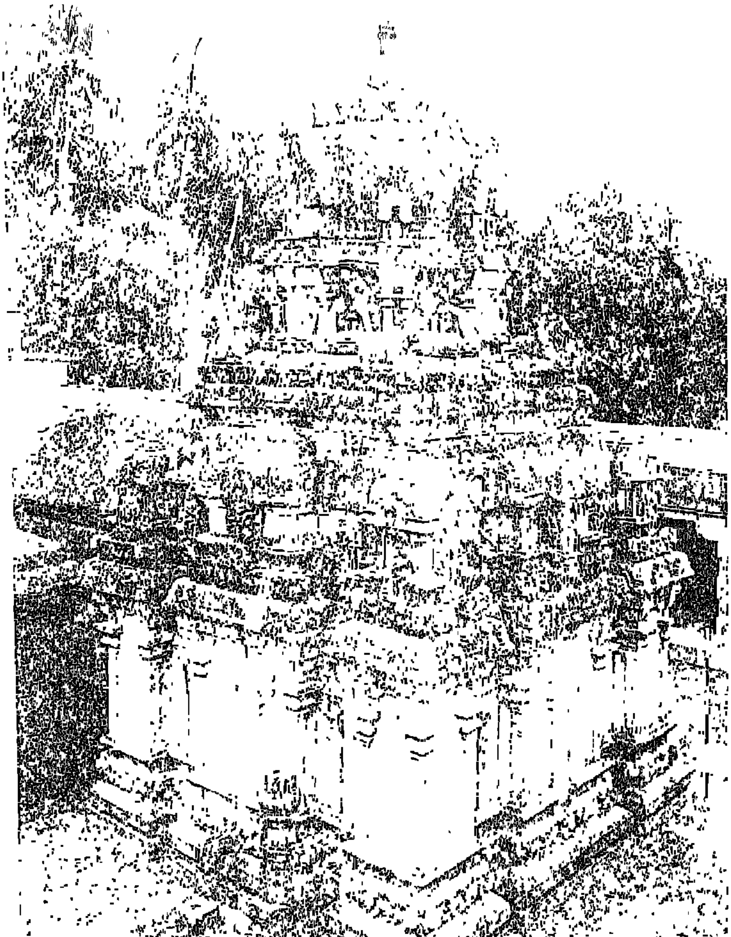
4. महाबलीपुरम—तट मंदिर



5 काचीपुरम–वैकुठ पेरुमल मदिर



6. तिरुवलीश्वरम–वालेश्वर मदिर



7 नर्तमलै—विजयालय चोलीश्वरम

प्रारंभिक शैल वास्तुकला

शैल गुहा मंदिर–लयन (बौद्ध)

प्रारंभ में जहां एक ओर वास्तु में लकड़ी तथा ईटों का उपयोग हो रहा था–दूसरी ओर उसी समय, अशोक के काल में शैल को काटकर मंदिर तथा दूसरे धार्मिक स्थान बनाने का एक आंदोलन-सा चल पड़ा था। चूंकि ये संरचनाएं अधिक स्थायी पदार्थ से वनी थी, इसलिए ये आज भी खड़ी हैं। चूंकि ये निर्माण, तत्कालीन ईट तथा लकड़ी की संरचनाओ की मूल प्रेरणा से ओतप्रोत थे विशेषकर अपने अग्रभाग के भीतरी हिस्से में तो वे ईट और लकड़ी के मंदिरो की शुद्ध अनुकृति थे, अतः हम बड़ी स्पप्टता से जान सकते हैं कि उस काल में पूजा स्थानों के सामने तथा भीतर की वास्तुकला कैसी होती थी। इस प्रक्रिया में खुदाई करके चट्टानों को काटकर, ईट तथा लकड़ी से बनी संरचनाओं जैसा निर्माण करने की कोशिश होती थी–कभी यह अनुकृति आंशिक होती थी, तो कभी शुद्ध पूर्ण अनुकृति। इसी कारण इसे वास्तुकला की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, कारण इसमें विभिन्न अंगों को अलग अलग बनाया जाता है। इन्हें बड़े परिमाण में निर्मित 'शैल वास्तुकला' अथवा 'वास्तुमूर्ति कला' नामों से ही अभिहित किया जा सकता है। यह प्रक्रिया लगभग एक हजार वर्प तक चली जिसका प्रारंभ सम्राट अशोक के समय से लिया जा सकता है। तदुपरांत इस प्रकार के निर्माण लगभग भारत के सभी भागों में दसवीं शती के अंत तक बनते ज्ञात होते हैं।

सर्वप्रथम, अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ द्वारा इस प्रकार की गुफाए गया के आसपास स्थानीय अति कठोर चट्टानों को काटकर बाराबर तथा नागार्जुनी पहाड़ी में बनाई गई। इस समूह के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण सुदामा (न्यग्रोध) तथा लोमश ऋषि की गुफाओं में उपलब्ध होते हैं। ये दोनों गुफाएं भारहुत की सुधम्मा देव सभा की संयोजना की अविकल अनुकृति है। यह गुहा शृंखला इंगित करती है कि इस प्रकार के प्रारंभिक मंदिर अत्यंत सादे और एक वृत्ताकार कक्ष मात्र के होते थे। जैसा कि गुंटूपल्ली के मंदिर से स्पष्ट होता है (नीचे देखिए) आराधकों को स्थान देने के लिए इसमें मंडप बाद में जोड़ा गया। अगली सदी में गुहा मंदिर बनाने की

यह प्रक्रिया मुलायम अर्थात कुछ कम कठोर फंदे की बनावट चट्टानों पर अपनाई जाने लगी। इस प्रकार की चट्टानें पश्चिमी क्षेत्रों के पहाड़ी संभागों में बहुतायत से उपलब्ध थीं। इसीलिए ईसा पूर्व की दूसरी तथा ईसवी सन् की दूसरी सदी के मध्य, इस प्रकार के अनेक बौद्ध निर्माण हुए। इसमें चैत्य सभागृह थे–जो कि वस्तुतया पूजा स्थान थे–जिनमें स्तूप होता था, जो भगवान बुद्ध का प्रतिरूप समझा जाता था तथा उसकी पूजा होती थी। विहार तथा मठ बने–जिनमें अनेक कक्ष होते थे–जिनके द्वार एक बड़े सभागृह में खुलते थे। इस प्रकार के अनेक उदाहरण पूना एवं नासिक के आसपास तथा अजंता और औरंगाबाद में पाए जाते हैं। इसका मूल कारण यही था कि यहां की चट्टानें गया जैसी अति कठोर न होकर कुछ कम कठोर थीं तथा उनकी फंदानुमा बनावट, इस प्रकार के निर्माणों के लिए अधिक उपयुक्त थी। इस प्रकार के पूजा स्थल आंध्र के पूर्वी समुद्रतटीय क्षेत्र पूर्वीघाट, उड़ीसा के दक्षिणी जिलों में भी खुदाई से प्राप्त हुए हैं–जिस प्रकार गुंटूपल्ली एवं शंकरम में। इनको यथोचित रूप में भीतर से खोदकर अथवा अनावश्यक प्रस्तर को अलग करके उकेरने की प्रणाली अपनाई जाती थी। उड़ीसा की खंडगिरि तथा उदयगिरि गुफाओं में यह बात स्पष्ट द्रष्टव्य है। इनमें से सालसेट की कोंडिबटे तथा जुन्नार की तुलजा गुफाएं जो पूना के पास हैं तथा आंध्र की गुटूपल्ली के निर्माण गया की सुदामा तथा लोमश ऋषि गुफाओं से काफी मेल खाते हैं।

इस क्षेत्र यानी बंबई तथा पूना के अंतिरिक्त इसके उत्तर तथा पश्चिमोत्तर में जूनागढ़ आदि में भी इस प्रकार के चैत्य तथा विहारों का निर्माण हुआ–कारण वहां भी फंदानुमा कम कठोर मखरैले पत्थर की चट्टानें थीं। मखरैला पत्थर यदि अनावृत्त हो तो वह भी उतना कठोर नहीं होता·तथा उसमें कटाई छंटाई सुगम एवं सरल होती है। इसके बाद दक्षिण में कोंकण प्रदेश के पार, केरल में भी इस प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। यह क्षेत्र घाट के पश्चिम में पड़ता है–वहां पर गुफाओं के रूप में समाधियां तथा मकबरे इसी काल में बने थे–जो कि महापापाणी संदर्भ को उजागर करते हैं।

गुंटूपल्ली का गुहाचैत्य, गया की गुफाओं का ही समकालीन है। यह एक वृत्ताकार झोंपड़ी का प्रस्तर संस्करण है–जिसके ऊपर गुंबदनुमा घास फूस अथवा धातु की चादर की छत थी जो लकडी के आधार पर टिकी थी। देखने में यह उल्टी टोकरी की भांति लगती थी। इसके बीच में पत्थर का एक स्तूप था–जिसकी पूजा होती थी। इसके चारों ओर परिक्रमा पथ था तथा सामने की ओर दरवाजे से लगा एक दालान भी। प्रवेश द्वार से लगा मंडप, लकड़ी के पूर्वकालीन निर्माणो की नकल पर बना था। लिंटल के ऊपर बना तोरण भी उसी कारीगरी की अनुकृति था।

कोंडिवले का बौद्ध गुफा मंदिर इसी प्रकार का है जिसके वृत्ताकार पूजा स्थान

अथवा गर्भ गृह में एक ठोस स्तूप है। मंदिर के भीतर ही पूजा स्थल से लगा एक संकरा प्रदक्षिणा पथ है—यह स्थल आयताकार मंडप के अंत में है तथा इसकी छत सपाट है। जुन्नार की तुलजा गुफा भी वृत्ताकार चैत्य के नमूने की है। मुख्य गुंबद बारह अनलंकृत अष्टकोणी स्तंभों पर आधारित है। दूसरी जगहों पर यह छत एक गोल दीवार पर आधारित मिलती है। बीच में एक स्तूप है और ये दोनों संरचनाएं एक प्रदक्षिणा पथ से घिरी हैं—जो कि अर्धगुंबदाकार है।[1] सुधम्मा देव सभा (भारहुलत) का गर्भगृह इसी नमूने पर बना प्रतीत होता है।

अन्य चैत्य योजना में मेहराबनुमा (गजपृष्ठाकार) अथवा स्तब्धिका पद्धति पर बने हैं, उनमें नाभि की तरह एक लबा आयताकार सभागृह है—जो कि एक ओर अर्धवृत्तकक्ष में समाप्त होता है—अधिकतर इसके पार्श्व में संकरे पथ होते हैं, जो नाभि से स्तंभों की श्रृंखला द्वारा विलग होते हैं—जो अर्धवृत्तकक्ष में स्थित स्तूप तक जाते हैं और प्रदक्षिणा पथ बनाते हैं। स्तूप भी उसी चट्टान से तराशा गया है। प्रवेश द्वार काफी बड़ा है, जिसके ऊपर एक मेहराबदार खिड़की है। सभागृह के सामने एक आड़ा बरामदा है जिसमें आगे की ओर स्तंभ तराशे गए हैं। ये सभी निर्माण बहुकोण शिखरी मंदिरों की प्रतिकृति पर बने हैं। यह मेहराबनुमा (गजपृष्ठाकार) पद्धति संभवतया इसलिए बनी हो कि वृत्ताकार पूजा स्थल तथा आयताकार सभामंडप का मिलनस्थल अथवा चाप इसी आकार का बन जाता हो। प्रदत्त उदाहरणों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि मूलरूप में ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न रहे हैं।

दक्षिण में अजंता की तीस उत्खनित गुफाओं में से छह में दो चैत्य सभागार हैं (क्रम संख्या 9 तथा 10) और 4 विहार हैं (क्रम संख्या 8, 12, 13 तथा 30)। ये सभी गुफाएं भाजा, कार्ली, कोंदाने, पीथलकोटा, नासिक तथा कान्हेरी के उत्खननों की समकालीन हैं। ये ईसा पूर्व की दूसरी तथा ईसवी सन् की दूसरी सदी के बीच में बनी हैं। शेष निर्माण चौथी सदी के बाद के हैं। ये संभवतया ई. सन् 450 तथा 600 के बीच वाकाटक काल में निर्मित हुए थे। अंतिम निर्माण 650 ई. के आसपास का है। किंतु इन पर कुछ न कुछ काम आठवीं तथा नौवीं सदी तक राष्ट्रकूट वंश के काल तक चलता रहा।

प्रारंभिक चैत्य काफी बड़े मेहराबनुमा तथा अलंकृत अग्रभाग वाले हैं जिनके प्रवेश द्वार पर घोडे की नाल के आकार की खिडकियां हैं। उनका भीतरी भाग एक नाभि क्षेत्र तथा स्तंभों की पंक्तियों द्वारा पार्श्वों में विभाजित किया गया हैं। ये पार्श्व अर्धवृत्तकक्ष तक गए हैं जहां से प्रदक्षिणा पथ का निर्माण करते हैं।

---

1. इसी सरचना का एक मदिर जयपुर के पास बैराट में अभी हाल की खुदाई में मिला है।

चट्टान में ही, अर्धवृत्तकक्ष में एक स्तूप तराशा गया है–जिसकी पूजा होती थी। इन पार्श्विक निर्माणों की छत सपाट अथवा मेहराबदार होती थी और ये लकड़ी के पूर्ववर्ती निर्माणों की अनुकृति पर बने हैं।

विहारों में स्तंभ नहीं होते थे और तीन तरफ की दीवारो में अनेक कक्ष होते थे, जो भ्रमणों के निवास का काम करते थे। सामने के भाग में एक या एकाधिक प्रवेश द्वार की व्यवस्था होती थी।

दूसरे दौर की शैल वास्तुकला दो 'बहुकोण मेहराबनुमा शिखरी' चैत्यों (क्रम संख्या 19 तथा 26) में दिखाई पड़ती है। वैसे तो यह पहले दौर के समान ही है किंतु अंतर यह है कि इनमें अर्धवृत्तकक्ष में स्तूप के सामने, नासिका के नीचे अथवा स्तूप के बेलन पर से आगे बने मेहराब के नीचे, प्रमुखता से बुद्ध की प्रतिमा खड़ी की गई है। इससे पता चलता है कि स्तूप की योजना ही वृत्ताकार थी जिसकी छत गुंबद जैसी होती थी और सुखनासिका के आकार का मेहराबदार, आगे को निकला हुआ प्रवेश द्वार बनाया जाता था। यह बात कालांतर में बने वेसर शैली के मंदिरों में भी पाई जाती थी।[1]

विहारों में, उन्हें छोड़कर जो अधूरे रह गए अथवा नष्ट हो गए (क्रम संख्या 3, 5, 14, 23, 24, 28 और 29) *मठों तथा पूजागृह दोनों की विशेषताएं विशेषकर* मठों की अभिलक्षणाएं दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार ये पाषाणी निवास गृह अथवा शैल निवास, जिन्हें एक अभिलेख में शैलगृह भी कहा गया है–(गुफा 25) ईसवी सन् 450 और 525 ई. के बीच बने होंगे। यदि पूजित देव सहित चैत्य को हम मंदिर की संज्ञा दें तो इन्हें विहार चैत्य कहना उचित होगा। वैसे इन्हें देवकुल, आयतन, विमान, धाम तथा मंदिर आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। वस्तुतया विहार संख्या 16 के एक अभिलेख में उसे चैत्य मंदिर कहा गया है।

इन विहारो में बहुधा एक बाहरी दालान होता है जैसे कि मंदिरों में मुख मंडप अथवा अग्रमंडप होते हैं, एक स्तंभों वाला सभागार (कभी कभी बिना स्तंभों वाला भी)–जैसे कि महामंडप और अंत मे पूजा स्थल अथवा गर्भगृह, बहुधा इसके साथ ही अर्ध मंडप होता है अथवा मुख्य सभागार और मदिर (पूजागृह) के बीच में एक आयताकार आड़ा कक्ष होता है। जब सभागार में स्तभ होते हैं और मुख्य नाभि तथा उसके पार्श्विक परिसर नहीं होते तो बीच में एक चौकोर स्थान होता है, जो चार अथवा अधिक स्तंभों से घिरा होता है–जिसे रंगमंडप मान सकते हैं जो कालांतर में चालुक्यकाल में बनने वाले नवरंगों का आभास देता है। महामंडप की पार्श्विक दीवारों में और कभी कभी पिछली दीवारों में भी, अर्चक भ्रमणों के घनाकार कक्ष तराशे जाते थे। इनकी संख्या शैल उत्खनित अथवा ईटों से निर्मित

1. नालंदा के ईटों के बने छोटे स्तूपों में इसकी समरूपता द्रष्टव्य है।

अन्य सामान्य मठों की अपेक्षा कम होती थी। इससे स्पष्ट होता है कि ये कक्ष केवल उच्च अथवा मुख्य अर्चकों के ही लिए होते थे अथवा दैनंदिन पूजा पाठ करने वाले पुजारियों के लिए ही बनते थे। बहुधा सभागार की पिछली दीवार की दूसरी ओर तथा मुख्य प्रवेश द्वार या अग्रमंडप की दीवारों में भी इस प्रकार के अन्य अतिरिक्त कक्ष भी पाए जाते हैं (यहां तक कि गुफा संख्या 6 के दुमंजिली बनावट में यही योजना अपनाई गई है। गर्भगृह में बुद्ध की एक बड़ी मूर्ति है, अर्धमडप में भी कई मूर्तियां तराशी गई हैं। गुफा संख्या 27 में अर्धमंडप, महामंडप से मिला दिया गया है। मंडपों की एक के बाद एक बनाए जाने की योजना—जिसमें कभी कभी एकदम पीछे एकाधिक पूजास्थल भी होते हैं, इक्ष्वाकुकालीन नागार्जुनकोंडा में बने निर्माणों के समान है। अजंता की गुफाओं के निर्माण के पहले ही वे बन चुके थे।

इस प्रकार के अक्षीय समूहों में सबसे पीछे के भाग में आयताकार एक कक्ष होता था, उसके पीछे चौकोर पूजागृह, कभी अंशतया तो कभी पूरी तरह, सामने के कक्ष तक बढा हुआ बना मिलता है। इसी प्रकार की संरचना दक्षिण के चालुक्य, पल्लव तथा पाड्य वंश के राजत्वकाल में निर्मित हिंदू एवं जैन शैलगुहा मंदिरों में पाई जाती है। इन राजवंशों ने शैल गुहा मंदिरों के निर्माण की यह प्रक्रिया छठी सदी से दसवीं सदी के प्रथम अर्धांश अथवा उसके बाद तक जारी रखी, जैसा कि एलोरा के उदाहरण से स्पष्ट है। कुछ स्थलों पर जैसे कि अजंता के उदाहरणों में, गुहा मंदिर में एक विशाल तथा चौकोर मंडप पाया जाता है, जो गर्भगृह के सामने के सभागार की ही योजना पर होता था, इस स्थिति में आयताकार आड़ा अर्धमंडप नहीं होता था। इस प्रकार की अक्षीय योजना में बने मंदिर परिसर के गर्भगृह के ऊपर पिरामिड के आकार का कोई और ढांचा नहीं होता था। इन गुहा मंदिरों को, जिसमें चैत्य मदिर भी सम्मिलित है, मंडप मंदिर कहा जा सकता है—कारण, बाद के अभिलेखों में उन्हें इसी नाम से पुकारा गया है। उत्खनन से मुख्य मंदिर के अगल बगल, एक सीध में और भी मंदिर प्राप्त हुए हैं—जिनके सामने एक सर्वनिष्ठ मडप होता था। दूसरी स्थिति में पार्श्विक दीवारों में अनेक अन्य मंदिरों की रचना जो सभी एक सामान्य दालान या सभागार में खुलते थे। जैसा कि अजता के विहारों की संरचना में पाया जाता है। दोनों ही प्रक्रियाए बाद में दक्षिण के चालुक्य, पल्लव तथा पांड्य एवं अन्य समकालीन राजवंशों के काल में बने निर्माणों में विकसित हुई।

एलोरा की शैल वास्तुकला (सभी 12 उत्खननों) में सारा ध्यान पहाड़ी के दक्षिणी छोर पर केंद्रित रहा—यही स्थिति औरंगाबाद के उत्खननों की है, जहां यह शृंखला परिमिति तक पहुंची, जो वस्तुतया पश्चिमी भारत में प्रचलित परंपरा का ही एक अंग है।

एलोरा के बौद्ध निर्माण तीन समूहों में विभक्त किए जा सकते हैं। सबसे प्राचीन गुफाएं 1, 2, 3 और 5 हैं जिनका समय चौथी सदी के आसपास का है। गुफा संख्या 4 तथा 6 से 10 तक छठीं-सातवीं सदी की हैं। गुफा संख्या 11 तथा 12 अनोखी हैं तथा सातवीं सदी की हैं। इसके विपरीत, पहले समूह की गुफा संख्या बहुत सादी बनी है और शायद यह मात्र प्रयोग के रूप में तराशी गई थी। गुफा संख्या 2 और 3 लगभग एक-सी हैं। उनमें एक दालान अथवा अग्रमंडप है, पीछे की ओर एक द्वार है जो स्तंभों वाले एक सभागार में खुलता है—जिसके साथ ही अर्धमंडप है। गुफा संख्या 2 में महामंडप के साथ पार्श्विक दालान हैं किंतु गुफा संख्या 3 में वे अनुपस्थित हैं। दोनों के पूजागृहों में बुद्ध की बैठी हुई अवस्था की एक एक मूर्ति है। गुफा संख्या 2 में पूजागृह के पार्श्व में 2 कक्ष हैं और साथ में अर्धमंडप भी है। गुफा सख्या 3 के मंडप की पार्श्विक दीवारों में मठों वाले कक्ष हैं। गुफा संख्या 6 उत्खनित एक मंजिले निर्माणों में सबसे बड़ी है। इसमें एक दालान है तथा स्तंभों वाला एक सभागार—जिसकी दीवारों में 22 कक्ष हैं। स्तंभों वाले महामंडप के पीछे, आड़ा अर्धमंडप है और पीछे की ओर बुद्ध की पूजा का स्थान है।

गुफा संख्या 4 दुमंजिली है। नीचे के तल्ले में एक सभागार तथा एक उपकक्ष है, जिसके पीछे पूजागृह है। मंदिर के दोनों तरफ तथा सभागार की पार्श्विक दीवारों में अतिरिक्त कक्ष हैं। ऊपर की मंजिल खंडहर हो चुकी है—उसमें मात्र 2 कक्ष तथा प्रदक्षिणा पथ ही सुरक्षित रह पाए हैं। गुफा संख्या 8 में एक बड़ा सभागार है तथा उत्तरी दीवार में अर्चकों के तीन कक्ष हैं। पीछे स्थित पूर्णतया उत्कीर्ण पूजागृह के साथ में प्रदक्षिणा पथ तथा अग्रभाग में एक उपकक्ष अथवा बैठक है। इसमें बुद्ध की बैठी हुई एक प्रतिमा है। प्रदक्षिणा पथ की उत्तरी दीवार में मठीय कक्ष है।

गुफा संख्या 6 में अन्य गुफाओं की तरह ही एक दालान है—जिसके पीछे सभागार है, दक्षिण में भी एक पार्श्विक सभागार है जिसमें 6 कक्ष हैं। सभागार के अंतिम छोर पर एक उपकक्ष तथा मंदिर है। गुफा संख्या 7 में दालान के पीछे, चार केंद्रीय स्तंभों वाला एक सभागार है और तीनों ओर की दीवारों में 12 अर्ध-निर्मित कक्ष हैं। केंद्रीय पूजाघर के अंत में एक छोर पर प्रज्ञापारमिता है, जिसके कपाटों का ढांचा ढाला हुआ है—जिससे स्पष्ट होता है कि वही मुख्य पूजागृह है।

गुफा संख्या 9 सही अर्थ में एक लंबा सभागार या मंडप है जिसका अग्रभाग बड़ी प्रमुखता से मूर्तियों के उत्कीर्णन से सज्जित है—एक तरह से यह गुफा संख्या 10 की घटिया नकल है। पीछे की दीवार चार स्तंभों द्वारा तीन भागों में विभक्त है। बीच के भाग में पूजागृह की तरह बुद्ध की मूर्ति है और उसके अगल बगल पार्श्वों में अनुचर उत्कीर्ण हैं।

गुफा संख्या 10 (विश्वकर्मा) अजंता की तरह का एक बड़ा चैत्य है, जिसमें स्तंभ तथा गलियारे हैं एवं मेहराबदार प्रवेश द्वार के सामने छज्जे हैं। स्तंभ बहुत साधारण हैं और उन पर बहुत कम खुदाई अथवा नक्काशी हुई है। अक्ष में, बैठी हुई बुद्ध प्रतिमा के उत्कीर्णन के सहित एक स्तूप है। जिससे पता चलता है कि स्तूप का आकार गोल विमान-सा होता था (वेसर शैली) जिसके भीतर मूर्ति रहती थी। स्तूप के बेलन में 12 गोल दिलहे हैं–जिनमें से 10 पर छोटी बुद्ध मूर्तियां अकित हैं। आगे के भाग का मेहराब बहुत सुंदर है तथा अजता आदि स्थानों में प्रचलित सज्जा से पूर्णतया भिन्न है। इसके तिपतिया चाप (मेहराव अथवा डाट) उद्गम और आमलक समकालीन उत्तर भारतीय ब्राह्मण मंदिर शैली की विशष्टताएं दर्शाते हैं।

गुफा संख्या 11 और 12 सातवीं सदी की हैं और इन्हें क्रमशः 'दो तल' और 'तीन तल' के नाम से जाना जाता है। ये गुफाएं इस समूह की सवसे बड़ी संरचनाए हैं। ये अपनी योजना तथा बहुमजिलों के सदर्भ में पूर्ण मौलिक हैं। इनका वास्तु-विन्यास अद्भुत तथा मूर्तिकला अत्यंत सुंदर है। दोनों गुफाएं तीन तीन मंजिल की हैं। चूंकि 'दो तल' गुफा का निचला भाग भूमि में दबा था, इसी से उसे 'दो तल' कहते थे। इसी प्रकार की एक शैल गुहा संरचना अभी हाल की खुदाई में उन्डावलयी स्थान पर, कृष्णा नदी के दक्षिणी किनारे पर प्राप्त हुई है। इसे अनंतशयनगुड़ि कहते हैं। यह संभवतया विष्णु कुंडि के समय की है तथा बुद्ध को ही समर्पित थी।

औरंगाबाद के गुफा मंदिरों में प्रारंभ के हीनयान समय का एक चैत्य है और कई विहार हैं (दो समूहों में कुल आठ), साथ ही कुछ और कम महत्व के निर्माण हैं। इन सभी का निर्माणकाल सातवीं सदी है।

इन सभी निर्माणों की बनावट खुरदरी होने के कारण, यहां तक कि जो पूरी तरह से परिष्कृत हैं उन पर भी चिकनाई के लिए पलस्तर चढ़ाना आवश्यक था। और अधिक सज्जा के लिए सुंदर चित्रकारी का सहारा लिया जाता था जिसके अनेक तथा विस्तृत उदाहरण हमें बहुचर्चित अजंता की गुफाओं की चित्रकारी में मिलते हैं।

परवर्ती शैल वास्तुकला

शैलोत्खनित गुफा मंदिर–लयन
(हिंदू और जैन)

ईसा के बाद की सहस्राब्दि के उत्तर भाग के आरंभ में, ब्राह्मण और जैन वर्गो ने भी शैलों में काटकर मंदिर बनाने की विधि अपनानी आरभ कर दी थी। इसका प्रचलन जल्दी ही बढ़ गया और उस सहस्राब्दि की शेष चार शताब्दियों में ऐसे मंदिर पूरे दक्षिण में, दक्कन से कुमारी अंतरीप तक बड़ी संख्या में बनाए गए। संयोगवश, ये उत्तर में ऐसे ही उत्खननों से सख्या में काफी अधिक हैं। इनमें से भी अधिकांश ब्राह्मानुवर्ती हैं। जैन मंदिरों की संख्या कम है। ब्राह्मण और जैन देवताओं के लिए चट्टानों (शैलों) में काटे गए मंदिरों की इस विधि का आरंभ प्रायः द्वीप में तीन साम्राज्यों के उदय के साथ हुआ। ये तीन साम्राज्य थे—दक्कन क्षेत्र में वातापि (बादामी) के चालुक्य और उनकी सहगामी शाखा वेंगी के चालुक्य (तटीय आंध्र प्रदेश में पूर्वी चालुक्य), पूर्वी तट पर कांची के पल्लव और धुर दक्षिण में मदुरै के पांड्य। इस दिशा में सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक कार्य ईसवी सन् 550 से 850 के बीच तीन शताब्दियों में सामने आया। जबकि ये तीनों शक्तिशाली राज्य न केवल कड़े राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी थे। बल्कि कला, वास्तुशिल्प और साहित्य के संरक्षण में भी कड़े प्रतिस्पर्धी थे, इस काल के बीच, जबकि बादामी के चालुक्यों का स्थान मान्यखेत के राष्ट्रकूटों ने ले लिया, किंतु पल्लव और पांड्य इस पूरे समय में बने रहे। इन तीन साम्राज्य शक्तियों के बीच अंतर्वर्ती (बफर) राज्यों के रूप में बीच बीच में छोटे छोटे और गौण राजवंशो ने भी इस गतिविधि में भाग लिया और अपने अपने क्षेत्रों में इस कार्य में अपना योग दिया।

पवित्र और धार्मिक संरचनाओं के लिए पत्थर के उपयोग पर निषेध की एक लंबी परंपरा थी। जिसका कारण था मृतकों से संबंधित निर्माणों से उसका लंबे समय से स्थानीय रूप से जुड़ा होना, जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है। चालुक्य राजा मंगलेश और उसके समकालीन पल्लव नरेश महेंद्र प्रथम द्वारा लगभग साथ साथ ही यह परंपरा तोड़ी गई। मंगलेश ने बादामी में शक संवत् 500 (ईसवी सन्

578) में अपने मृत और प्रिय भाई कीर्ति वर्मन के नारायण बलि श्राद्ध के संबंध और स्मृति मे विष्णु गुफा मंदिर क्रमांक III का उत्खनन करवाया। जैसा कि संबंधित शिलालेखों में कहा गया है। शायद इसी से प्रेरणा लेकर महेंद्र प्रथम ने हिंदू त्रिमूर्ति शिव, विष्णु और ब्रह्मा के लिए मंडगपट्टु (जिला दक्षिण अरकॉट) में अपने पहले गुफा मंदिर का उत्खनन करवाया। मंगलेश ने नई राजधानी बादामी के सूक्ष्म तंतु युक्त और क्षैतिज रूप से फैली हुई नर्म बालुकाश्म पहाड़ियों को इस कार्य के लिए चुना, जबकि महेंद्र प्रथम ने अपनी राजधानी से काफी दूर मंडगपट्टु के बहुत कठोर संगठित तंतुओं वाले ग्रेनाइट शैल का चुनाव किया। मंगलेश के मामले में, यद्यपि हिंदू देवता के लिए एक गुफा मंदिर का उत्खनन और उस पर हिंदू मूर्तियों का उत्कीर्णन एकदम ही नया प्रयोग था। किंतु उत्तर, मध्य और पश्चिम भारत में और साथ दक्कन में भी मौर्यकाल से ही अविच्छिन्न रूप से विद्यमान, बालुकाश्म, ट्रैप या सिलखड़ी (लाइम स्टोन) जैसे पत्थरों की सावधानीपूर्वक चुनी गई चट्टानों में ऐसे गुफा मंदिरों के उत्खनन की पूर्ववर्ती परंपरा का ही केवल स्थायीकरण था।[1] इस प्रकार उसके कारीगरों को, लगभग एक सहस्राब्दी से विकसित हो रही बालुकाश्म में ऐसे उत्खनन और उन्हें तराशने की जानकारी का लाभ प्राप्त था। फलस्वरूप, पहला गुफा मंदिर डिजाइन में स्पष्ट और महत्वाकांक्षी और आकार प्रकार में बड़ा था। मंगलेश के प्रथम गुफा मंदिर के बाद जल्दी ही बादामी, ऐहोल और अन्य स्थानों पर चालुक्यों के ऐसे ही गुफा मंदिरों का निर्माण हुआ। सभी का उत्खनन नर्म पत्थर की चट्टानों में किया गया।

महेंद्र के मामले में कठोर चट्टानों में उत्खनन और गुफा मंदिरों और मूर्तियों का तक्षण लगभग एक नया प्रयोग ही था, क्योंकि कोई नौ सौ वर्ष पूर्व, गया के निकट, बाराबर नागार्जुन और सीतामढ़ी पहाड़ियों में अशोक और दशरथ द्वारा करवाए गए उत्खननो के अतिरिक्त कोई अन्य पूर्व उदाहरण नहीं था। तब से इस व्यवहार और परंपरा को पूरी तरह या तो छोड़ दिया गया या भुला दिया गया और दिक्काल के इतने लंबे अंतराल में कोई प्रयास नही किया गया। ऐसे प्रसंग में महेंद्र द्वारा अपनी पहली उपलब्धि पर मंडगपट्टु के गुफा मंदिर पर शिलालेख में उसकी गर्वोक्ति सार्थक हो उठती है। शिलालेख में कहा गया है, "यह ईट रहित, काष्ठ रहित, धातु रहित और गारे से रहित, 'लक्षित' का आवास ब्रह्मा, ईश्वर और विष्णु के लिए राजा विचित्रचित्र द्वारा बनवाया गया।" यह छोटा शिलालेख इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि महेंद्र का काम ईट, काष्ठ, धातु और गारे जैसी सामान्य सामग्री का सहारा लिए बिना एक पाषाण मंदिर के निर्माण के मामले में समकालीन चलन

---

1 वास्तव मे, हिंदू देवी-देवताओ के लिए विदिशा के निकट उदयगिरी की बालुकाश्म पहाड़ियों में गुप्तों ने पहले गुफा मदिरो का उत्खनन करवाया था।

और परंपरा से हटकर था। इससे भी अधिक अर्थवान यह था कि यह सावधानी पूर्वक चुनी गई नर्म चट्टानों में उत्खनन की तब तक ज्ञात प्रक्रिया से भी अलग था। उसके द्वारा उसके साथ दक्षिण की कठोर चट्टानों में और अधिक गुफा मंदिरों का उत्खनन करवाया गया। वे सभी डिजाइन में सादे और आकार में कम महत्वाकांक्षी हैं, क्योंकि तब तक अज्ञात संभावनाओं वाली नई शैलीय सामग्री की कठोरता के कारण अधिक श्रम, नए उपकरणों के आविष्कार और काटने के कौशल और पूरा करने के लिए अधिक समय की आवश्यकता थी।

इस तरह कहा जा सकता है कि चालुक्यों और पल्लवों ने दक्षिण में दो समानांतर परंपराएं आरंभ कीं। दक्कन, उत्तरी मैसूर और तटीय आंध्र के चालुक्य क्षेत्र में परवर्ती राजवंशों ने अपने गुफा मंदिरों के लिए और बाद में अपने संरचनात्मक मंदिरों के लिए नरम पत्थरों की चट्टानों का चयन और उपयोग बनाए रखा। पल्लवों और उनके समकालीन पांड्यों के–जिन्होंने भी अपने क्षेत्र में कठोर चट्टानों में उत्खनन करवाया इसी तरह अपने चट्टानों में काटे गए और संरचनात्मक मंदिरों के लिए और आगे दक्षिण में कठोर चट्टानों के चयन और उपयोग को कायम रखा।

परिणाम यह हुआ कि ये दोनों समानांतर परंपराएं दक्षिण में अपने अपने क्षेत्रों में चौदहवीं शती के उत्तरार्ध में विजयनगर साम्राज्य के उदय तक बनी रहीं, ज़बकि उसने दोनों क्षेत्रों को अपनी परिधि में समेट लिया और वास्तव में जल्दी ही पूरे दक्षिण भारत पर व्यावहारिक रूप से फैल गया। उत्तरी क्षेत्र की नरम पत्थर की परंपरा लगभग समाप्त हो गई और मंदिर निर्माण में कठोर पत्थर का उपयोग लगभग सार्वत्रिक हो गया, तथापि तब तक दोनों क्षेत्रों में विकसित हो चुकी क्षेत्रीय शैलियां और प्रभेदक विशिष्टताएं सामान्य रूपेण बनाई रखी गईं।

ब्राह्मण और जैन मंदिर वास्तुशिल्प की शैलोत्खनन अवस्था को आच्छादित करने वाली इन तीन शताब्दियों में संयोग से हिंदुओं के पुनर्जागरणवादी आंदोलनों और जनता के कुछ वर्गो पर जैन पंथों के अविच्छिन्न प्रभाव का भी समय था। सातवीं शताब्दी के आरंभ के साथ, और हिंदुओं के पुनर्जागरणवादी आंदोलनों के परिणामस्वरूप, भारी परिवर्तन और भक्ति मार्ग का विकास हुआ। तमिलनाडु में शैव और वैष्णव भजनकार संत, नयनमार और आलवार वैदिक परंपराओं में दीक्षित हो गए और मंदिरों में घूमते, तमिल में सैकड़ों भक्तिगान गाते और लोगों को प्रेरित करते हुए उन्होंने सारा क्षेत्र छान मारा। इसका यह परिणाम भी हुआ कि कालमुखों, पशुपतों, माहेश्वरों, शाकतों और इनके जैसे अतिवादी शैव पंथियों का सुधार हुआ, लोगों पर जैन धर्म के सशक्त प्रभाव में कटौती हुई और बौद्ध धर्म का तो लगभग उच्छेद हो गया।

तेलुगु और कन्नड़ क्षेत्रों पर, राजाओं और संपन्न व्यावसायिक समूहों से प्राप्त

संरक्षण के कारण इस काल में जैन धर्म की बड़ी मजबूत पकड़ बनी रही। कन्नड़ क्षेत्र दक्षिण भारतीय जैन धर्म का केंद्र बना रहा, जहां से विभिन्न 'गुच्छे' तमिल और तेलुगु क्षेत्रों में पहुंचे। फिर नवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में महान हिंदू सुधारक चिंतक शंकराचार्य का इस दृश्य पर प्राकट्य हुआ, उन्होंने विद्यमान पंथों और उनके आचरणों को संवारा, छह मतों (षठमत यथा—गाणपत्य, कौमार, सौर, शैव, वैष्णव और शाक्त) को ठोस आधार दिया और अद्वैत के महान और सार्वत्रिक सिद्धांत को प्रस्तुत किया। यह एक विलक्षण तथ्य है कि उस काल के ये शैलोत्खनित या पाषाण निर्मित मंदिर, यद्यपि महान राजाओं और उनके संरक्षण में बनवाए गए थे, किंतु समकालीन तमिल भजनकारों द्वारा पूरी तरह उपेक्षित कर दिए गए। यह शायद इसलिए कि वे नए प्रयोग थे जिनमें वास्तुशिल्प और शिल्पांकन की पारंपरिक सामग्री का उपयोग नहीं किया गया था और इस तरह वे संप्रदाय के प्रतिकूल थे। स्पष्ट है कि उन्हें स्वीकार्य होने में समय लगा।

पल्लवों और उनके बाद उनके समकालीन पांड्यों और बीच में तंजावुर क्षेत्र मुत्तरैयारों जैसे राजवंशों और केरल क्षेत्र के शासकों के शैलोत्खनित मंदिरों में किया गया काम कठोर पत्थरों में उससे कहीं अधिक है जितना चालुक्यों, राष्ट्रकूटों पूर्वी चालुक्यों और दक्कन तथा तटीय आंध्र क्षेत्रों के तेलुगु चोड़ों के द्वारा अपेक्षाकृत नरम चट्टानों में किया गया। एक अधिक संसक्त शृंखला से और उसी रूप में पल्लव गुफा मंदिरों पर पहले विचार किया जा सकता है।

पल्लव : महेंद्र शैली के गुफा मंदिर

महेंद्र (ईसवी सन 580-630) के अनलंकृत गुफा मंदिरों में एक स्तंभ युक्त बरामदे में एक या एकाधिक मंदिर कक्ष होते हैं जो बरामदे या सभागार की पिछली या पार्श्व दीवारों में काटे गए होते हैं। उनकी स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि बरामदे का या मंडप का मुख्य अग्रभाग किस ओर है। इस प्रकार दक्षिण या उत्तरमुखी मंडपों में एक या एकाधिक मंदिर कक्ष प्रायः पार्श्व की दीवारों में काटे गए हैं ताकि उनका मुंह पूर्व या पश्चिम में हो, जबकि पूर्व या पश्चिम मुखी मंडपों में एक या एकाधिक मंदिर कक्ष मंडप की पिछली दीवार में काटे गए। चट्टानों में काटे गए समस्त वास्तुशिल्प के समान ही उनकी भी डिजाइन आवश्यक रूप से इस प्रकार की गई कि वे उन 'संरचनात्मक भवनों' के आंतरिक पक्षों को प्रस्तुत कर सकें, जिनका उनमें अनुकरण किया गया। महेंद्र द्वारा उत्खनित गुफा मंदिर उसके अपने शिलालेखों द्वारा अधिप्रमाणित किए गए, जो बहुधा एकल समर्पणात्मक श्लोक या उसकी उपाधियों की पंक्ति होती। ऐसे मंदिरों की संख्या दस है। उनमें से नौ हैं : मंडगपट्टु स्थित त्रिमूर्ति को समर्पित लक्षितायतन, पल्लवरम स्थित तथा

कथित पंच पांडव गुफा मंदिर (अब मुस्लिम दरगाह में परिवर्तित), शिव को समर्पित ममंदुर स्थिर 'रूद्रवलीश्वरम' या गुफा मंदिर क्रमांक II, 'करूंगानिलमुत्तम' स्थित काल मंडपम, जो पल्लवरम गुफा मंदिर के सदृश्य है, तथापि अपूर्ण और पल्लव शिलालेखों से रहित है, शिव को समर्पित वल्लम स्थित वसंतेश्वरम या अपेक्षाकृत बड़ा गुफा मंदिर, महेंद्रवाड़ी स्थित महेंद्र विष्णु गृह गुफा मंदिर, ममंदुर स्थित विष्णु गुफा मंदिर या गुफा मंदिर क्रमांक I, शिव को समर्पित, दलावनुर स्थित शत्रुमल्लेश्वरालय गुफा मंदिर और सियामंगलम स्थित अवनिभाजन पल्लवेश्वर गृह गुफा मंदिर। ये सबके सब पल्लव राजधानी कांची और महाबलीपुरम (मामल्लपुरम) के पत्तन नगर के आसपास स्थित हैं, जो पल्लवों के गृह प्रदेश तोंडैमंडलम (आधुनिक मद्रास के उत्तर, पश्चिम और दक्षिण में स्थित क्षेत्र) में चिंगल पेट, उत्तरी अरकॉट और दक्षिणी अरकॉट जिलों में हैं। तिरुचिरापल्ली स्थित ललितांकुर या चट्टान में काटा गया ऊपरी गुफा मंदिर राजधानी से सर्वाधिक दूर कावेरी तट पर चोल मंडलम में स्थित है, जिस सीमा तक महेंद्रवर्मन ने अपने पिता सिंह विष्णु से उत्तराधिकार में राज्य प्राप्त किया था। यह गुफा मंदिर ऐसा एकमात्र उदाहरण है, जो पहाड़ी के शिखर के निकट उत्खनन किया गया, जबकि शेष सभी पहाड़ी के आधार के निकट हैं। विलप्पक्कम (उत्तरी अरकॉट जिला) और अरगंदनल्लुर (दक्षिण अरकॉट जिला) स्थित चट्टान में काटे गए अपूर्व गुफा मंदिर भी, शैलीगत आधार पर महेंद्र शैली के हैं।

जहां मंडप के पीछे केवल एक कक्ष है, वहां आयताकार मडप के मुखाग्र भाग पर चार स्तंभ और भित्तिस्तंभ हैं, पार्श्व की दीवारों के साथ दो अंतिम छोरों पर पीछे दो भित्तिस्तंभ और मध्य मं दो स्तंभ—सभी समान दूरी पर स्थित हैं। मुखाग्र कोनों के भित्तिस्तंभों के बीच समान दूरी पर स्थित, चार, छह या आठ स्तभों सहित और तीन, पांच या सात मंदिर कक्षों से युक्त है। स्तंभ विशाल, कम ऊंचाई के, आधार और शीर्ष खंडों में वर्गाकार और मध्य में, ऊंचाई के एक तिहाई में अष्ट भुजाकार हैं। उनके ऊपर मुड़े हुए छोरों वाले टोड़े होते हैं, जो कभी कभी तरंग मुक्त पार्श्वों वाले होते हैं जिनके मध्य में एक पट्ट होता है। टोड़ों के ऊपर एक विशाल धरन (शहतीर) काटी गई है, किंतु वहां कोई सुगढ़ कोर्निस प्रक्षेपण या कपोत नहीं है। अनगढ़ चट्टान से ही इसका काम चल जाता है। स्तंभों के वर्गाकार खंडों के पार्श्वों पर बड़े वृत्ताकार कमल की आकृतियां बनी हैं, जो प्रायः एक वर्ग के भीतर खचित हैं। मंडप स्तंभों और भित्तिस्तंभों की एक आंतरिक लंबवत पक्ति के द्वारा दो भागों—अगले और पिछले भागों—में विभाजित हो सकता है जो मुखमंडप और अर्धमंडप का सूचक होता है, तथापि दोनों, समान चौड़ाई के और समान प्रकार के, मुखाग्र पंक्ति के अनुरूप हो सकते हैं। जहां भीतरी स्तंभ नहीं हैं, फर्श या भीतरी छत (वितान) के विभिन्न स्तरों से अंतर सूचित किया

गया है।

मंडप के फर्श से चट्टान में काटी हुई लगभग तीन सीढ़ियां एक सादे मंदिर कक्ष के प्रवेश तक ले जाती हैं, जो मंडप में थोड़ा प्रक्षिप्त-सा काटा गया होता है। मंदिर कक्ष प्रायः एक गढ़े हुए आधार या अधिष्ठान पर स्थित दिखता है, और दीवार, अपने दो अग्रिम कोनो पर चतुर्भुज सपाट भित्तिस्तंभों द्वारा आश्रित होती है, जिनके बीच दो और भित्तिस्तंभ होते है और भीतर के दो भित्तिस्तंभ मदिर कक्ष प्रवेश के आजू बाजू होते हैं। प्राय ये दो भीतरी भित्तिस्तंभ सादे प्रवेश द्वार की चौखट के आजू बाजू का गठन करते हैं। जिनके साथ एक आड़ी निचली सोहवटी (दरवाजे की चौखट में ऊपरी पट्टी) और नीचे की सीढ़ियों के सोपान के ऊपर एक दहलीज काटी हुई होती है। दरवाजे की चौखट, यदि स्पष्ट है, तो, सादी और अनलकृत होती है। भित्तिस्तंभों पर कुछ मामलों में स्पष्ट शीर्प रचनाएं और टोड़े या पोतिकाएं होती हैं। एक धरन या मुड़ा हुआ लटकता कोर्निस या कपोत ऊपर तराशा हुआ होता है। कपोत पर अर्धवृत्ताकार कुदु अलंकार होते हैं, जिसके ऊपर एक सपाट बेलचे के आकार का कलश होता है।

मंदिर कक्ष के दरवाजों पर सामान्यतया दोनों ओर दो सशस्त्र द्वारपाल उत्कीर्ण होते है। आरंभिक गुफा मंदिर में जहां त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, शिव और विष्णु के लिए वेदिकाएं पिछली दीवार में गहरे तराशे गए सादे ताकों के रूप में हैं, द्वारपाल मंडप के मुखाग्र के दोनों तरफ मिलते हैं। वल्लम स्थित वसतेश्वरम, महेंद्रवाड़ी और ममंदुर के विष्णु गुफा मंदिर और सियामंगलम स्थित 'अवनिभाजन' का गुफा मंदिर ऐसे गुफा मंदिरों के उदाहरण है जिनमें मंडप की पिछली दीवार में एकल मंदिर कक्ष तराशा गया है। ममंदुर का रुद्रवलीश्वरम और करूंगानिलमुत्तम स्थित कलमंदकम तीन मंदिर कक्षों वाले गुफा मंदिरों के उदाहरण हैं जैसा कि मंडगपट्टु में है। कलमंदकम मंदिर के अर्ध और मुख मंडपों की बाजू की दीवारों पर दो दो, कुल चार अतिरिक्त कक्ष हैं, जो पिछली दीवार में बने तीन मंदिर कक्षों की मूल योजना में बाद में किए गए परिवर्धन हैं। पल्लवरम गुफा मंदिर में पाच मंदिर कक्ष हैं, जबकि अपूर्व 'विलप्पक्कम' गुफा मंदिर में सात मंदिर कक्ष हैं। इसी के सदृश्य अपूर्ण 'अरगंडनल्लुर' गुफा मंदिर में, जो मुखाग्र पर और पिछली पंक्ति में चार स्तंभों और दो भित्तिस्तंभों से युक्त है, पिछली दीवार पांच मंदिर कक्षों के चिह्न हैं, जो काटे नहीं गए। इस प्रकार पिछली दीवार पर मदिर कक्षों की संख्या और स्थिति सामने के मंडप के स्तंभों के अनुरूप होती है, क्योंकि हर मंदिर कक्ष का विवर दो समान दूरी पर स्थित स्तंभों या एक स्तंभ और एक भित्तिस्तंभ के बीच आता है। यह और इसके साथ समान दूरी पर अंतर्स्तंभ निर्माण आरंभिक बौद्ध उदाहरणों की अधिक चौड़ी नाभि और अपेक्षाकृत संकीर्ण पार्श्व वीथियों की उस व्यवस्था के विपरीत है जिसका अनुसरण चालुक्य राष्ट्रकूट शृंखला के समकालीन और बाद के

उदाहरणों में किया गया।

कलमंदकम, रुद्रवलीश्वरम, वसंतेश्वरम और महेंद्रवाड़ी तथा ममंदुर के विष्णु गुफा मंदिर के मुखाग्र और साथ ही मंदिर कक्ष भी लगभग पूर्वमुखी हैं, जबकि मंडगपट्टु, विलप्पक्कम और सियामंगलम के मुखाग्र और मंदिर कक्ष भी लगभग पश्चिममुखी हैं। इस शृंखला में पल्लवरम ही केवल ऐसा उदाहरण है, जहां मंडप मुखाग्र और मंदिर कक्ष दक्षिणमुखी है। तिरुचिरापल्ली स्थित ललितांकुर और शत्रुमल्ल गुफा मंदिर ऐसे उदाहरण हैं जिनमें मंडप दक्षिणमुखी है और पिछली दीवार में काटे गए मंदिर कक्ष—तिरुचिरापल्ली में पूर्वी दीवार में और दलवनुर में पश्चिमी दीवार में—क्रमशः पश्चिम और पूर्वमुखी हैं। दलवनुर गुफा मंदिर में, मुखाग्र पर स्तंभों और भित्तिस्तंभों की एकल पंक्ति से युक्त अपेक्षाकृत बड़े मंडप में फर्श के स्तर में भिन्नता द्वारा मंडप के अगले और पिछले भाग का संकेत मिलता है। अर्ध-मंडप भाग की पश्चिमी दीवार पर मंदिर कक्ष, उसके सामने ड्योढ़ी जैसे एक छोटे स्तंभयुक्त मंडप सहित, काटा गया है। यह भी चट्टान में ही काटा गया है और अर्धमंडप के फर्श पर, एक ऊंचे स्तर पर एक स्पष्टरूपेण भिन्न नींव पर खड़ा है। तिरुचिरापल्ली के गुफा मंदिर के मामले में, पिछली दीवार के बहुत निकट स्तंभों और भित्तिस्तंभों की एक भीतरी पंक्ति काटी गई है, जिससे इसके और दीवार के बीच एक संकीर्ण रास्ता बनता है। पूर्वी दीवार पर बना कक्ष का मुंह पश्चिम में, मंडप के अग्र भाग के अंदर खंभों की भीतरी और बाहरी पंक्ति के बीच है। यह पूरी तरह पल्लव विशेषता नहीं है, बल्कि पांड्य देश के गुफा मंदिरों की जैसे 'तिरूप्परंकुनरम' के गुफा मंदिर की याद दिलाती है। संयोगवश तिरुचिरापल्ली का ललितांकुर पल्लवेश्वरम गुफा मंदिर, पांड्य प्रदेश की सीमा के निकट पल्लव गुफा मंदिरों में से सर्वाधिक दक्षिण स्थित है। स्तंभों के शीर्ष और आधार सदुरमों (घनाकार भागों) पर कमलाकृतियां इस शृंखला के परवर्ती गुफा मंदिरों जैसे महेंद्रवाड़ी और ममंदुर के विष्णु गुफा मंदिरों में मिलती है, जबकि वे इस शृंखला के 'मंडगपट्टु', 'पल्लमवरम' और 'करूंगानिलमुत्तम' के गुफा मंदिरो में तथा ममुंदर और वल्लम स्थित शिव गुफाओं मे अनुपस्थित हैं। तिरुचिरापल्ली और सियामंगलम स्थित शिव गुफा मंदिरों में इसके अतिरिक्त वृत्ताकार उत्कीर्णनों के भीतर, मकरों, किन्नरियों, मातंगनक्रों (हाथी और मगर का संयुक्त रूप), पुष्प लता और पत्र लता के 'मॉटिफ' हैं। सियामंगलम गुफा मंदिर में भित्तिस्तंभों के ऊपर मूर्तियों के छोटे उत्कीर्णित फलक हैं।

इन सब निर्माणों में मंदिर कक्ष या गर्भ गृह रिक्त हैं और उनमें न तो चट्टान में काटे गए लिंग हैं, न लिंग पीठ, जो पांड्य, मुत्तरैयार और चालुक्य गुफा मंदिरों में सामान्य हैं। उनमें वास्तव में पूज्य देवता—शिव, विष्णु या अन्य कोई भी देवता की कोई भी उपयुक्त मूर्ति नहीं है, जिसे कि शिलालेख के अनुसार मदिर समर्पित

किया गया था। प्रायः पिछली दीवार पर चूने के प्लास्टर के अवशेष हैं, जिन पर चित्रांकन के चिह्न मौजूद हैं, जिससे संकेत मिलता है कि पूजा का पात्र देवता का भित्तिचित्र था। कहीं कहीं पिछली दीवार के आधार पर किसी पीठ का मामूली-सा उभार मिलता है जो संकेत देता है कि देवता के विग्रह का निर्माण गचकारी या चूने के गारे से करके रंग दिया गया होगा या काष्ठ फलक पर तराशकर दीवार में खांचे में बिठा दिया गया होगा।

ये महेंद्र मंदिर, द्वारपालों के शिल्पांकन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मूर्ति शिल्पों की अनुपस्थिति के लिए, मंडप भाग में भी, उल्लेखनीय हैं। द्वारपाल मंडगपट्टु गुफा मंदिर में मंडप के मुखाग्र के दोनों छोरों पर मिलते हैं। दलवनुर और सियामगलम गुफा मंदिरों में, द्वारपाल न केवल मंडप के मुखाग्र के दोनों ओर, बल्कि भीतर मंदिर प्रवेश के दोनों ओर भी मिलते हैं। शृंखला के शेष गुफा मदिरों में ये केवल मंदिर प्रवेश के दोनों ओर मिलते है। ममदुर स्थित विष्णु गुफा और पल्लवरम स्थित गुफा मंदिर के मामले मे द्वारपाल न तो मंडप मुखाग्र के, न गर्भ-गृह के अगल बगल मे मिलते हैं। द्वारपालों का मुंह या तो पूरा सामने की ओर है या वे मंदिर द्वार की ओर आधे मुड़े हुए है और एक विशाल मुद्‌गर पर टिके हुए हैं जिस पर एक सर्प लिपटा हुआ है। सियामंगलम में दो बाहरी द्वारपाल यद्यपि मंडप मुखाग्र के दोनों ओर अलग ताकों मे योद्धाओं के समान चित्रित किए गए हैं, जबकि मंदिर कक्ष के प्रवेश के अगल बगल के द्वारपाल सामान्य रूप में हैं। तिरुचिरापल्ली का ऊपरी, चट्टान में कटा ललितांकुर का गुफा मंदिर इस अर्थ में अलग है कि उसमें मंदिर कक्ष सीधे सामने मंडप की पश्चिमी दीवार पर शिलांकनों का एक बड़ा समूह एक पटल के रूप में है और उसमे शिव को गंगाधर रूप में चित्रित किया गया है। सियामंगलम गुफा मंदिर की विशेपता यह है कि उसमें मुखाग्र स्तंभों और भित्तिस्तंभों के शीर्ष पर कमलाकृतियों के स्थान पर छोटे शिल्पपटल है। दो भित्तिस्तंभों के शीर्ष पर दो पटल क्रमशः तांडवमूर्ति या नृत्यरत शिव—पल्लव शिल्पांकनों मे शायद ऐसा सबसे पहला अंकन—और 'वृषभांतिकामूर्ति'—पृष्ठभूमि में एक बैल सहित खड़े हुए शिव और उमा—चित्रित करते हैं।

महेंद्र के पुत्र नरसिंहवर्मन मामल्ल (630-668) और उसके पश्चवर्ती उत्तराधिकारियों, महेद्रवर्मन द्वितीय (668-672), परमेश्वर प्रथम (672-700) और राजसिंह (700-728) ने महेंद्र प्रथम द्वारा आरंभ की गई परंपरा को बनाए रखा और उस शताब्दी के समय मे महेंद्र शैली मे अनेक गुफा मंदिरों का उत्खनन करवाया। वे है—'तिरुक्कलुक्कुनरम' स्थित ओरुकुल मंडपम, महाबलीपुरम स्थित कोतिकल मंडपम, सिंगापेरुमल कोविल स्थित नरसिंह गुफा मंदिर, सिंगावरम स्थित रंगनाथ गुफा मंदिर, महाबलीपुरम स्थित धर्मराजा मंडपम या अत्यंत काम पल्लव,

का गुफा मंदिर और सालुवंकुप्पम (महाबलीपुरम के निकट) अतिरणचंड मंडपम गुफा। ये सब तमिलनाडु के चिंगलपेट जिले में हैं और केवल सिंगावरम दक्षिण अरकॉट जिले में है।

सिंगावरम और सिंगापेरुमल कोविल गुफा मंदिर विष्णु को, कोतिकल मंडपम दुर्गा को और शेष सभी शिव को समर्पित है। जबकि शिव गुफा मदिरों से किसी में भी गर्भगृह में चट्टान में काटा गया लिंग नहीं है, दो विष्णु गुफा मंदिरो के गर्भगृहों में देवताओं की गचकारी से वनी आकृतिया हैं, जिनका अब आधुनिकीकरण हो गया है। दुर्गा के कोतिकल मंडपम में गर्भगृह में दुर्गा की कोई मूर्ति नहीं है, तथापि गर्भगृह के प्रवेश के दोनों ओर द्वारपालिकाओ और मंदिर के नाम से भी समर्पण का संकेत मिलता है। शृंखला के अंतिम, राजसिह के अतिरणचड मंडपम में ही शिव के सोमकंद रूप का एक नक्काशीदार फलक है, जिसमें उनके साथ उमा और स्कंद बैठे हुए और उनके पीछे दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु खड़े हुए हैं। गर्भगृह के प्रमुख देवता के आरभिक पारपरिक चित्रांकन, या नक्काशीदार गचकारी, या काष्ठ में उत्कीर्णन के स्थान पर इस प्रकार के नक्काशीदार उत्कीर्णन परमेश्वरवर्मन प्रथम (672-700) के काल मे आरंभ हुए लगते है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार के दोनो ओर मंडप की पिछली दीवार पर ऐसे दो और सोमस्कंद उत्कीर्णन मिलते हैं। ऐसा लगता है कि जब महेंद्रवर्मन प्रथम ने काष्ठ और ईट और गारे के मदिरों की परंपरा को तोड़ा और पाषाण में मंदिरों का उत्खनन करवाया, वह इतनी दूर तक नहीं जा पाया कि गर्भगृह में प्रमुख देवता के निर्माण में काम आने वाली पारंपरिक सामग्री को भी वदल सके। इसके लिए कुछ और दशकों तक, सातवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में परमेश्वरवर्मन प्रथम के काल तक ठहरना पड़ा। जबकि अन्य नए प्रयोगों के साथ पहली बार प्रमुख देवता के उत्कीर्णन को, गर्भगृह की पिछली दीवार पर नक्काशी के रूप मे उभारा गया। राजसिंह के गुफा मदिर अतिरणचंड मंडपम मे पिछली दीवार पर उभरे हुए सोमस्कंद के उत्कीर्णन के सामने गर्भ गृह के फर्श पर काला पॉलिश किया हुआ षोडषभुज पाषाण लिंग (धारा लिंग) स्थापित किया गया। यह पल्लव प्रदेश में शिव के प्रतीक के रूप मे आकार रहित लिंग की स्थापना के आरंभ का सूचक था।

महेंद्रोत्तर गुफा मंदिरों की यह शृंखला अनेक दृष्टियों से महेंद्र के गुफा मंदिरों से आयोजना, डिजाइन और अन्य सामान्य लक्षणों में मिलती जुलती है। किंतु यह देखा जा सकता है कि स्तंभों और भित्तिस्तंभों को अधिक पतला और ऊंचा, कभी कभी एक दीर्घ आयत खंड युक्त अपेक्षाकृत रूप से सपाट बनाने की प्रवृत्ति आ गई थी। उनके वीच स्थान समान है किंतु अधिक चौडा हो गया था। मुखाग्र के ऊपर कपोत अभी भी अभिन्न और धरन के ऊपर प्रक्षिप्त चट्टानी कगार के रूप में हैं। शृंखला के समस्त गुफा मंदिरो में पिछली दीवारों मे केवल एक मंदिर कक्ष

काटा गया है, जिसका अग्रभाग मंडप में अधिक प्रक्षिप्त है। तीन मंदिर कक्षों से युक्त केवल एक उदाहरण धर्मराजा मंडपम या अत्यंतकाम पल्लव का गुफा मंदिर है, जहां दो पश्च मंदिर कक्ष केवल सादे उत्खनन हैं, जो कि शायद परवर्ती परिवर्धन हैं और स्पष्ट मंदिराग्र रहित हैं, जैसा कि मुख्य केंद्रीय कक्ष के मामले में प्राप्त है। इन सब गुफा-मंदिरों में मंडप मुखाग्र पर केवल दो स्तंभ और दो भित्तिस्तंभ हैं, और जहां भी अर्ध और मुखमंडप का विभाजन है, वहां मंडप के भीतर पीछे की ओर भी ऐसी ही व्यवस्था है, जैसी कि रंगनाथ गुफा मंदिर, ओरुक्कल मंडपम और धर्मराजा मंडपम में है। स्तंभो के शीर्ष और आधार पर सदुरम और बीच में कट्टु हैं, जबकि भित्तिस्तंभ एक जैसे चतुर्भुज हैं, जैसे कि एक अपवाद को छोड़कर महेंद्रवर्मन के गुफा मंदिरों में हैं। यह अपवाद है सिंगवरम रंगनाथ गुफा मंदिर जहां स्तंभों के समान ही भित्तिस्तंभ भी सीमांकित हैं और उनके सदुरम फलकों पर कमलाकृतियां हैं। यह गुफा मंदिर इस शृंखला में ऐसा एकमात्र उदाहरण है जिसमें मंडप मुखाग्र के दोनों ओर द्वारपालों की एक जोड़ी है। मंदिर कक्ष के प्रवेश पर अगल बगल में भीतरी जोड़ी शेष मंदिरों के समान ही है।

द्वारपालों के अतिरिक्त मंडप में सामान्यतया अन्य कोई मूर्तियां नहीं हैं। तथापित ओरुक्कल मंडपम में पिछली दीवार पर मंदिर के प्रवेश के दोनों ओर, द्वारपालों से आगे, ब्रह्मा और विष्णु के खड़ी हुई मुद्रा में उत्कीर्णन हैं। इसके अतिरिक्त दो बढ़िया, स्पष्ट, जीवनाकार द्वारपालों जैसे उत्कीर्णन हैं, जो मुख मंडप की दीवार के दोनों छोरों पर एक एक स्थित हैं। सियामंगलम के समान ही सिंगवरम गुफा मंदिर में भीतरी पंक्ति के भित्तिस्तंभों के शीर्ष पर दो नारी भक्तिनों के छोटे उत्कीर्णित फलक हैं।

पल्लव मंदिरों की सन् 730 ईसवी के बाद निर्मित अंतिम शृंखला के मंदिर छोटे और कम महत्व के हैं। वे तोंडैमंडलम में इस प्रकार के शैल वास्तुशिल्प की पतनशील अवस्था के द्योतक हैं। 'किल्माविलंगै' गुफा मंदिर तौंडैमंडलम के पल्लव राज्य में एक मात्र उदाहरण है, जिसमें चट्टान में काटे गए मुख मंडप के बिना चट्टान में काटा गया कक्ष है; किंतु ऐसे कक्ष मंदिर पांड्य, मुत्तरैयार और केरलीय क्षेत्रों में अधिक सामान्य हैं, जिनमें से अधिकांश ईसवी सन् 700 के बाद समकालीन हैं। कक्ष में उसकी पिछली दीवार पर खड़े हुए विष्णु की एक सपाट नक्काशी है। महेंद्र के वसतेश्वरम गुफा मंदिर के नीचे चट्टान पर वल्लम स्थित दो छोटे गुफा मंदिरों में, जिनमें से एक शिव को समर्पित है और दूसरा विष्णु को, बहुत पतले स्तंभ हैं, जो मंडप मुखाग्र पर मुड़े हुए टोड़ो से युक्त हैं और मंडप स्वयं संकरा और पीछे की ओर स्थित मंदिर कक्ष बहुत छोटा है। सातवीं शताब्दी की लिपि में उत्कीर्ण एक शिलालेख में कहा गया है—'पलव पैरारैसारु' जिसका अर्थ है पल्लव सम्राट। यह शिलालेख 'वलम' में वसंतेश्वरम गुफा मंदिर में पाया गया है। यह और

लगभग ऐसे ही उत्खनन, जो बड़े महेंद्र गुफा मंदिर के नीचे हैं कमजोर प्रयास हैं क्योंकि वे अपेक्षाकृत अनगढ़, आकार में छोटे और उथले हैं।

पल्लव : मामल्ल शैली के गुफा मंदिर

महेंद्र के महान पुत्र और उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मन प्रथम मामल्ल (630-668) ने, पूर्व वर्णित ओरुक्कल मंडपम और कोटिकाल मंडपम जैसे महेंद्र शैली के कुछ उत्खनन करवाने के अतिरिक्त काटे गए गुफा मंदिरों की एक नई और अधिक अलंकृत श्रृंखला आरंभ की। यह उसके उस विशिष्ट आविष्कार के अतिरिक्त था, जिसमें संपूर्ण रूप से तराशे गए एकाश्मक मंदिर रूपों, या विमानों, तथाकथित रथों और कुछ पर्याप्त आकार प्रकार तथा उत्कृष्ट स्तर की खुली नक्काशीदार रचनाएं की गईं जो सब की सब मामल्लपुरम या महाबलीपुरम के महान पल्लव पत्तन नगर तक सीमित थीं। मामल्ल द्वारा आरंभ किए गए ये अलंकृत गुफा मंदिर दो पीढ़ियों तक उसके उत्तराधिकारियों द्वारा कई चरणों में पूरे किए गए, जिन्होंने कुछ और भवनों का निर्माण उसी शैली में और उसी स्थान पर करवाया। इनमें जो विशिष्ट विकास दिखाई देता है, वह है उनके मंडप मुखाग्रों का निरूपण, उनकी आंतरिक सज्जा और वर्गाकार विशाल स्तंभों और भित्तिस्तंभों के स्थान पर अलंकृत आधारों और पूर्ण शीर्षो तथा उस श्रेणी के सभी गढ़े हुए अवयवों से युक्त विशिष्ट स्तंभों का उपयोग। इस प्रकार ईंट और गारे में उनके समकालीन मूल संरचनाओं के अधिक सच्चे प्रतिरूप निर्माण किए गए।

अधिष्ठान या आधार कुर्सी में वे सारे सामान्य अलंकरण दिखाई देते हैं, जो परिसज्जित उदाहरणों में देखे जा सकते हैं। मंडप मुखाग्र में पूर्णरूपेण निरूपित प्रस्तर हैं, जिसमें धरन के ऊपर उसके (धरन) सहित सारे वास्तुशिल्पीय अंग आ जाते हैं। यह उसके विपरीत है जैसा महेंद्र शैली के गुफा मंदिरों में दिखाई देता है। प्रस्तर मुड़े हुए कपोत या ओलती जैसे कोर्निस प्रक्षेपण से परिसज्जित हैं और जो घोड़े की नाल जैसे आकार की कुदु मेहराबों से सज्जित है। प्रस्तर के ऊपर लघु मंदिरों की एक कड़ी है, जो सब के सब दीर्घायत योजना के और प्रायः बेलनाकार मेहराबी छत, शाला से युक्त हैं, जबकि परवर्ती उदाहरणों में शाला की कड़ी दोनों सिरों पर मिलते जुलते ऐसे लघु मंदिर प्रतिमानों में समाप्त होती है, जिनकी योजना चतुर्भुज गुंबदाकार छत या कूट युक्त वर्गाकार है। यह पूरी कडी छत से ढंके हुए रास्ते की अंतर्संबंधी लंबाई युक्त हार का निर्माण करती है। स्तंभ सामान्यतया काठ के आदि प्रारूपों के समान है, किंतु थोड़े ऊंचे और पतले हैं और उनके आधारों को प्रायः बैठे हुए सिंहों का आकार दे दिया गया है। स्तंभ के शीर्ष पर विभिन्न आकार के शीर्ष अवयव जैसे मालस्थान, पद्मबंध, कलश, ताड़ी, कुंभ,

पाली और फलक होते हैं। जिसमें से कुछ में फलक नहीं हैं और इनमें से सर्वोच्च अवयव पर, मुड़ी हुई पार्श्विका और मध्य में सारे पट्ट से युक्त 'तरंग' अलंकरण सहित टोड़ा या पोतिका होती है।

उनके मंडप प्रायः अग्र और पश्च खंडों में स्तभों की एक आंतरिक पंक्ति द्वारा सीमांकित हैं। एक, तीन या पांच, मंदिरों के अग्रभाग भीतरी मंडप के पिछले भाग में हैं और मंडप के अंदर तक प्रक्षिप्त हैं और विमान के अग्र के सारे अंग, यथा, अलंकृत अधिष्ठान भित्तिस्तंभ या कुछ स्तंभ जिन पर ऊपर वर्णन किए गए शीर्ष घटक हैं, और सुगढ़ कपोत और कुदु अलंकरण युक्त प्रस्तर हैं। विमान की और आगे की अधिरचना दिखाई नहीं गई है। जैसे कि पीछे के भाग में मंदिर युक्त किसी मंडप के आंतरिक भाग के चित्रण में विमान के ऊपरी भाग दिखाई नहीं देते। मंदिर देवी के अग्रभाग का प्रस्तर मंडप वितान से संसक्त है।

इस प्रकार के आठ गुफा मंदिर निर्माण के विभिन्न चरणों में हैं—कोनेरी मंडपम, वराह मंडपम, महिषमर्दिनी मंडपम (स्थानीय नाम यमपुरी मंडपम), कोनेरी मंडपम के निकट एक अधूरा गुफा मंदिर, पंचपांडव मंडपम, आदिवराह गुफा मंदिर जिसे उसके शिलालेख में परमेश्वर महावराह विष्णुगृहम कहा गया है और रामानुज मंडपम। इनमें से वराह और रामानुज मंडपमों में अविभाजित मंडप हैं, जबकि कोनेरी मंडपम और आदिवराह गुफा मंदिर के मंडप स्तंभों की एक भीतरी पंक्ति द्वारा अर्ध और मुख मंडपों में विभाजित हैं। महिषमर्दिनी मंडप इस अर्थ में विशिष्ट है कि उसके प्रमुख केंद्रीय मंदिर के आगे एक वर्गाकार और स्तंभों से युक्त ड्यौढ़ी है जो बड़े मंडप में प्रक्षिप्त है, जैसी कि दलवनुर गुफा मंदिर में है। पंचपांडव मंडपम में एक वर्गाकार केंद्रीय मंदिर काटने का प्रयास किया गया है जिसके चारों ओर स्तंभों की दो पंक्तियों वाले एक मंडप के रूप में एक प्रतिवेशी विहार (छत से ढंका रास्ता) है। वराह मंडपम और आदिवराह गुफा मंदिर में एक एक गर्भगृह है, जबकि महिषमर्दिनी और रामानुज मंडपमों में तीन तीन गर्भगृह है और कोनेरी मंडपम में मंडपम के पीछे एक पंक्ति में पांच गर्भगृह हैं।

महेंद्र शैली की अपेक्षा मामल्ल शैली के गुफा मदिरों में एक स्पष्ट प्रगति दिखाई देती है, जिनमें रूपंकर अलंकरण भी हैं और द्वारपाल की सामान्य रूपेण प्राप्त मूर्तियो के अतिरिक्त बड़ी और उत्कृष्ट मूर्तियों का भंडार भी है, जिनमें प्रायः महत्वपूर्ण पुराण कथाएं सार रूप में अभिव्यक्त है। इनमे से सर्वाधिक संपूर्ण गुफा मदिर, जिसके सभी अंग सुरक्षित हैं, वराह मंडप है। इसके मंडपम की पार्श्व दीवारों पर बड़े बड़े पटलों में भू-वराह और त्रिविक्रम की उत्कीर्णित रचनाएं है। इसकी पिछली दीवार पर प्रक्षिप्त मंदिर वेदी के दोनो ओर दो और फलक हैं जिन पर गजलक्ष्मी और दुर्गा हैं। प्रक्षिप्त मंदिर के अग्रभाग की अगली और बाजू की दीवारों पर ताकों में द्वारपालों की मूर्तियां हैं। जिस ढंग से भू-वराह का सिर गरदन के पास

से मानव शरीर में अलक्ष्य रूप से मिलता है, वह एक श्रेष्ठ कलाकृति है जिसकी बराबरी गुप्त और अन्य मूर्तियों में ऐसे ही निरूपण नहीं कर सकते। केंद्रीय मंदिर अब खाली है, किंतु शायद कभी वहां नरसिंह का चित्रांकित या गचकारी में निरूपण था। किंतु गजलक्ष्मी और दुर्गा के लगभग ऐसे ही, किंतु अधिक कलात्मक और लालित्यपूर्ण चित्रण लगभग ऐसी ही स्थिति में आदिवराह गुफा मंदिर में प्रक्षिप्त मंदिर प्रवेश के दोनों ओर पश्च भित्ति फलकों पर किए गए हैं। इसके अतिरिक्त आदिवराह गुफा मंदिर के प्रक्षिप्त केंद्रीय मंदिर की सामने की दीवार पर प्रवेश के दोनों ओर तीन तीन ताक हैं जिनमें अन्य मूर्तियां हैं। प्रवेश के अगल बगल के ताकों में द्वारपाल हैं। दोनों ओर मध्य के चौड़े ताक में खड़े हुए विष्णु और हरिहर की मूर्तियां हैं। उत्तर और दक्षिण के कोनों पर स्थित ताकों में मानव रूप में, पांच सिरों वाले सर्प छत्र से युक्त नागराज या आदिशेष और त्रिभंग मुद्रा में एक चित्त मूर्ति है। मुख मंडप की उत्तरी और दक्षिणी दीवारों पर खड़े हुए ब्रह्मा और गंगाधर रूप में शिव के बड़े बड़े उत्कीर्णन हैं। ऐसे ही फलक अर्धमंडप की दक्षिणी और उत्तरी दीवारों पर हैं, जिन पर लगभग मानवाकार में अपनी रानियों और पत्नियों सहित पल्लव नरेश सिंह विष्णु और महेंद्र के राजसी समूह चित्र हैं और जिन पर उनकी पहचान के लिए नाम अंकित हैं। मुख्य गर्भगृह में वराहमूर्ति का आधुनिक गचकारी रूप है। इस मंदिर मे अभी भी पूजा की जाती है, जबकि अन्य पूजा के काम में नहीं आते। रामानुज मंडपम की दक्षिणी दीवार पर दुर्गा की और उत्तरी दीवार पर गजलक्ष्मी (?) की उत्कीर्णित मूर्तियां परवर्ती काल में आधिपत्य रखने वाले वैष्णवों द्वारा नष्ट कर दी गई। साथ ही इस मूल रूप से तीन कक्षों वाले शिव गुफा मंदिर के तीनों मंदिरों के अग्रभाग और उनके द्वारपाल भी नष्ट कर दिए गए। केंद्रीय मंदिर की पिछली दीवार पर सोमस्कंद समूह के चिह्न विद्यमान हैं। महिषमर्दिनी गुफा मंदिर में उसके मंडप की दो पार्श्व भित्तियों पर दो अत्यधिक यशस्वी और प्रसिद्ध पल्लव मूर्तियां हैं, यथा, उत्तर की दीवार पर महिषासुर और उसकी सेना से युद्धरत सिंहारूढ़ महिषासुरमर्दिनी के रूप में दुर्गा और दक्षिणी दीवार पर शेषनाग पर लेटे योगनिद्रा में अनंतशायी विष्णु। दुर्गा में चित्रित सौंदर्य, लालित्य, ओज और दक्षता के साथ ही महिषासुर में भैंस के सिर और मानव शरीर का संश्लेषण केवल उस वराह रूप की ही बराबरी कर सकता है, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है; उसके पशु मुख पर, उसकी मुद्रा और आचरण द्वारा दिखाई गई अवज्ञा और अहंकार का तो कहना ही क्या है ! इस प्रकार ये सारी मूर्तियां कुछ विभिन्न आरंभिक रूपाकारों की विद्यमान प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार दक्षिण मे आरंभिक मूर्तिकला अथवा प्रतिमा विज्ञान के विकास के अध्ययन के लिए मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत करती हैं।

नई शोध (लॉकवुड, शिरोमणि और दयानंदन द्वारा—महाबलीपुरम स्टडीज) ने

प्रमाणित कर दिया है कि शैव और वैष्णव पल्लव गुफा मंदिरो के द्वारपाल वास्तव में आयुधपुरुष या शिव के निजी शस्त्रों (शूल और परशु) का या फिर विष्णु के निजी शस्त्रों (शंख और चक्र) का मूर्तिमान मानवीकरण हैं, जो संबधित द्वारपाल के शिरस्त्राण पर दर्शित हैं। यह भी बताया गया है कि महिषमर्दिनी गुफा मंदिर मूल रूप से विष्णु को समर्पित था, किंतु बाद में उसी शताब्दी में मंदिर की पिछली दीवार पर मूल रूप से विष्णु (जो शायद रंगीन गचकारी से निर्मित था) के स्थान पर एक बड़ा सोमस्कंद फलक बनाकर शैव मंदिर में परिवर्तित कर दिया गया। मंदिर के पाखो के दोनों तरफ संकरे स्थानों में विलक्षण ढंग से फंसे हुए द्वारपाल यथोचित रूप से बाद का विचार हैं और उनमें शैव पुनःसमर्पण के अनुसार सुधार किया गया। इसी प्रकार त्रिमूर्ति ढंग में दोनों तरफ के मंदिर कक्षों में भी संशोधन किया गया, जबकि मूल योजना में केंद्रीय गर्भगृह में विष्णु अग्र स्थान ग्रहण किए हुए थे।

महाबलीपुरम और उसके आसपास प्राप्त शैल उत्कीर्णनों की शृंखला में, उसके अतिरणचंड मंडपम के समान पूरी तरह से गुफा मंदिर तो नहीं, किंतु राजसिंह पल्लव (700-728) के अन्य निर्माण, महाबलीपुरम के उत्तर में 'शालुवनकुप्पम' नामक एक खेड़े में स्थित यलीमंडपम, जिसे सामान्य रूप से बाघ गुफा के नाम से जाना जाता है, और ऐसे ही अलंकृत मंडप हैं। यलीमंडपम एक छोटा, आयताकार, उथला मंडप है, जो एक चट्टान के पूर्वी भाग पर समुद्र की ओर मुंह किए उत्खनित किया गया है। इसमें एक अलंकृत अधिष्ठान और बगली स्तंभों से युक्त मुखाग्र हैं। स्तंभों के आधार पर पिछले पैरों पर खड़े व्याल हैं, जो एक सोपान युक्त निचले मंच पर स्थित हैं। संपूर्ण संरचना ग्यारह बड़े व्याल मस्तकों की मेहरावदार चित्र वल्लरी से घिरी हुई है, जिन्हें गलती से बाघ मस्तक कहा जाता है। मंडप के दक्षिण में, चट्टानी फलक पर हौदों से युक्त दो हाथियों के अगले भाग उत्कीर्णित है, बीच में एक ध्वज स्तंभ है और धुर दक्षिण में एक अश्व है। चट्टान के उत्तरी फलक पर एक बड़े बैठे हुए सिंह का अग्रभाग अवगढ़ रूप से तराशा हुआ है, जिसके सीने मे एक छोटा वर्गाकार ताक बना है जिसमें महिषमर्दिनी का एक उत्कीर्णित फलक है। स्पष्ट है कि यह यलीमडपम उत्सवों के दौरान शोभा यात्रा में निकली मूर्तियो या राजपुरुषों के लिए विश्राम स्थल के रूप मे काम आता था। शिलालेखों में प्राप्त तिरुवेलुच्चिपुर नाम से भी यही संकेत मिलता है। थलीमंडपम की एक छोटी प्रतिकृति महाबलीपुरम में तट मंदिर के दक्षिण में स्थित समुद्री लहरों से आहत चट्टान पर भी मिलती है। मंदिर के उत्तर में एक और बड़ी चट्टान है, जो महिषमर्दिनी चट्टान कहलाती है और जिस पर एक सिंह का चेहरा बना है और हृदय में एक ताक में दुर्गा हैं।

चलते चलते महाबलीपुरम में विशाल चट्टानों पर बड़े मूर्ति समूह की प्रख्यात मुक्ताकाश नक्काशीदार रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। वे अर्जुन की

तपस्या और गोवर्धन कृष्ण के दृश्य हैं। दोनों दृश्य सारात्मक हैं और अपने अपने संदर्भो के परिचायक हैं। अर्जुन की तपस्या वाले दृश्य में, कठोर तपस्या करने के उपरांत अर्जुन के मांगने पर, शिव द्वारा वरदान के रूप में पाशुपतास्त्र प्रदान करने का चित्रण है। यह चित्रण भारविकृत किरातार्जुनीय में वर्णित दृश्य के अनुसार है। गोवर्धन कृष्ण दृश्य में कृष्ण को गोवर्धन पर्वत उठाए हुए दिखाया गया है जिसके नीचे इंद्र के क्रोध के कारण मूसलाधार वर्षा और पत्थरों से बचने के लिए गृहविहीन गोप और गोपियां अपने बच्चों, मवेशियों और अन्य सामानों सहित आश्रय लिये हैं। चित्रण काफी प्रभावशाली और यथार्थपरक है। इसमें एक विशेष दक्षिण भारतीय प्रभाव यह है कि कृष्ण की प्रिय गोपी नप्पिन्नै को कृष्ण के सन्निकट खड़ी दिखाया है और उसकी वेशभूषा, मुद्रा और सेविका के विशिष्ट चित्रण द्वारा उसे समूह की अन्य महिलाओं से अलग दिखाया गया है। कृष्ण नप्पिन्नै विषय आरंभिक और समकालीन तमिल साहित्य एवं परंपरा में विशिष्ट स्थान रखता है।

दक्षिण के पांड्य और पल्लवेतर गुफा मंदिर

दक्षिण में और आगे पांडिमडलम में, जिसके अंतर्गत मुख्य रूप से मदुरै, रामनाथपुरम, तिरुनेलवेली, कन्याकुमारी, तिरुअनंतपुरम, क्विलन के आधुनिक जिले और पुदुक्कोटै क्षेत्र का दक्षिणी भाग जो अब एक जिला है, सम्मिलित हैं, वहां पल्लवों के समकालीन पांड्यों ने अग्रगामियों के तुरंत पश्चात अर्थात सातवीं शताब्दी के मध्य के बाद, शैल वास्तुशिल्प आरंभ किया। उन्होंने तीन शताब्दी तक गतिविधि जारी रखी, जब तक कि, पल्लवों के समान, वे तंजावुर के उदीयमान चोलों द्वारा पराजित नहीं किए गए। तमिलनाडु के दक्षिणी अर्धभाग और संलग्न केरलीय क्षेत्र में उनके गुफा मंदिरों की संख्या पल्लवों के गुफा मंदिरों से बहुत अधिक है।

मुत्तरैयार सरदारो ने, जिनका राज्य कावेरी के आर पार पारंपरिक चोलमंडलम, यथा तिरुचिरापल्ली, जिलों और दक्षिणी अरकॉट जिले के दक्षिणी अर्धभाग में था और जिनकी निष्ठा कभी पल्लवों और कभी पांड्यों के साथ होती थी, अपने क्षेत्र में इस काल के परवर्ती भाग में कुछ गुफा मंदिर बनवाए। ये तिरुवेल्लारै, 'नर्त्तमलै, कुन्नान्दरकौविल', पुवलैक्कुडी और अन्य स्थानों पर मिलते हैं, जो सब पुदुक्कोटै और तिरुचिरापल्ली जिलों में हैं। उनके गुफा मंदिर भी मंडप प्रकार के हैं, जिनमें सारे मंदिर कक्ष हैं और उसी क्षेत्र के पांड्य गुफा मंदिर से बहुत मिलते जुलते हैं। तिरुचिरापल्ली जिले की सीमा पर, सलेम और कोयम्बतूर जिलों के कोंगु क्षेत्र में शासन करने वाले अतीयमान या 'आदिगैमान' सरदारों ने नामक्कल में दो उत्कृष्ट गुफा मंदिरों का उत्खनन करवाया। वे विष्णु को समर्पित हैं और अपने उत्कृष्ट मूर्तियों से युक्त फलकों के लिए उल्लेखनीय हैं।

ये गुफा मंदिर, जिनकी संख्या लगभग साठ है, पल्लव उदाहरणों के समान, कठोर, स्थानीय चट्टानों में उत्खनित हैं और मूल रूप से योजना और डिजाइन में महेंद्र शैली के उत्खननों के समान हैं। किंतु उनमें उनके अपने कुछ विशिष्ट लक्षण भी मिलते हैं, जिनमें चालुक्य उदाहरणों में प्राप्त कुछ लक्षण भी, विशेष रूप से उनके मूर्ति विन्यास और प्रतिमा विज्ञान से संबंधित लक्षण भी सम्मिलित हैं।

महेंद्र शैली के गुफा मंदिरों के समान, उनमें प्रायः पीछे की ओर काटे गए एक या एकाधिक मंदिर कक्ष हैं, किंतु कुछ मामलों में मंडप की पार्श्व दीवारों में भी तराशे गए हैं, जैसे कि तिरुचिरापल्ली स्थित निचली चट्टान मे काटी गई पल्लव गुफा और मदुरै के निकट तिरुप्परांकुनराम स्थित गुफा मंदिर और अन्यों में। उनके मुखाग्र पर विशाल स्तंभ हैं, जो अनिवार्य रूपेण आधार और शीर्ष पर खंडों में वर्गाकार हैं, जबकि मध्य भाग अष्टभुज हैं। इन पर भारी पोतिकाएं हैं, जो सामान्यतया एक सीधे पख से युक्त हैं, जिससे एक कोणीय पार्श्व दृश्य बनता है। फिर भी, कुछ उदाहरण अन्य प्रकार के स्तंभों और पोतिकाओं से युक्त हैं, जो मुड़े हुए पार्श्व दृश्य और तरंगों उत्कीर्णनों सहित हैं। सारे गुफा मंदिरों में मंडप मुखाग्र के ऊपर प्रस्तरपाद में स्पष्ट कपोतों का अभाव है, जैसा कि महेंद्र शैली के गुफा मंदिरों में भी है।

कुछ उत्खनन केवल मंदिर कक्ष हैं जो सीधे चट्टान की सतह में, सामने चट्टान में मंडप काटे बिना ही खोदे गए हैं। ऐसे गुफा मंदिर इस क्षेत्र में बहुत अधिक संख्या में और तोंडैमंडलम में बहुत कम हैं।

मलैयादिक्कुरिची (जिला तिरुनेलवेली) स्थिति गुफा मंदिर, जो पिछली ओर एक मंदिर कक्ष और सातवीं शताब्दी के द्वितीयार्ध में पांड्य मारन सदैयन के राज्यकाल के सत्रहवे वर्ष के एक स्थापना शिलालेख से युक्त है, मंडप प्रकार का आरंभिक ज्ञात पल्लव गुफा मंदिर लगता है। शिलालेख में गुफा मंदिर को विशिष्ट रूप से 'कल तिरु क कोविल' या पवित्र पाषाण मंदिर कहा गया है, जो तोंडैमण्डालम में मंडगपट्टु स्थित पल्लव महेंद्रवर्मन के शिलालेख के समान इस क्षेत्र में प्रारंभिक विचार की गूंज हैं। पिल्लैयारपट्टी (जिला रामनाथपुरम) में एक अप्रचलित लिपि में खुदे शिलालेख युक्त चट्टान में काटा गया गुफा मंदिर भी आरंभिक पांड्य गुफा मंदिरो मे से एक है जैसा कि उसी जिले में कुन्नक्कुडी स्थित शिव गुफा मंदिर क्रमांक III में, एक अन्य लिपि मे उसे 'मासिलिसवरम' कहा गया है। अनैमलै (जिला मदुरै) स्थित विष्णु (नरसिंह) गुफा मंदिर में एक आधार शिलालेख है, जिसमें कलि संवत् 3871 (ईसवी 770) दिया गया है और पांड्य मारन सदैयन उर्फ परंतक के एक मंत्री द्वारा उसके उत्खनन का संदर्भ है। मदुरै के निकट 'तिरुप्यांकुन' राम स्थित वर्तमान में सुब्रह्मण्य मंदिर के नाम से प्रसिद्ध बड़े गुफा मंदिर का उत्खनन पहले किया गया और फिर बाद में एक अन्य पांड्य

मंत्री और उसकी पत्नी द्वारा कलि संवत् 3874 (ईसवी 773) में उसे नया रूप दिया गया, जैसा कि वहां उनके आधार शिलालेखों में कहा गया है। वहां तिरुप्पांकुनराम शैल के उत्तरी पृष्ठ पर चार गुफा मंदिरों का एक समुच्चय है और उपरोक्त शिलालेखों में से एक में एक अलग ज्येष्ठ गुफा मंदिर के उत्खनन का भी उल्लेख है, जो आगे की ओर मंडप के बिना गुफा कक्ष प्रकार का है। बड़े मंडप प्रकार के गुफा मंदिर के दोनों ओर और ज्येष्ठ गुफा मंदिर के स्तर से अधिक ऊंचाई पर दो अन्य उत्खनन हैं, जो कुछ समय बाद के होने चाहिए। इनमें से एक में गजलक्ष्मी का उत्कीर्णन है और दूसरे में भुवनेश्वरी के रूप में देवी और उनके सेवकों का समूह है।

पुदुक्कोटै क्षेत्र (जिला तिरुचिरापल्ली) में सित्तन्नवसाल स्थित चट्टान में कटा प्रसिद्ध गुफा मंदिर, जिसमें दीवारों पर यशस्वी आरंभिक भित्ति चित्र हैं, आठवीं नवीं शताब्दियों के जैन गुफा मंदिर का एक उदाहरण है। इसके साथ एक लंबी कविता युक्त शिलालेख के अनुसार, यह किसी इलान गौतमन उर्फ मदुरै असीरियन द्वारा पुनर्लंकृत करवाया था और सामने की ओर एक मुख मंडप बनवाया और यह सब अवनीयशेखर श्रीवल्लभ पांड्य (815-862) के शासनकाल में हुआ। इसमें मंदिर कक्ष की पिछली दीवार और सामने मंडप की पार्श्व दीवारों पर ताकों में जैन तीर्थकरों के उत्कीर्णित शिल्पांकन हैं। यह गुफा मंदिर महेंद्र शैली गुफा मंदिर का विशिष्ट पांड्य संस्करण है, जिसके मुखाग्र स्तंभ 'तरंग' पोतिकाओं से युक्त हैं।

मलैयाक्कोविल स्थित पूर्वी गुफा मंदिर, तिरुमयम स्थित ऊपरी शिव गुफा मंदिर, मंगाडु स्थित गुफा मंदिर, रायावरम के निकट मलैक्कोलुडीश्वरन, तिरुप्परांकुरनराम में ज्येष्ठ, गजलक्ष्मी और भुवनेश्वरी गुफा मंदिर और विजिनाम (विजिंगाम) स्थित गुफा मंदिर, अन्य मंदिरों के बीच, अपल्लव शृंखला के पांड्य मुत्तरैयार ऐवेल काल के सादे गुफा मंदिरों के उदाहरण हैं।

जिन गुफा मंदिरों में मंडप की किसी एक पार्श्व भित्ति पर मंदिर कक्ष हैं, उनमें से तिरुमायम स्थित शिव गुफा मंदिर मलैयाक्कोविल स्थित दक्षिणी गुफा मंदिर, तिरुमालपुरम (जिला तिरुनेलवेली) स्थित शिव गुफा मंदिर और तिरुप्परांकुनराम स्थित शैल के दक्षिणी पार्श्व पर उमैयांदर गुफा मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ गुफा मंदिरों के मामले में, जैसे कि मलैयादिप्पट्टी स्थित शिव गुफा मंदिर, पिलैयारपट्टी स्थित गुफा मंदिर और मुवरैवेनरन (जिला रामनाथपुरम) में गुफा मंदिर में मंदिर वाला भाग दीर्घायित मंडपम में एक कोने में स्थित है, जिससे, इस प्रकार मंडप कक्ष को दो पार्श्वो—सामने से और एक बगल से घेरता है जो कि एक केंद्रीय मंदिर कक्ष और आसपास घेरते मंडप (जिसका अधिकांश भाग सामने की ओर होता है) की आंशिक अनुकृति का संकेत मिलता है। महाबलीपुरम स्थित पंचपांडव मंडपम और ममंदुर स्थित अधूरे गुफा मंदिर क्रमांक IV के अतिरिक्त पल्लव उदाहरणों में

इस प्रकार की योजना सामान्य रूप से नहीं मिलती। केरल में त्रिचूर के निकट त्रिकुर स्थित गुफा मंदिर केंद्र में लिंग सहित एक वर्गाकार बड़े प्रकोष्ठ का उत्खनन है। मंडप की दोनों पार्श्व दीवारों में काटे गए मंदिर कक्षों से युक्त गुफा मंदिरों के उदाहाण तिरुचिरापल्ली स्थित चट्टान में कटे निचले गुफा मंदिर और तिरुप्परांकुनराम स्थित पहाड़ी के उत्तरी पार्श्व पर बड़े गुफा मंदिर, जिसे सुब्रह्मण्य मंदिर कहा जाता है, के द्वारा द्रष्टव्य है। इसमें, मंडपम की दोनों ओर की दीवारों में उत्खनित दो मंदिर कक्षों के अतिरिक्त पिछली दीवार में भी एक तीसरा मंदिर कक्ष काटा गया है।

एक घनाकृति आधार और शीर्ष तथा बीच में एक अष्टभुजाकार पट्टी से युक्त मंडप जैसा मुखाग्र स्तंभ, जबकि एक सामान्य नियम है, जैसे कि महेंद्र शैली गुफा मंदिरों में है, फिर भी प्रायः रूपभेद मिलते हैं। उदाहरण के लिए, कुट्टुमियामलै में स्थित मेलैक्कोविल में कलश, कुंभ इत्यादि जैसे शीर्ष अवयव मुखाग्र के स्तंभों के शीर्ष पर काटे गए हैं। मलैयादिप्पट्टी स्थित विष्णु गुफा मंदिर में स्तंभों के आधार पिछले पैरों पर बैठे सिंहों की आकृति में काटे गए हैं। मलैयादिक्कुरिची गुफा मंदिर पोतिकाएं इस प्रकार से विशेष हैं कि तरंगों को भीतर की ओर मुड़ते छल्लों में काटा गया है, जो चालुक्य प्रभाव को सूचित करता है।

इन सबसे अधिक रोचक इन गुफा मंदिरों में उनकी विविध मूर्ति शिल्पीय अंतर्वस्तु और प्रतिमाविज्ञानी रूपाकार हैं, जिनमें से कुछ तमिलनाडु और केरल के दक्षिणी गुफा मंदिरों में पहली बार दिखाई दिए। वे हैं गणेश, सप्तमातृका और ज्येष्ठ। इस प्रकार गणेश और सप्तमातृका मत चालुक्य क्षेत्र से गंग क्षेत्र होते हुए, पल्लवों के तोंडैमंडलम में पहुंचने के पूर्व दूरस्थ दक्षिण में पहुंच गए लगते हैं। ये दोनों पल्लव मंदिरों में तब तक दिखाई नहीं देते, जब तक कि वे राजसिंह पल्लव (700-725) के संरचनात्मक मंदिरो में, जैसे कि, उदाहरण के लिए कांची स्थित कैलासनाथ में पहली बार दिखाई देते हैं। दूरस्थ दक्षिण में पिलैयारपट्टी, कुटुमियामलै, मलैयाक्कोविल (दक्षिणी गुफा मंदिर) तिरुगोकर्णम, कुन्नांदरकोविल, तिरुवेल्लारै (शिव गुफा मंदिर), देवरमलै, तिरुक्कालकुडी, तिरुचिरापल्ली (निचला गुफा मंदिर), तिरुमालापुरम, कुन्नाक्कुडी, मुवरैवेनरन, तिरुप्परांकुनराम (बड़ा गुफा मंदिर) सेविलिप्पट्टी, कुन्नतुर (नीलकंठेश्वर), वीरशिखामणि और अरित्तापट्टी में गणेश प्राप्त हैं। सप्तमातृका समूह, तिरुगोकरणम, मलैयादिपट्टी, तिरुक्कालक्कुडी और कुन्नतुर के गुफा मंदिरों में प्राप्य है। शिव को समर्पित अनेक गुफा मंदिरों में जबकि मंदिर कक्ष में चट्टान में पीठ सहित तराशा गया लिंग मिलता है, अन्यों में गर्भगृह की पिछली दीवार पर शिव के प्रतिमारूप उत्कीर्णनों के रूप में मिलते हैं। गर्भगृह के फर्श में, लिंग पीठ के ऊपर की प्रक्षिप्त नाली के मुंह के नीचे प्रायः एक कुंड है जिसमें अभिषेक का जल बहकर आता और इकट्ठा होता है। यह विशेषता

पल्लव मंदिरों में, चाहे वे गुफा, एकाश्मक या संरचनात्मक हों, नहीं मिलती हैं, किंतु यह चालुक्य क्षेत्र और दूरस्थ जावा (इंडोनेशिया) की दींग घाटी के मंदिरों में मिलती है। लिंग पीठ सामान्य रूप से वर्गाकार है, किंतु मलैयाक्कोविल स्थित पूर्वी गुफा मंदिर में अष्टभुज है। तिरुप्परांकुनराम गुफा मंदिर के शिव मंदिर कक्ष में, पिछली दीवार पर एक सोमस्कंद पटल है, जैसे कि सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण के पल्लव गुफा मंदिरों और बाद के संरचनात्मक मंदिरों में मिलते हैं। पिरानमलै और तिरुमलै (जिला रामनाथपुरम) स्थित गुफा मंदिरों में स्कंद के बिना केवल शिव और पार्वती (उमा सहित मूर्ति) बैठे हुए हैं। तिरुप्परांकुनराम स्थित उमैयांदर गुफा मंदिर के कक्ष की पिछली दीवार पर अर्धनारी शिव का उत्कीर्णन है, जबकि अनैमलै स्थित लडनकोविल गुफा मंदिर में, जो सुब्रह्मण्य को समर्पित है, शिव को पार्वती सहित केंद्रीय मंदिर कक्ष में दिखाया गया है।

किंतु तिरुप्परांकुनराम स्थित सुब्रह्मण्य गुफा मंदिर में पूर्वी पार्श्व मंदिर कक्ष की पिछली दीवार पर परिचित पल्लव शैली के सोमस्कंद उत्कीर्णन के एकमात्र अपवाद के अतिरिक्त, स्कंद के बिना उमा सहित मूर्ति (शिव) का उत्कीर्णन पांड्य गुफा मंदिरों में महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए ऐसी मूर्तियां पिरानमलै और तिरुमलै (जिला रामजायपुरम) और कुन्नांदरकोविल (जिला पुदुक्कोट्टै) गुफा मंदिर के चट्टान में कटे अग्र मंडप की उत्तरी दीवार पर, उस क्षेत्र में प्रचलित, शिव पार्वती विवाह या मीनाक्षी सुंदरेश्वर के वैवाहिक रूप का संकेत हैं।

तिरुचिरापल्ली (पांड्य) स्थित चट्टान में कटे निचले गुफा मंदिर में दो पार्श्ववर्ती मंदिर कक्ष जबकि शिव और विष्णु को समर्पित हैं, मंडप की पिछली दीवार में भित्तिस्तंभों से युक्त पांच ताक हैं, जिनमें से केंद्रीय ताक में ब्रह्मा हैं और अन्यों में गणेश, सुब्रह्मण्य, सूर्य और दुर्गा हैं। शिव और विष्णु सहित ये षण्मत समूह के देवताओं का मंडल बनाते हैं, जो कहा जाता है कि शंकराचार्य ने वर्तमान पूजार्चना (कर्मकांड) के संशोधन के बाद पुनर्स्थापित किया था। शंकर षण्मत स्थापनाचार्य कहे जाते हैं। षण्मत में शैव, वैष्णव, शाकत, कौमार, सौर और गाणपत्य सम्मिलित हैं। इस गुफा मंदिर में षण्मत मंडल यह भी संकेत देता है कि षण्मत देवताओं को पहले से विद्यमान शिव, विष्णु और ब्रह्मा की त्रिमूर्ति पर अध्यारोपित किया गया है। त्रिमूर्ति का प्रारंभ महेंद्र पल्लव ने अपने प्रथम मंडगपट्टु गुफा मंदिर में किया था। तिरुप्परांकुयम स्थित बड़े गुफा मंदिर में छह में से, सूर्य को छोड़कर पांच देवता हैं, क्योंकि दो प्रमुख पार्श्ववर्ती मंदिर कक्ष शिव और विष्णु को समर्पित हैं, जबकि तीसरा दुर्गा को, जो पिछली दीवार के मध्य मे काटा गया है, जिसके दोनों ओर के अंतरालों में गणेश और सुब्रह्मण्य की मूर्तियां हैं।

किंतु इस प्रकार से पूर्णतया अनुयायी विष्णु गुफा मंदिरों में जो अपेक्षाकृत कम ही हैं, साथ ही अन्य कई मंदिरों के भी विष्णु पूजा कक्षों में वे मुख्यमूर्ति के

रूप में खड़े हुए, बैठे हुए और प्रायः शयन मुद्रा में मिलते हैं। खड़ी हुई मुद्रा तिरुचिरापल्ली के निचले गुफा मंदिर के विष्णु पूजा कक्ष में, बैठी हुई मुद्रा बड़े तिरुप्परांकुनराम गुफा मंदिर के विष्णु पूजा कक्ष में और शयन मुद्रा तिरुमयम, मलैयादिप्पट्टी और तिरूत्तंगल (जिला रामनाथपुरम) और नमक्कल (जिला सलेम) स्थित पूर्वी या रंगनाथ मंदिर में मिलती है। नमक्कल स्थित अन्य गुफा मंदिर में गर्भगृह में नरसिंह हैं।

कुदुमियामलै स्थित मलैक्कोविल शिव मंदिर, तिरुमयम स्थित सत्यगिरीश्वर या शिव गुफा मदिर, उसी स्थान पर ऊपरी शिव गुफा मंदिर कक्ष, तिरुगोकरणम स्थित गोकर्णेश्वर गुफा मंदिर और मलैयाक्कोविल स्थित पूर्वी गुफा मंदिर कक्ष, 'पल्लव ग्रंथ' लिपि में और प्राचीन तमिल लिपि में पुष्पिकाओं में सांगित्तिक स्वरांकन पर लेखों से जुड़े हैं, जिनका संकेत उन पर लगे लेबल परिवादिनीय से मिलता है। वास्तविक स्वरांकन या उनके अवशेष, जबकि पहले दो मे दिखाई पड़ते हैं, किंतु शेष में वे पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं। विद्यमान पुष्पिकाएं संकेत देती हैं कि परिवादिनी (तंत्रीयुक्त वीणा) की कला या 'विद्या परिवादिनी' किसी गुणसेन द्वारा प्रतिपादित की गई थी और एक महान शैव या परममाहेश्वर नरेश और रुद्राचार्य के शिष्य द्वारा शौकीनों के लाभ के लिए उत्कीर्ण करवाई गई थी। तिरुमयम स्थित गुफा मंदिर जबकि इस प्रकार सांगितिक शिलालेखों की उपस्थिति द्वारा उपरोक्त अन्य मंदिरों से जुड़ा हुआ है, उसमें मंदिर कक्ष के प्रवेश की बगल में एक द्वारपाल के रूप में किसी नरेश या सामंत की व्यक्ति मूर्ति है, और वैसी ही मूर्ति उसी जिले (पुहुनकोट्टै) में 48 किलोमीटर की परिधि के भीतर कुन्नांदर कोविल और देवरमलै में भी मिलती है। यही नहीं, दूर दक्षिणी जिले तिरुनलवेली में वीर शिखामणि स्थित शिव गुफा मंदिर और केरल में क्विलन के निकट कवियुर स्थित गुफा मंदिर में भी यह मूर्ति मिलती है। इससे उद्गम की समानता, यथा, पांड्य और समय की सन्निकटता का भी संकेत मिलता है। 'तिरुनन्दिक्कार' स्थित गुफा मंदिर जो एक दक्षिणमुखी मंडप मुखाग्र और मंडप की पश्चिमी दीवार पर भीतर एक पूर्वमुखी मंदिर कक्ष से युक्त है, प्राचीन भित्ति चित्रों के अवशेषों के लिए विख्यात है। ये भित्ति चित्र पांड्यकाल के सितान्नवसाल और तिरुमलापुरम के भित्ति चित्रों के समकालीन हैं।

मलैयादिपट्टी स्थित वागीश्वरम शिव गुफा मंदिर पल्लव दंतिवर्मन के शासन के सोलहवें वर्ष में विदेल विदुगुमुत्तरैयार द्वारा उत्खनन करवाया गया था। पश्चातकालीन संलग्न विष्णु मंदिर भी शायद मुत्तरैयार उत्खनन है। एक अन्य मुत्तरैयार उत्खनन, नर्तामलै स्थित पालियिलिश्वरम गुफा मंदिर नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पल्लव नृप तुंग के सातवें वर्ष के कुछ वर्ष पहले का है। यही बात पुवलैक्कुडी गुफा मंदिर कक्ष के लिए कही जा सकती है, जो किसी अमरुनरी

मुत्तरैयार द्वारा उत्खनित है। तिरुमयम स्थित विष्णु गुफा मंदिर, जिसमें शयन विष्णु मंडल है, एक प्राकृतिक गुफा विवर है, जिसे पोरुम्बीदुगु मुत्तरैयार की एक रानी ने मुखाग्र स्तंभों और अन्य विशेषताओं के सहित एक गुफा मंदिर में परिवर्तित करवाया और यह सलंग्न शिव गुफा मंदिर सत्यगिरीश्वर के कुछ समय बाद का होगा। उसी क्षेत्र में मंगडु गुफा मंदिर और मलैक्कोलुंडीश्वरम गुफा मंदिर कक्ष जैसे कुछ अन्य और तिरुवेल्लरै स्थित गुफा मंदिर का श्रेय भी मुत्तरैयारों को है।

उत्तरी केरल क्षेत्र में त्रिकुर, इरुनिलमकोडु, कोट्टुक्कल और अन्य स्थानों पर स्थित गुफा मंदिर चेर देश के शासकों के समय के हैं जबकि दक्षिणी भाग में केरल के क्विलन और त्रिवेंद्रम जिलों और तमिलनाडु के कन्याकुमारी या वेनाडु और नांजीलनाडु (जैसा कि उन क्षेत्रों को कहा जाता है) के गुफा मंदिर शायद अधिकांशतया पांड्यों से संबंधित हैं। विशिष्ट प्रामाणिकता के अभाव में और इस तथ्य के कारण सातवीं शताब्दी के मध्य से नवीं शताब्दी के मध्य तक जिस काल के ये गुफा मंदिर हैं, केरल एक से अधिक राजवंशों के अधीन रहा था, उन सबको 'चेर' कहने की अपेक्षा केरल का नाम देना अधिक सही होगा। आरंभिक संगम युग के बाद द्वितीय समयावधि के चेरों का संबंधित राजनीतिक इतिहास नवीं शताब्दी के मध्य से आरंभ होता है।

नमक्कल स्थित दो विष्णु गुफा मंदिर, एक रंगनाथ या अनंतशायी को और दूसरा नरसिंह को समर्पित, उनके शिलालेखों के अनुसार, तमिल साहित्य से पूर्वज्ञात आदिगैमान शाखा के अतीय नरेश गुणशील द्वारा उत्खनित करवाए गए थे। वे आठवीं शताब्दी के प्रथमार्ध के हैं और उनमें कुछ उत्कृष्ट मूर्तियां हैं। रंगनाथ गुफा के शिलालेख में इसे अतीयेंद्र विष्णु गृह कहा गया है और इस दृष्टि से अनन्य है कि इसमें अनंतशायी के आसपास स्थित प्रतिमा विज्ञानी समूह की विभिन्न आकृतियों का उपयुक्त वर्णन किया गया है। मूर्तियां अपनी तीखी रूपरेखाओं, ओजस्वी मुद्राओं और रूपांतरणों के लिए उल्लेखनीय हैं, जो उनके पल्लव समकक्षों से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।

दक्षिणी मैसूर में तालकड के पश्चिमी गंगों ने चालुक्य राष्ट्रकूट मुहावरे का अनुसरण करते हुए मैसूर के निकट मेल कोट स्थित कठोर शैल में दो अधूरे गुफा मंदिर छोड़े हैं।

उपरोक्त चालुक्य प्रवृत्तियों के सम्मिलन के अतिरिक्त, इन दक्षिणी गुफा मंदिरों में, मुख्यतया पल्लव महेंद्र शैली और कठोर शैल परंपरा की अनेक अनुकृतियों को प्रस्तुत किया है, जो पल्लवों के शैलोत्खनित और संरचनात्मक उदाहरणों में मिलती हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं, बलि के लिए अपने स्वयं का सिर काटते हुए एक भक्त सहित दुर्गा, एक सामान्य पल्लव रूपाकार, जो तिरुत्तांगल स्थित विष्णु गुफा मंदिर के निकट पुनर्प्रस्तुत किया गया है, तथा

महाबलिपुरम और सालुवनकुप्पम के समान महिषासुरमर्दिनी मंडल, जो कुछ रूपांतरणों के साथ मलैयादिप्पट्टी स्थित वागीश्वरम गुफा मंदिर में पुनर्प्रस्तुत किया गया है। भू-वराह और गजलक्ष्मी तिरुप्परांकुनरम स्थित गुफा मंदिरों में और भू-वराह सहित त्रिविनाम नमक्कल स्थित गुफा मंदिर में मिलते हैं। इसी प्रकार अन्य अनुकृतियां लिंगोद्भव, हरिहर, सुब्रह्मण्य, मानव रूप में गरुड़ सहित विष्णु, नरसिंह और शिव के तांडव रूपाकार हैं।

फिर भी, कुछ अनिश्चित स्रोत के केरल गुफा मंदिर, दक्षिणी गुफा वास्तुशिल्प मे एक महत्वपूर्ण युगांतर प्रस्तुत करते हैं क्योंकि उनमें संलग्न प्रदेश के पांड्य और आदिगैमान गुफा मदिरों की विशेषताओं का सम्मिश्रण हुआ है और उन्हीं के समान वे अपनी ग्रेनाइट चट्टान सामग्री और उत्खनन की योजना तथा तकनीक दोनों में मूलभूत रूप से पल्लव महेंद्र शैली के हैं, तथापि प्रायः कुछ चालुक्य मॉटिफों को भी उनमें सम्मिलित किया गया है। अधूरा ब्रंथनपारा उत्खनन चट्टान उत्खनन की परिचित पल्लव तकनीक को दर्शाता है, जैसा कि महाबलीपुरम है, जिसका अनुसरण नर्त्तमलै, मंगडु और अन्य स्थानों पर पांड्य मुत्तरैयार आदिगैमान क्षेत्रों में किया गया है। विजिनाम स्थित अग्र मंडप रहित शैल कक्ष प्रकार और पांड्य मुत्तरैयार क्षेत्र की विशिष्टता से युक्त गुफा इस रूप में अनन्य है कि उसके द्वार विवर के दोनों पार्श्वों पर चतुर्तांडव मे शिव का उत्कीर्णन है, जिसके एक ओर वे पार्वती सहित हैं और दूसरी ओर किरात के रूप में धनुष धारण किए हुए हैं जिनका अनुसरण एक बौना गण कर रहा है। ये उत्कीर्णित मूर्तियां पड़ोसी पांड्य रूपाकारों की अपेक्षा पल्लव से अधिक मिलती जुलती हैं। इरुनिलमकोड्डु में एक सादा, छोटा एकलक्षीय उत्खनन है जो मुखाग्र या आगे ड्यौढ़ी से रहित है। इसमें दक्षिणी दीवार पर तेजस्वी मुद्रा में योग दक्षिणामूर्ति है, जिसके साथ सेवा में एक ऋषि और नीचे भक्तगण हैं, जबकि मुख्य लिंग पश्चिमी दीवार में काटे गए एक छोटे ताक में एक पीठ के ऊपर रखा गया है। अन्य गुफा मंदिर तिरुनन्दिककारा और कवियुर में हैं। ये कक्ष और अग्र मंडप युक्त विशिष्ट गुफा मंदिर नमूने के उदाहरण हैं। इसी प्रकार के अन्य गुफा मंदिर कललील, त्रिक्कुर, कोट्टक्कल, ऐलुरपारा, तुवरंगडु और भूतापंडी में हैं, जिनमें अंतिम दो विजिनाम के दक्षिण में कन्याकुमारी के निकट हैं। मंदिर के दिक् विन्यास और द्वारपालो तथा ताकों में स्थापित संबंधित गौण देवी-देवताओं के स्थान के बीच संबध मे इनमें से कुछ गुफा मंदिर रूढ़िमुक्त हैं। उदाहरण के लिए त्रिक्कुर गुफा मंदिर में उत्तरमुखी मुखाग्र है और केवल उसी दिशा में प्रवेश विवर है, जबकि पोतिकाएं (टोड़े) चालुक्य शैली के समाज दुहरे वलय (मरगोल) प्रकार की हैं और मंदिर कक्ष के भीतर देवतागण पूर्ण मुखी हैं जैसा कि लिंग पीठ की जलप्रणाली के मुख के उत्तर की ओर प्रक्षिप्त होने से संकेत मिलता है। द्वारपाल पूर्वी और पश्चिमी पार्श्वों पर दीवारों की बाहरी गुलाई पर, पूर्व-पश्चिम अक्ष रेखा

के मध्य के थोड़ा-सा पीछे बनाए गए हैं। लिंग पीठ प्रायः एक संरचनात्मक परिवर्धन है, तथापि उसी चट्टान से जिसमें से गुफा काटी गई है, एकाश्मक लिंग तराशे जाने के उदाहरण भी मिलते हैं। कवियुर और तिरुनंदिक्कारा में शैली वैसी ही है, जैसी आरंभिक पल्लव गुफा मंदिरो में, जिनमें लिंग मूल रूप से चट्टान में तराशे नहीं गए, किंतु लिंगों को मंदिर कक्ष के खांचों में रखा गया। फर्श में वर्गाकार खांचे हैं, जिनमें लिंग का ब्रह्मभाग या वर्गाकार खंडयुक्त निचला भाग घुसाया गया और इसके प्रकट आधार के आसपास पीठ बनाई गई, जैसी कि पल्लव गुफा मंदिरों के संबंध में मिलती है, जो लगभग 700 ईसवी से आरंभ हुई विशेषता है। ऐलुरपारा और भूतपंडी में लिंग गुफा का ही अंग है और पांड्य मुत्तरैयार उदाहरणों के समान ही चट्टान में तराशा गया है। कोट्टुक्कल स्थित गुफा मंदिर में दो मे से एक द्वारपाल के रूप में हनुमान की स्थापना मदुरै के निकट कुन्नातुर स्थित पांड्य मंदिर में प्राप्त ऐसी ही विशेषता का स्मरण दिलाती है।

दक्कन के चालुक्य और राष्ट्रकूट गुफा मंदिर

छठी शताब्दी ईसवी के मध्य से बादामी के चालुक्यों और आठवीं शताब्दी के मध्य में उन्हें प्रभावी रूप से ध्वस्त कर देने वाले राष्ट्रकूटों के साथ ही वेंगी के पूर्वी चालुक्यों ने ताप्ती और उत्तरी पेन्नार नदियों के बीच के क्षेत्र में इस छोर से उस छोर तक अनेक गुफा मदिर छोड़े हैं। वेंगी के चालुक्य एक सहवर्ती शाखा के थे, जिसने सातवीं शताब्दी के आरंभ से पुलकेशिन द्वितीय के साहसी भाई कुब्ज विष्णुवर्धन के अंतर्गत आंध्र तट पर स्वाधीन रूप से शासन करना आरंभ कर दिया था और इस काल में अबाध रूप से शासन करते रहे। गुफा मंदिर बादामी, ऐहोल, एलोरा, भोकरदन, एलिफैंटा, जोगेश्वरी, पूना, अर्वालेम (गोवा), माहुर, आद्विसोमनपल्ली, विजयवाड़ा, मोगुलराजापुरम, उंदवल्ली, सीतारामपुरम, पेनमागा और भैरवकोंडा में मिलते हैं। जबकि चालुक्य अधिकाशतया हिंदू मतानुयायी थे, फिर भी उन्होंने जैन मत को प्रोत्साहन दिया। राष्ट्रकूट और अनेक पश्चिमी गंग जैन धर्म के उपासक थे। इसलिए उस समय तक जनता के धनी, अयाजकीय, कृपक और व्यावसायिक वर्गों पर अत्यधिक प्रभाव रखने वाले बौद्ध धर्म के मूल्य पर हिंदुत्व को स्थिर करने और जैन मत का पोषण करने और उनकी परंपराओं को बनाए रखने के प्रयोजन, तकनीक और चुनी गई कच्ची सामग्री की उपयुक्तता को समझा जा सकता है।

इन सब राजवशों ने स्थानीय नर्म पाषाण के शैल समूहों का चयन किया जैसे कि बादामी ऐहोल और अन्य अनेक स्थानों में बालुकाश्म (सैंडस्टोन), धुर पश्चिमी तट पर अर्वालेम में मखरला (लेटराइट), भैरवकोंडा में स्तरित चट्टान (शिस्ट) और उत्तर-पश्चिमी दक्कन तथा औरंगाबाद, पूना और बबई के आसपास

पश्चिमी भारत में ट्रैप। पूर्व वर्णित अपने चालुक्य संबंधों के बावजूद पश्चिमी गंगों ने इससे हटकर मेलकोट (मैसूर) जैसे स्थान पर स्थानीय कठोर ग्रेनाइट में उत्खनन करवाया।

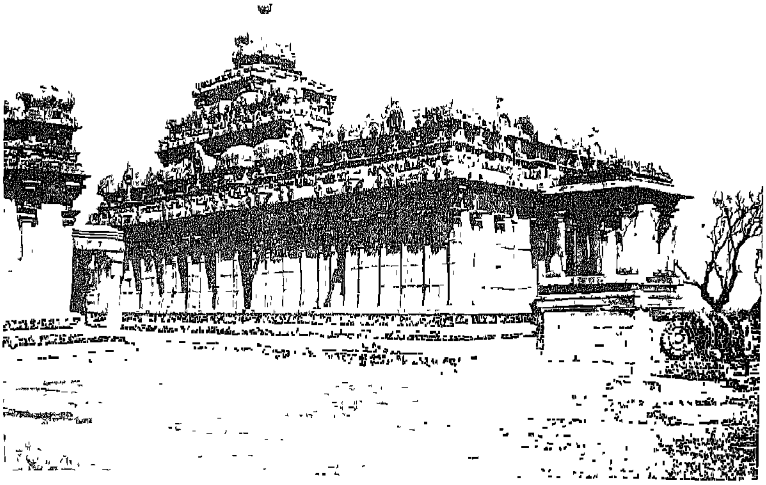
वेंगी से शासन करने वाली चालुक्यों की पूर्वी शाखा ने, नरम चट्टानों में उत्खनन करने के बावजूद, अपने गुफा मंदिरों में एक अलग पद्धति और डिजाइन का अनुसरण किया, जिसमें पल्लव संबद्धताओं सहित पूर्वी आंध्र और उत्तरी तमिलनाडु या तोंडैमण्डलम मे जो कुछ प्रचलित था, शामिल किया गया, और इस प्रकार वादामी चालुक्यो द्वारा कन्नड़ परपरा और संस्कृति के लिए जो कुछ किया गया, उसके विपरीत उन्होंने एक स्पष्ट आंध्र परंपरा का प्रारंभ किया।

पश्चिम के क्षेत्रों पर चालुक्य राष्ट्रकूट प्रभाव के परिणामस्वरूप ऊपरी दक्कन संबद्धताएं निचले दक्कन में प्राप्त उपलब्धताओं से पर्याप्त पृथक हो गई और इस प्रकार दो क्षेत्रीय मुहावरे प्रदर्शित हुए। यह इसलिए था कि उत्तरी क्षेत्र आरंभिक बौद्ध गुफा कला और शैल वास्तुशिल्प के स्थानों के निकट पड़ता है। वह कौशल और परंपरा जो आठ शताब्दियों से अधिक समय तक शिल्पियों के स्थानीय निकायों के बीच प्रचलित थी, वह इस प्रकार पीढ़ियों तक चलती रही, जिसने हिंदू और जैन शैल वास्तुशिल्प और गुफा कला को अपना लिया। उत्तरी क्षेत्र में भी शैल वास्तुशिल्प एक पद्धति के रूप में लंबे समय तक बना रहा। यह और अधिक तेजी से, विशेष रूप से राष्ट्रकूटों के अंतर्गत, विकसित हुआ, जैसा कि एलिफैंटा, धुमरलेना और जोगेश्वरी स्थित गुफाओं, इंद्रसभा परिसर में कैलास मंदिर, जैन छोटा कैलास और जैन चौमुख के एकाश्मक उत्कीर्णनों जैसे उनके विशाल कार्यों और विशद स्तर की रचनाओं में देखा जा सकता है। किंतु शैल वास्तुशिल्प शीघ्र ही चालुक्यों के दक्षिणी क्षेत्र में संरचनात्मक पाषाण निर्माणों की तुलना में गौण हो गया जैसा कि शेष निर्माणों से स्पष्ट है। यह इस तथ्य के कारण हुआ कि नरम बालुकाश्म खंडों के खनन की सुविधा, अर्जित कौशल की सहायता से उनके प्रसाधन और उत्कीर्णन की सरलता और साथ ही ईट और काठ के मौलिक नमूनो पर पाषाण मंदिरों के निर्माण की इच्छा से बादामी ऐहोल पट्टदकल क्षेत्र के पापाण कारीगरों ने स्वयं को शीघ्र ही स्थपतियों के निकायों के रूप में शिक्षित कर लिया, जो चट्टानों में मंदिरों को तराशने की अपेक्षा अच्छे मंदिरों का निर्माण कर सकते थे। फिर भी, राष्ट्रकूट काल के संरचनात्मक सृजन, कम महत्वाकांक्षी, मध्यम और छोटे आकार-प्रकार के और उनके शैलोत्खनित भवनो की तुलना में कम परिसज्जित हैं।

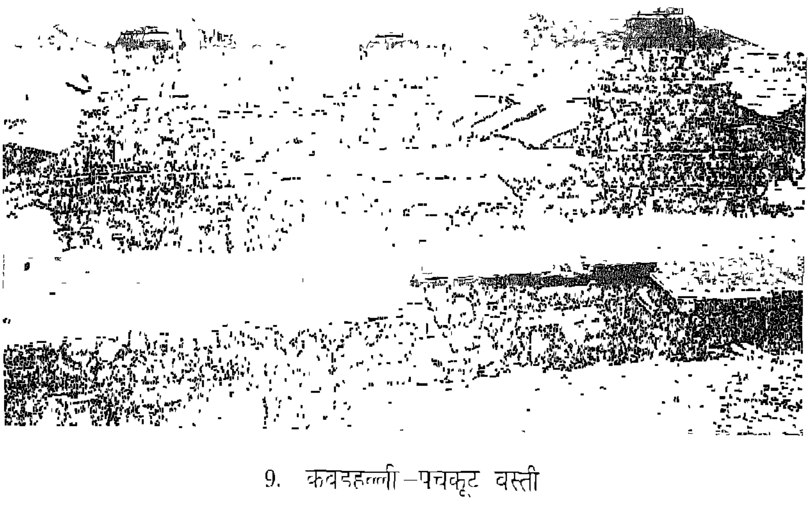
गुफा मंदिरो की अभि-विन्यास योजना अक्षीय मंडपों और मंदिर के फर्श के स्तर में, गर्भगृह के फर्श के अधिक ऊंचे उठे हुए सतह में, उत्तरोत्तर ऊंचाई में संरचनात्मक मंदिरों से भिन्न है, यद्यपि वितान (सीलिंग) का स्तर हर जगह एक समान बना रहा। इन अबौद्ध गुफा मंदिरों के विकास को पांच या छह चरणों या

नमूनों में विभाजित किया जा सकता है। पहले समूह में आएंगे जो इस क्षेत्र में उत्तरकालीन बौद्धों द्वारा सामान्यीकृत योजना यथा, एक गर्भगृह और एक स्तंभ युक्त अग्रमंडप वाले विहार चैत्य वर्ग, का अनुसरण करते हैं। दूसरे वर्ग मे वे होंगे, जो पीछे और पार्श्वों में तिहरे गर्भगृह सहित हैं, जिनमें हरेक के साथ एक स्तंभ युक्त अर्धमंडप है और समग्र के सामने एक महामंडप और एक संकीर्ण अग्र या मुख मंडप है और पुनः उसमें स्तंभ मंडित मुखाग्र है। तीसरा वर्ग उनका है, जिनमें पार्श्ववर्ती मंदिर कक्ष पटल उत्कीर्णनों युक्त कोठरियों के रूप में दिखते हैं और सप्तमातृका मंदिर कक्ष पीछे की ओर एक नियमित या प्रमुख गर्भगृह युक्त हैं, जो संधार हैं या जिनके साथ एक प्रदक्षिणा पथ दिया हुआ है और अर्ध तथा महामंडपों में प्रायः वेदी प्राकार हैं। कहीं, कहीं, सामने की ओर एक नंदी मंडप भी है जैसा कि एलोरा स्थित लंकेश्वर गुफा (कैलास परिसर) में है। चतुर्थ वर्ग उन संरचनाओं में द्रष्टव्य है जिनमें प्रमुख मंदिर में कोई प्रदक्षिणा पथ नहीं अर्थात निरंधार है; अर्धमंडप में उसकी पार्श्व दीवारों पर मूर्ति फलक हैं और बड़ा महामंडप पार्श्व मंदिरों सहित या रहित किंतु स्तंभ युक्त है। प्रायः एक अतिरिक्त मुख मंडप भी मिलता है। सप्तमातृका मंदिर कक्ष या ताक मुख्य गुफा मंदिर के बाहर की ओर, सामान्यतया बाईं बगल में अलग से तराशा गया है, जबकि सामने की ओर एक नंदी मंडप है, जैसा कि एलोरा गुफा क्रमांक 22 में है। पांचवें वर्ग में प्रदक्षिणा युक्त संधार पद्धति सर्वतोभद्र गर्भगृह में विकसित हो जाती है, जिसमें चारों दिशाओं में द्वार विवर हैं और आगे की ओर दो या तीन मंडपों की शृंखला और अत्यधिक विकसित प्रकार में एक अतिरिक्त अग्रमंडप है जिसमें एक ओर गणेश, दुर्गा और अन्य रूपों के मूर्ति पटल हैं और दूसरी ओर सप्तमातृकाएं। अंतिम वर्ग में ऐसे उदाहरण हैं, जो अधिकांशतया दक्षिणी रूपों के समान सामने की आनुप्रस्थिक रूप से अर्ध और मुख मंडपों से युक्त हैं, जिनमें से परवर्ती के लिए कोई वेदी प्रकार नहीं है, और जैसा कि अन्य मामलों में सामान्य है, नारी आकृतियों के रूप में दीवारगीर क्षेत्रों के स्थान पर स्तंभों के दंड भागों पर शिल्पांकन हैं।

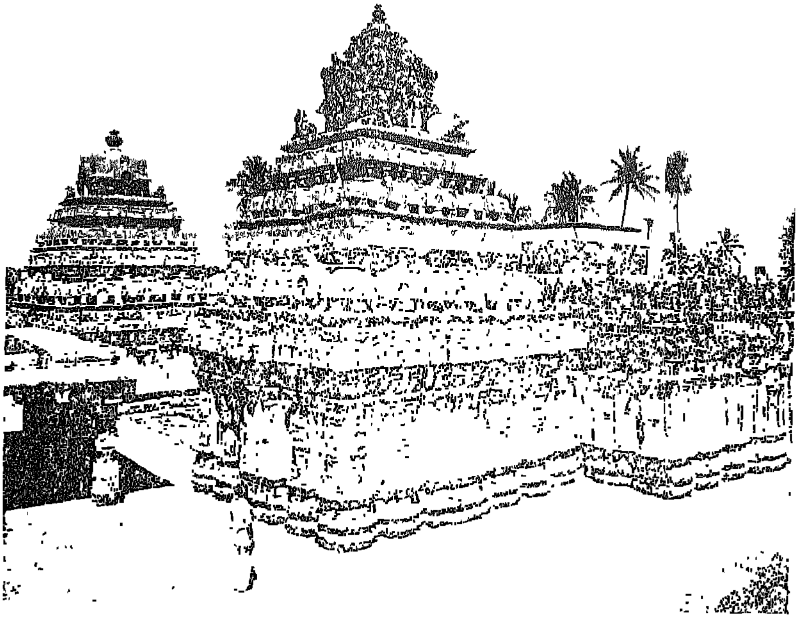
इस प्रकार चालुक्य गुफा मंदिरों में पाए जाने वाले प्रभेद विशिष्ट रूपांतरणों सहित हैं : निरंधार प्रकार जहां मंदिर कक्ष प्रदक्षिणा पथ से रहित हैं जैसे बादामी में, संधार प्रकार, जिसमें मंदिर कक्ष प्रदक्षिणा पथ सहित हैं, जैसे एलोरा रामेश्वरम इत्यादि में, त्रिकूट प्रकार जो तीन मंदिर कक्षों से युक्त हैं जैसे ऐहोल और एलोरा में, और सर्वतोभद्र प्रकार जिसके मंदिर कक्षों में चारों दिशाओं पर द्वार विवर हैं जैसे एलिफैंटा, एलोरा और जोगेश्वरी में। संधार और सर्वतोभद्र प्रकार सर्वोत्कृष्ट हैं। सर्वतोभद्र प्रकार में, जैसा कि एलोरा स्थित धुमरलेना में, एलिफैंटा स्थित प्रमुख गुफा में और जोगेश्वरी स्थित गुफा में देखा गया है, शैल में काटे गए बाह्य मंडप में तीन दिशाओं पर कम से कम तीन खुले मार्ग हैं, जबकि पीछे की ओर चौथा



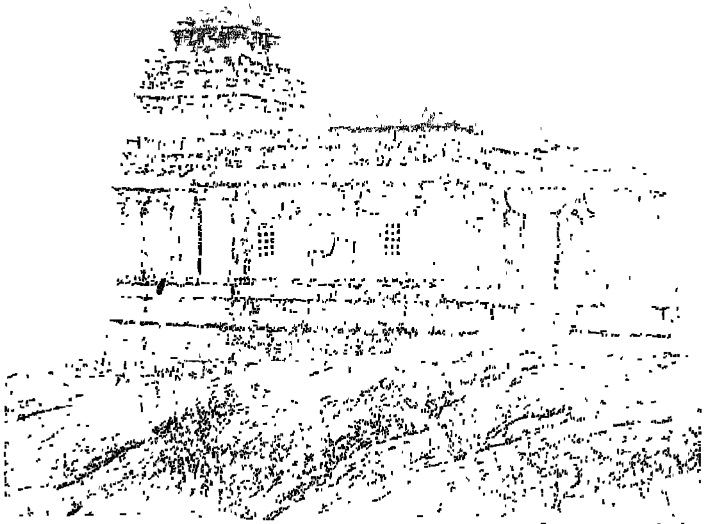
8. श्रावण वेलगोला–चामुंडराय वस्ती



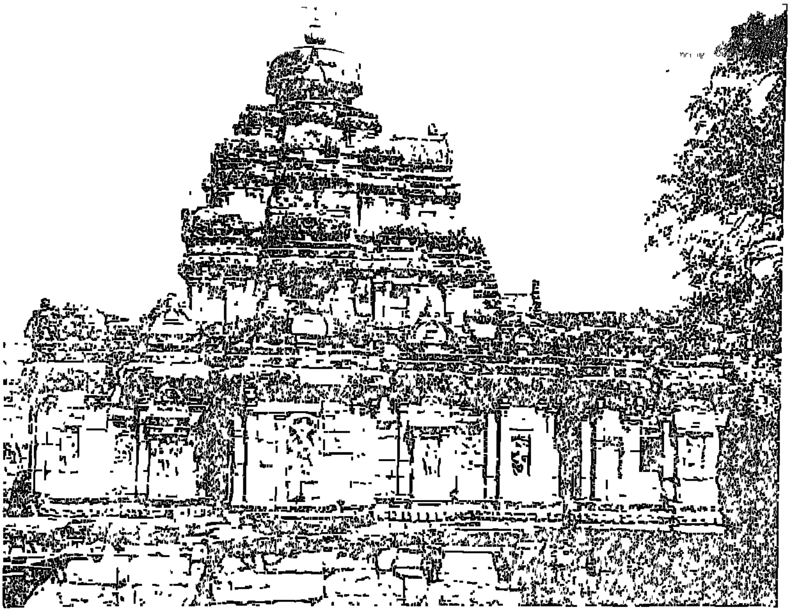
9. कंबदहल्ली–पंचकूट वस्ती



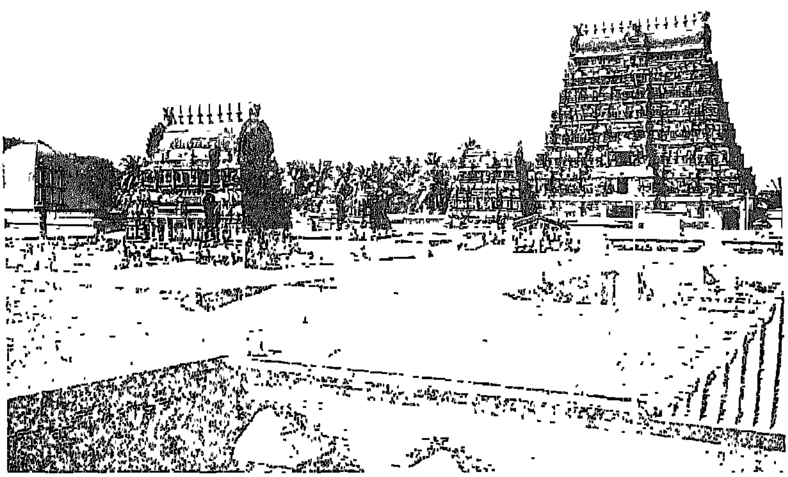
10. नंदी–भोगनंदीश्वर मंदिर



11. बादामी–मालेगिट्टी शिवालय



12. पट्टदक्कल—मल्लिकार्जुन मंदिर



13. तंजावुर—बृहदीश्वर विमान



14. दरासुरम—ऐरावतेश्वर विमान

मार्ग मूल शैल में समाप्त हो जाता है।

चालुक्य स्तंभों का भारीपन, जैसे बादामी में, खड़ी गोल झिरियों और उत्कीर्णनो द्वारा कम किया गया लगता है; स्तंभ और पोतिकाओं के आकार विविध हैं, किंतु अपने विकास में वे चालुक्य काल की समाप्ति तक अपनी विशिष्टता बनाए हुए है और राष्ट्रकूट रचनाओं में उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। राष्ट्रकूट स्तंभों में वर्गाकार खंड वाले रूप प्रचलित हैं और पोतिकाओं (टोड़ों) पर ऊपरी सिरे पर एक सामान्य गोले के अतिरिक्त पोतिका भुजा के वक्र फलक पर विशिष्टता प्रदर्शक वलय दिखाई नहीं पड़ता। अलंकृत मध्य मोड़ या पट्ट जो चालुक्य पोतिकाओं में सामान्य है, वह यहां है।

इस शैली का सर्वाधिक विशिष्ट लक्षण अलंकृत बृहद द्वार अवयवों सहित गर्भगृह के द्वार की चौखट है। इस संबंध में चालुक्य और राष्ट्रकूट गुफा मंदिरों में कम से कम एक संगति बनाए रखी गई, जैसी कि यह संरचनात्मक मंदिरों में भी है। सखा या बृहद द्वार के अवयव, जो तीन से अनेक तक हो सकते हैं, सोहावटी मे एक किरीट आभूषण—ललाट बिंब और एक अधिरचना या उत्तरांग है। भीतरी सखा के आधार भाग और बाजू पर नदी देवियों गंगा और यमुना के उत्कीर्णनों से युक्त फलक हैं। दक्षिणी क्षेत्र के कन्नड़ भाग के चालुक्य मंदिरों में द्वारपाल भी नदी देवियों सहित उन्ही फलको पर चित्रित किए गए हैं। ये द्वारपाल गुफा मंदिर की सामने की ड्यौढ़ी या अग्रमंडप के वाह्यतम प्रवेश के अगल बगल के ताकों में अपेक्षाकृत बड़े द्वारपालों के अतिरिक्त हैं। दूसरी ओर, दक्कन में उत्तरी क्षेत्र के गुफा मंदिरों जैसे एलोरा, एलिफैंटा, माहुर और अन्य स्थानों के गुफा मंदिरों में वितान की ऊंचाई को छूते मानवाकार से भी बड़े द्वारपाल युगल है। जोगेश्वरी में वे गर्भगृह प्रवेश के अगल बगल भी हैं और बाह्यमंडप प्रवेश के अगल बगल भी। यह एक आरंभिक चरण का सूचक है, जबकि अन्य राष्ट्रकूट गुफाओं में गर्भगृह प्रवेश के दोनों ओर मानवाकार से छोटे द्वारपाल की उल्टी योजना की प्रवृत्ति दिखाई देती है। मंडप वितानों पर, बादामी गुफा III को छोड़कर वडे कमलों के गोलाकार फलकों के उत्कीर्णन या कुंडलित डिजाइन मिलते हैं। वादामी की गुफा III में वितान में बने गोलाकार फलक शिल्पांकन मॉटिफ केंद्र में ब्रह्मा को दिखाते हैं, जो संरचनात्मक मंदिरों में ऐसे वितान शिल्पांकनों का पूर्वाभास है, जहां अष्टदिक्पाल जाली की योजना है, जिसमें केंद्रीय आकृति प्रायः मंदिर के मुख्य देवता के अनुरूप है।

अधिकांश मामलों मे गर्भगृह में पूजा के लिए प्रमुख देवता की एक पाषाण प्रतिमा या प्रतीक (लिंग के लिए सामान्य रूप से प्रावधान) है। यह ऐसी बात है, जो सातवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश तक पल्लव उदाहरणों में दिखाई नहीं दी, तथापि यह पांड्य उदाहरणों मे है किंतु वहां भी आरंभिक मामलों में पाषाण प्रतिमा

विहीन गर्भगृह को प्राथमिकता मिली। गर्भगृह में केंद्र में फर्श की अपेक्षा पिछली दीवार पर एक गचकारी पटल या चित्रांकन या उत्कीर्णित रूप मे पाषाण मूर्ति थी। गुफा मंदिरों के आरंभिक उदाहरणों में, जैसे बादामी में, गर्भगृह अपेक्षाकृत रूप से छोटा है और शिवगुफाओं में केवल लिंग की पीठ के लिए और अन्यों में प्रतिमा के लिए ही पर्याप्त है। सभी मामलो में पीठ चट्टान में कटी हुई या एकाश्मक है और अलग से स्थापित नहीं की गई है और प्रायः लिंग भी एकाश्मक और चमकदार शैल का है। निरपवाद रूप से वर्गाकार लिंग पीठ के ऊपर अभिषेक जल को बहा देने के लिए एक टोंटी है और उस जल को एकत्रित करने के लिए लिंग पीठ के नीचे चट्टानी फर्श में एक कुंड बना दिया गया है। आरंभिक मदिरों में फर्श के साथ मंदिर कक्ष से इसे बाहर बहा देने के लिए कोई प्रावधान नहीं है। यह फिर से दूरस्थ दक्षिण के पाड्य गुफा मंदिरों में मिलता है जैसाकि मध्यवर्ती पल्लव गुफा मंदिरों या उत्तर के गुफा मंदिरों में बिल्कुल नहीं है। जैसा पहले कहा जा चुका है, गर्भगृह के फर्श पर कुंड दूरस्थ जावा (इंडोनेशिया) में डींग घाटी के पाषाण मंदिरों में भी मिलते हैं। गर्भगृह की दिशा चाहे जिधर हो किंतु टोंटी निरपवाद रूप से उत्तर की ओर प्रक्षिप्त होती है। जिन मामलों में गर्भगृह का मुह उत्तर की ओर है, वहां वैकल्पिक आगमिक आदेश, कि यह ठीक बाएं हो, का पालन किया गया है। अन्य बातों के अतिरिक्त यह आगमिक या आनुष्ठानिक सिद्धांतो के पूर्वकालिक निरूपण का संकेत है, जिन्हें बाद के समय में विस्तार दिया गया और पुनः संहिताबद्ध किया गया।

आरंभिक गुफा मंदिरों के सामने मडप मे पार्श्व में अनुप्रस्थ अक्ष पर अधिक खंड हैं और लंबवत अक्ष पर दोनों सिरो पर केवल एक एक खंड है। दूसरी ओर अजंता के विहारों में मंडप संकेंद्रित योजना का है, जो मध्य खंड के चारों ओर एक खंड युक्त है, जो प्रायः शेष से अधिक बड़ा है। जबकि यह नवरंग या संकेंद्रित नौ खंड प्रतिमान चालुक्य शृंखला के संरचनात्मक मंदिरों की मुख्य योजना में बाद में दुहराया गया, मंडप प्रकार की बादामी गुफा के सरचनात्मक अनुरूप विशेष रूप से दक्षिण पश्चिम दक्कन, पश्चिमी मैसूर और कोंकण तथा मलाबार तट के मंदिरों में सत्रहवीं शताब्दी के इक्केरी नायकों के समय तक मिलते हैं। केंद्रीय नाभि के समानांतर अधिक वीथिकाओ या खंडों का, लंबवत अक्ष के किसी एक छोर पर केवल एक अन्त्य खंड सहित, प्रावधान उन संरचनात्मक मदिरों मे लागू किया गया मिलता है जहां स्तंभों या दीवारों सहित पार्श्व खड केंद्र से घटती हुई ऊंचाई के हैं और जिन पर उत्तरोतर नीचे उतरती ढलवां या सपाट छतें हैं। ऐसे आरंभिक संरचनात्मक मंदिर ऐहोल मे लडखन और बादामी में कल्लामठ हैं। यह स्पष्ट है कि शैल वास्तुशिल्प में यह विशिष्टता समकालीन और पूर्ववर्ती ईट और लकड़ी के संरचनात्मक नमूनों के अनुरूप है। एलोरा में रामेश्वर मुखाग्र भी मध्यकाल के

संरचनात्मक मंदिरों के मंडप के आद्यरूप का संकेत देता है। प्रक्षिप्त ड्योढ़ियों में स्तंभों के बीच बेंचों के समान मंच हैं, जिन पर बैठक और पीठ के टेके बने हुए है। ये कक्षासन कहलाते हैं। उनका बाह्य दृश्य वेदी रूपाकार और बौने स्तंभों और अन्य अलंकरणों और मूर्तियों से युक्त प्राकार के समान है। परिणामस्वरूप मुखाग्र के अंदर खंभों की योजना सामान्य रूप से बराबर दूरी पर नहीं है, जिसमें केंद्रीय स्तंभों के साथ पार्श्ववर्ती स्तंभों की अपेक्षा अधिक चौड़ा अंतराल स्थान है।

बादामी में बालुकाश्म शैल के ऊर्ध्वगामी कगार पर विभिन्न ऊंचाइयों पर चार गुफा मंदिर उत्खनित हैं। इन तक सामने की ओर सीढ़ियों से युक्त एक प्राकृतिक ढाल से चढ़कर पहुंचा जा सकता है। सबसे पहली और सबसे बड़ी गुफा क्रमांक III है जो मंगलेश द्वारा ईसवी सन् 578 में उत्खनित करवाई गई और विष्णु को समर्पित है। यह सामने की घाटी से दिखाई देती है और सर्वाधिक प्रभावशाली ऊंचाई पर तराशी गई है। गुफा मंदिर I, जो मध्यम आकार की और शैव है, और सबसे छोटा गुफा मदिर II, जो वैष्णव है, कम ऊंचाई पर उत्खनित है। इनमे से गुफा मंदिर I लगभग भूमि स्तर पर है। गुफा मंदिर IV भी छोटा किंतु जैन है, शैल के शीर्ष के निकट तराशा गया है और अन्य तीनों की अपेक्षा काफी बाद का है, जो छठी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश के बने हैं। इन गुफा मंदिरों में एक आयताकार स्तंभ युक्त मुखमंडप है जिसके आगे कमोबेश एक वर्गाकार स्तंभ युक्त महामंडप है जिसके पिछले छोर पर एक मंदिर कक्ष है। अर्धमंडप जो मंदिर और महामंडप के बीच अवस्थित होना चाहिए, वह पृथक नहीं है और महामंडप के पिछले खंडों में समाहित है। मुखाग्र विवर चौड़ा और पर्याप्त रूप से ऊंचा है। मुखाग्र स्तंभ ऊंचे और भारी भरकम हैं, जिन पर प्रायः वर्गाकार भाग पोतिका युक्त हैं, जो धरन को सहारा देती हैं। धरन पर भारी भरकम लटकती हुई कगार ओलती या कपोत का निर्माण करती हैं जिसके तराशे हुए भीतरी पृष्ठ पर एक ढांचे के अनुकरण पर खड़ी और आड़ी कड़ियां है।

पोतिका के ऊपर की धरनें और कपोत का भीतरी ढांचा मोटे नारी स्तंभों जैसे, मानवीय, दैवी या पशु आकारों से टेक लगाए हुए हैं जिनका शिल्पांकन लगभग चारों ओर है। दो केंद्रीय स्तभों के बीच अंतस्तंभीकरण अन्य स्तंभों के बीच के बजाय अधिक चौड़ा है। मुखमंडप या अग्रमंडप के वितान नियमित चार भुजाओं वाली छत में एक-दूसरे पर आड़ी रखी मोटी धरनों द्वारा, जिन पर तराशे हुए गोलाकार फलक उभरे हुए हैं, समाहित हो जाते हैं। आंतरिक स्तंभ, विशेष रूप से मुखमंडप की आंतरिक्त पंक्ति के स्तंभ, आधार पर वर्गाकार होने के बावजूद ऊपर के भाग में वृत्ताकार हैं, और अलंकृत शीर्ष अवयवों से पूर्ण है, जिनमें प्रमुख हैं कलश और कुंभ। जैसा कि कहा जा चुका है स्तंभ युक्त महामंडप में पार्श्व वीथिकाओं की अपेक्षा केंद्र में एक चौड़ी नाभि है और आंतरिक स्तंभ खंडों में

बहुभुज हैं। मुखमंडप का कार्यशील भाग एक जालीदार दीवार के द्वारा केंद्रीय सभागार से अलग दिखाया गया है। यह दीवार दोनों मंडपों के बीच दोनों छोरों की चौड़ाई की लगभग एक चौथाई है, जबकि महामंडप के अग्रस्तंभ और भित्तिस्तंभ केंद्रस्थ खाली स्थान में बैठाए गए हैं। केंद्रीय नाभि के फर्श का ऊंचा स्तर एक केंद्रीय रोशनदान छत का संकेत देता है, जो पार्श्ववीथियों की छत से ऊपर उठी होती है, जैसी कि पूर्वोल्लिखित संरचनात्मक उदाहरणों में दिखाई देती है, तथापि इस शैलोत्खनित नमूने में संपूर्ण वितान एक-सी ऊंचाई का है। गुफा क्रमांक I में एक एकाश्मक लिंगपीठ है जो थोड़े समय बाद की है। गुफा क्रमांक II गुफा क्रमांक III के थोड़े समय बाद की है, जिसमें मूल विष्णु प्रतिमा के लिए केवल एक पीठ है। गुफा क्रमांक III में मुखमंडप मुखाग्र के आधार का अंतराल कंठ गण समूहों के बीच युगल भित्तिस्तंभों को सन्निविष्ट दर्शाता है, जबकि गुफा क्रमांक I और II में गण चित्रवल्लरियां अविच्छिन्न हैं। शिव गुफा I के मुखमंडप में वितान पर कोई वैष्णव चित्रवल्लरियां नहीं हैं, जबकि वे पूर्ववर्ती गुफा क्रमांक I और II में, जो वैष्णव हैं, विद्यमान हैं। और भी बाद का जैन गुफा मंदिर जैन मूर्तियों और उत्कीर्णनों से भरपूर है, जबकि अन्य तीन अपने कुछ प्रभावशाली भित्ति शिल्पांकनों के लिए, जो अधिकांशतया बाद के परिवर्धन हैं, उल्लेखनीय हैं।

मूर्ति पटलों के संबंध में, शृंखला की प्रारंभिक, बादामी की गुफा क्रमांक III में भी तकनीक और शैलीगत प्रमाणों के आधार पर (ए. लिपे द्वारा) यह प्रदर्शित किया जा चुका है कि वैकुंठनाथ (बैठे हुए विष्णु) और वराहमूर्ति के अतिरिक्त वे (मूर्ति पटल) गुफा उत्खनन के समकालीन नहीं हैं, किंतु थोड़े समय बाद के, लगभग सातवीं शताब्दी के मध्य के, संभवतया मामल्ल द्वारा बादामी पर पल्लव आधिपत्य के बाद के परिवर्धन हैं।

ऐहोल (जिला बीजापुर) स्थित शैलों मे तराशे गए दो गुफा मंदिरों में से एक–रावलगुडी शिव को समर्पित है और लगभग ईसवी सन् 700 का है और दूसरा थोड़े समय बाद का एक जैन मंदिर है। दोनों निचले बालुकाश्म टीलो में तराशे गए हैं और आरंभिक चालुक्य या पश्चिमी चालुक्य शृंखला में उनके गृह जिलों में अंतिम हैं। यद्यपि ये बादामी गुफा मंदिरों से छोटे हैं, फिर भी ये योजना, डिजाइन, और मूर्तिशिल्प की दृष्टि से रुचिकर हैं। स्तंभ पतले हैं और उन पर 'पद्धति' के सामान्य शीर्ष अवयव हैं। रावलगुडी मे मूलभूत रूप से एक लगभग वर्गाकार मंडप के साथ लगभग उसी आकार का एक बड़ा प्रमुख गर्भगृह पीछे की ओर, और दो और चौड़े पार्श्व मंदिर हैं, जिससे यह त्रिकूट योजना का रूप बन जाता है। पीछे की ओर के मंदिर में चट्टान में तराशा हुआ लिग है, जबकि इसके दाई ओर के पार्श्ववर्ती मंदिर कक्ष में सप्तमातृका और उनके सेवक देवगण हैं और बाई ओर के मंदिर कक्ष में शिव के अन्य रूप हैं। मंडप और पिछले मंदिर कक्ष के बीच थोड़ी

सी प्रक्षिप्त विभाजक दीवार पट्टियां जो बीच में एक चौड़ा रास्ता छोड़ती हैं, द्वारपाल मूर्तियों से युक्त हैं। मुखाग्र पर अगल-बगल की चट्टानी दीवार पर ताक बने हैं जिनमें दो निधियों—शंख और पद्म—के शिल्प हैं। जैन गुफा मंदिर में एक अग्रमंडप है जो स्पष्ट रूप से आयताकार है और विशिष्ट मंडप शैली के गुफा मंदिर प्रतिमान के अनुरूप है।

एलोरा स्थित ऊंची पर्वत श्रेणी ने, जिसने पूर्व वर्णित बौद्ध उत्खननों की शृंखला के लिए स्थान दिया था, अब हिंदू और जैन निर्माणों के लिए भी स्थान दिया। पहाड़ी के मध्य भाग में और कुछ ऊंचे भागों में बने ब्राह्मणी गुफा मंदिर चालुक्यों और उनके राष्ट्रकूट उत्तराधिकारियों के समय के हैं। गुफा क्रमांक 13 से 29 तक हिंदू उत्खनन हैं, जो अधिकतर शैव हैं और दो पृथक कालक्रम शृंखलाओं के अंतर्गत आते हैं। इनमें से पहली शृंखला पूर्ववर्ती बौद्ध उत्खननों के नमूने पर है जिसका लक्षण है कि उनके गर्भगृह में सामान्यतया किसी चट्टान पर तराशी प्रतिमा या लिंग के समान कोई प्रतीक नहीं होता। फिर भी कुछ में योजना और अंतर्वस्तु के रूपभेद हैं। गुफा क्रमांक 16 कैलास परिसर है, जहां मुख्य भाग कैलास का एकाश्मक विमान मंदिर है, जिसके साथ प्रदक्षिणा पथ के कगार पर गुफा मंदिर हैं जैसे कि लंकेश्वर (16 ए) के मामले में। परवर्ती शृंखला दक्षिण के नमूनों के अधिक अनुरूप है और प्रायः उनके गर्भगृह में कोई प्रतिमा, चट्टान में तराशी लिंग पीठ और कभी कभी चट्टान में तराशा नंदी भी है।

इन गुफाओं में स्तंभ विविध प्रकार और डिजाइन के, तथा खंडों में वर्गाकार या अष्टभुजाकार हैं, या सामान्यरूप से, पूर्ण कलशों और मध्यम ऊंचाई पर अपवर्द्धित बेलबूटेदार युक्त कुंभावली प्रकार के हैं; या उनके शीर्ष पर कुंभ के अलंकरण हैं। जहां भी पोतिकाएं विद्यमान हैं, वे या तो सादी हैं या फिर अलंकृत। मुखाग्रों और मंदिर प्रवेशों के ऊपर कपोत घोड़े की नाल जैसे कुदुओं से सज्जित हैं, जो छोटी नासिकाएं हैं। द्वारों की चौखटों पर विस्तृत बृहद द्वार हैं और उनके शीर्ष पर उत्तरांग के रूप में दक्षिणी विमान जैसे मंदिर या उत्तरी शिखर या प्रासाद मंदिर के लघुप्रतिरूप हैं। रामेश्वर (गुफा क्रमांक 21) इस समूह में सबसे पहला है। आयताकार मुखमंडप के मुखाग्र पर चार छोटे, भारी, अलंकृत स्तंभ हैं और अत्यधिक अलंकृत वेदी प्राकार या बौनी दीवार के दोनों सिरों पर ऊंचे उठते हुए दो भित्तिस्तंभ हैं। यह दीवार प्रवेश द्वार के लिए दो केंद्रीय स्तंभों के बीच विच्छिन्न है। आयताकार मुखमंडप की अनुप्रस्थ (आड़ी) लंबाई, उत्खनन के संपूर्ण अग्रभाग तक फैली हुई है, दोनों सिरों पर पार्श्व मंदिर कक्ष या कोठरी के रूप में और आगे विस्तृत है। मुखमंडप के पीछे स्तंभयुक्त महामंडप है, जिसमें स्तभो की दो केंद्रीय पंक्तियों के बीच की अधिक चौड़ाई से एक नाभि बन जाती है। इसमें पीछे की ओर एक संधार मंदिर कक्ष है। केंद्रीय स्तभ पंक्ति से निकट के सिरे पर की स्तंभ

पंक्ति उन वीथिकाओं का गठन करती है, जो मंदिर कक्ष के आसपास प्रदक्षिणा पथ में ले जाती हैं। गर्भगृह के द्वार पर विशाल द्वारपाल पहरा दे रहे हैं। स्तंभों पर कुंभों के अलंकरण है। मंदिर कक्ष के स्थान निर्धारण के मामले में, संशोधन किए जाने के बावजूद, यह अभी भी एलोरा में पहले से उत्खनित महायान बौद्धमत के अनुरूप ही है। दूसरी ओर, मुखाग्र की बौनी दीवार और दीवारगीर आकृतियों में 'भूतगण' की चित्रवल्लरियां इस उत्खनन को बादामी समूह के सन्निकट ले जाती हैं और इसलिए इसका निर्माणकाल सातवीं शताब्दी का प्रथम चतुर्थांश ठहरता है। इससे संलग्न गुफा 20, 22, 23, और 24 भी इसी समय की हैं।

रावण-की-कै (गुफा 14) सादी योजना का, एक बड़े स्तंभयुक्त मंडप और पीछे की ओर एक संधार मंदिर सहित है। स्तंभों की अग्रपंक्ति का दुहराव नाभि के सामने के अग्रभाग को एक बरामदे का रूप दे देता है और वीथिकाएं मंदिर कक्ष के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ बनाती हैं। स्तंभ कुंभावल्ली प्रकार के हैं। मंदिर कक्ष के प्रवेश द्वार पर दो द्वारपालों सहित अनेक तराशी हुई प्रतिमाएं हैं। मंडप की दीवारों पर और भित्तिस्तंभों के बीच अंतरालों में शैव और वैष्णव मूर्ति शिल्पी रचनाएं हैं। गर्भगृह आयताकार है और उसमें पीछे की ओर एक मंच है जिसमें एक खांचा बना है जो विष्णु या दुर्गा के लिए है, किंतु शिव या लिंग के लिए नहीं। राष्ट्रकूट पूर्व शृंखला में इस उत्खनन का समय ईसवी सन् 700 के आसपास का हो सकता है। उपरोक्त के अतिरिक्त, अन्य जैसे गुफा 17, 20, 21 और 26 संधार प्रकार की हैं और उनके मंदिर कक्ष साम्भयुक्त मंडप में पीछे की ओर हैं, जबकि मंदिर कक्ष के चारों ओर तराशा गया मंडप प्रदक्षिणा पथ का भी प्रावधान करता है। निर्माण समय की दृष्टि से गुफा 17 रामेश्वर के निकट अर्थात सातवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में और गुफा 28 राष्ट्रकूट उत्खननों के आसपास के काल में बनी होंगी।

'धुमरलेना', या गुफा 29 अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एलोरा स्थित गुफाओं में सबसे बड़ी और सर्वाधिक भव्य है। इसका सधार और चौमुख या चतुर्मुख मंदिर न केवल पृथक है, बल्कि स्वास्तिक के आकार मे व्यवस्थित मंडपों के एक समूह के भीतर है, जो एलिफैंटा और जोगेश्वरी गुफाओं की ऐसी योजना के समान है। मंदिर के चार द्वारों पर बड़े बड़े द्वारपाल और अन्य संलग्न मूर्तियां हैं। लंबा आयताकार मुखमंडप, जो मंदिर के आगे है और उसे आंशिक रूप से घेरे हुए है, उसमें एक चौड़ी नाभि और वीथिकाएं हैं, जो हर पार्श्व पर पांच पांच स्तंभों की श्रेणी से बनी हैं जिनमें से सामने की स्तंभ श्रेणी मुख्य प्रवेश को परिवद्ध करती है। महामंडप के अगल-बगल में दो अतिरिक्त पार्श्ववर्ती प्रवेश हैं, जिनमें दो फाटक या स्तंभयुक्त अनुप्रस्थ मार्ग हैं। स्तंभ आकार में विशाल और कुंभयुक्त शीर्षो सहित हैं और भीतर का मूर्ति समूह भी भारी और आकार-प्रकार में बड़ा

है। मदिर में एक एकाश्मक पीठ पर एक लिंग है। गुफा मंदिर का निर्माणकाल चालुक्यों के समय मे सातवीं शताब्दी का मध्यकाल ठहराया जा सकता है।

गुफा 27 या ग्वालिनी की गुफा (गौपीलेना) मंडप की पीछे की ओर पार्श्ववर्ती दीवारों पर तीन मंदिरों से युक्त एक रोचक उदाहरण है। गुफा 25 या कुंभारवाड़ा में अनेक मंदिर कक्ष हैं जैसे कि भोकरदन में और पूर्व कक्ष से संलग्न पार्श्ववर्ती दीर्घाएं हैं। गुफा 27 चालुक्यों और राष्ट्रकूटों के बीच संक्रमणकाल की हो सकती है, किंतु गुफा 25 इससे पहले की, सातवीं शताब्दी के द्वितियार्ध की बनी होनी चाहिए।

दशावतार, या गुफा 15 न केवल पुराना उदाहरण है, बल्कि एकमात्र दो मंजिला गुफा मंदिर या बहुत बड़े आकार का गुफा परिसर है। यह स्पष्टतया बौद्ध आवश्यकताओं के लिए जो भी बनाया और तराशा गया था, उसके नवीनीकरण का मामला है। यह एलोरा मे राष्ट्रकूट निर्माण का आरंभिक उदाहरण है। इसके अग्रमंडप में दतिदुर्ग (ईसवी सन् 752-756) का शिलालेख है और यह समकालीन वास्तुशिल्प का निष्णात कार्य है। इसका निर्माणकाल आठवीं शताब्दी का मध्यकाल ही होगा। वियुक्त नंदी मंडप चार स्तंभों और आगे पीछे सोपानों से युक्त है। मंदिर का मुखाग्र, जो आगे ऊंचा उठता है, स्तंभों की दो पंक्तियों से युक्त दो मंजिला है। स्तंभों की पंक्तियां एक के ऊपर एक हैं और जो वर्गाकार तथा अजंता की तीन तल गुफा का स्मरण दिलाते हैं। भूतल एक उपखंड है, जो चौदह वर्गाकार खंभों से युक्त है, जबकि ऊपरी तल एक बड़ा स्तंभयुक्त मंडप है जिसमें केंद्रीय नाभि और पार्श्ववर्ती वीथियां और पीछे की ओर लिंग सहित एक मंदिर कक्ष है। लिंगपीठ वृत्ताकार है। नौ नौ स्तंभों की छह पंक्तियां हैं और नाभि के दूरस्थ सिरे पर दो अतिरिक्त स्तभ हैं, जिससे मंदिर कक्ष के सामने एक प्रकोष्ठ बन जाता है। प्रकोष्ठ के सामने स्थित दोनो स्तंभ विस्तारपूर्वक तराशे गए हैं, जबकि शेष स्तंभ सादे और खंड में वर्गाकार हैं। दीवारों के साथ भित्तिस्तंभों के बीच उत्कृष्ट मूर्ति समूह के पटल सन्निविष्ट है। गुफा 16, अपने मंदिर कक्ष में वृत्ताकार लिंग पीठ का एक अन्य उदाहरण है।

एकाश्मक कैलास के दाई ओर, ऊंचे स्तर पर लंकेश्वर गुफा भी राष्ट्रकूट उत्खनन है, जो स्तंभयुक्त मंडप के पीछे की ओर संधार मदिर कक्ष के प्रकार से विपर्यस्त है। यह सुसंवद्ध है और इसमें एक अग्रस्थ नंदी मंडप है, जो अत्यधिक प्रतिमा वैज्ञानिक मूल्य की मूर्तियों के समूह से संपन्न है।

गणेशलेना में अनेक गुफा मंदिर हैं, जिन्हें एक सामूहिक संख्या गुफा क्रमांक 21 दिया गया है। हर इकाई में आंशिक रूप से वर्गाकार सादे स्तंभों और भित्तिस्तंभों वाला एक मंडप है, जिसके मुखाग्र पर चालुक्य शैली की पोतिकाए और पृष्ठ भाग में मंदिर कक्ष है। मंदिर कक्ष की पिछली दीवार पर महेशमूर्ति उत्कीर्णित

है। अधिकांशतया फर्श पर एकाश्मक वृत्ताकार पीठ में एक लिंग भी है और एक मामले में चट्टान में तराशा हुआ लिंग भी है। मंदिर कक्ष द्वारों पर बृहद द्वार हैं। इनका निर्माणकाल एलोरा में राष्ट्रकूट शासन के आरंभिक वर्षो में ईसवी सन् 750 के आसपास हो सकता है। यहां के महेशमूर्ति उत्कीर्णन एलिफैंटा में प्राप्त उत्कीर्णन से निरूपण और परिष्कार में पर्याप्त भिन्न है और एलिफैंटा के विपरीत मुख्य मंदिर में राष्ट्रकूट लिंग के पीछे की दीवार पर अवस्थित हैं।

जैन उत्खनन (गुफा क्रमांक 30 से 34 तक) एलोरा की लगभग 800 ईसवी से आरंभ होकर अगली शताब्दी तक चलती रही गतिविधि के अंतिम चरण को सूचित करते हैं। उनमें अधिकांशतया योजना और डिजाइन में पूर्ववर्ती हिंदू उदाहरणों का अनुसरण किया गया है और केवल मूर्तियों और प्रतिमा विज्ञान में अंतर है। साथ साथ खड़ी इंद्र सभा (गुफा 32) और जगन्नाथ सभा (गुफा 33) दोनों ही दुमंजिले उत्खनन हैं। इंद्र सभा के खुले अग्र प्रांगण में चौमुख जैन एकाश्मक मंदिर है। सामने के खुले चौक की ओर शैल-फलक प्रचुरता से मूर्तियुक्त है और विशद रूप से तराशे हुए कपोत प्रस्तर हैं, जिनमें से एक निचली मंजिल को ऊपरी मंजिल से अलग करता है और जिसके प्रस्तर-गल पर गज और सिंह की शृंखला तराशी हुई है। ऊपरी मंजिल के शीर्ष पर दूसरा कपोत प्रस्तर तीर्थंकर के रूपों को प्रदर्शित करते मंदिरों की शृंखला से युक्त है। गुफा की निचली मंजिल अधिकांशतया सादे स्तंभों से युक्त एक अपरिष्कृत सभागार है, किंतु कुछ स्तंभों पर अलंकरण हैं। दीवारों में कोठरियां काटने के प्रयत्न हुए हैं। ऊपरी मंजिल बारह स्तंभों से युक्त नवरंग मंडप है जिसके केंद्रीय खंड में जैन चौमुख के लिए एक उठा हुआ मंच है; जिसके वितान पर एक विशद कमल उत्कीर्णित है। सभागार के साथ एक स्तंभयुक्त ड्योढ़ी है और अग्रभाग के दोनों ओर दो पार्श्ववर्ती मंदिर हैं।

जगन्नाथ सभा, यद्यपि इसी प्रकार की है किंतु उसमे किसी योजना की नियमितता का अभाव है। भूतल पर विषम रूप से अवस्थित तीन गर्भगृह हैं, जो अग्र और महामंडपों सहित अपने आप में अलग अलग इकाइयां हैं। पिछले मंदिर प्रांगण में खुलते हैं, जो गिर चुका है। ऊपरी तल पर इंद्र सभा के समान बारह बाह्य स्तंभों से युक्त नवरंग मंडप है, किंतु पीछे की ओर एक मदिर कक्ष भी है। मंडप के एक कोने से और विशिष्ट कोण पर एक अतिरिक्त इकाई है, जो भूतल पर स्थित इकाइयों की आकार-प्रकार और विशेषताओं के समान ही है, किंतु पूर्ण और प्रचुर रूप से उत्कीर्णित है।

बंबई के निकट एक छोटे-से द्वीप एलिफैंटा पर स्थित गुफा मंदिर अपनी मूर्तियों की असामान्य उत्कृष्टता के लिए विशिष्ट हैं, जिनमें से महेशमूर्ति सर्वाधिक विख्यात है। शैल की लंबाई के समानांतर मुख्य पूर्व-पश्चिम रैखिक अक्ष सहित, इसकी योजना में एक बड़ा मंडप है, जिसे परिधि पर बीस स्तंभो से सहारा मिलता

है। लंब भुजाओं पर आठ आठ और आगे पीछे कोने के स्तंभों के बीच दो दो स्तंभ हैं। आगे पीछे की छोटी भुजाओं पर सोपान हैं, जिनसे उतरकर दोनों दिशाओं में उस उत्खनन से बने खुले प्रांगणों में जाया जा सकता है, जो उत्खनित गुफा मंदिर सहित चट्टान के उस भाग को शेष शैल पुंज से अलग करता है। इसके पूर्वी प्रांगण में फर्श पर चट्टान में एक पीठिका तराशी हुई है, जो शायद नंदी के लिए है। मुख्य महामंडप के उत्तरी पार्श्व पर प्रक्षिप्त मुख और अग्रमंडप हैं। बाह्यतम अग्रमंडप के मुखाग्र पर दो स्तंभ और दो भित्तिस्तंभ हैं। मुखमंडप के दोनों सिरों पर एक एक खंड और है, जिसके कारण वह अग्रमंडप से बड़ा है। ये दोनों महामंडप के उत्तरी पार्श्ववर्ती विस्तार के रूप में बनाए गए हैं जिसमें खुली दिशा में एक प्रवेश है, जबकि दक्षिण में उसी योजना का अनुरूप, पार्श्ववर्ती विस्तार मूल शैल में तराशा गया है, जिसमें महेशमूर्ति और अन्य मूर्तियों से युक्त ताक हैं। महामंडप के पिछले सिरे पर एक संधारा, चतुर्मुख मंदिर है, जो वर्गाकार है और चारों दिशाओं में अलंकृत बृहद द्वार से बद्ध द्वार चौखटें हैं। भीतर चट्टान में तराशा गया एक बड़ा लिंग पीठ है, जिसमें एक लिंग सन्निविष्ट है और उसमें जल प्रणाल का मुंह उत्तर दिशा में है। मंदिर के सामने एक आंतरिक प्रदक्षिणा मंडप चार चार स्तभों की दो पंक्तियों के बीच है, जो मंदिर के आसपास प्रदक्षिणा पथ का अंग है। पूर्व की ओर चट्टान में, उत्तरी द्वार मंडप (ड्यौढ़ी) से आगे एक रास्ता काटा गया है जो पूर्व की ओर अग्र प्रांगण में और मदिर के मुख्य प्रवेश पर ले जाता है। इस आंगन के दक्षिणी पार्श्व पर कगार में दुर्गा के लिए एक छोटा मंदिर उत्खनित है। उत्तरी द्वार मंडप के पश्चिम की ओर चट्टान मे कटा ऐसा ही रास्ता मुख्य मंदिर के पीछे के आंगन और पश्चिमी कगार तक ले जाता है। उसमें शिव का एक छोटा गुफा मंदिर है, जिसमें सामने मंडप सहित एक वर्गाकार मंदिर कक्ष है। यह गुफा मंदिर सातवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश के मध्यकाल में बनाया गया होगा, जबकि एलोरा गुफा 29 (धुमरलेना) का निर्माणकाल,—जो बहुत कुछ इसी की बड़ी प्रतिकृति है, इसी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश के आरंभ मे माना जाना चाहिए।

बंबई के निकट, सालसेट्टे में जोगेश्वरी गुफा मंदिर जो लगभग भूमिगत निचले चट्टानी दृश्यांश में उत्खनित है, एलिफैंटा गुफा की अपेक्षा क्षेत्र में बडा है, किंतु मूलभूत रूप से उसी प्रकार का है। चट्टानी दृश्यांश के एक निर्धारित क्षेत्र के आसपास तीन दिशाओं में खंदक खोदकर एक आयताकार पुज पृथक कर दिया गया जिस पर उत्खनन के लिए कगार बनाए गए। पूर्वी और लंबे सिरे पर एक केंद्रीय मार्गयुक्त एक महाद्वार बनाया गया जिसके दोनों पार्श्व पर मंडप हैं, जिनमें से एक में गणेश स्थापित हैं। महाद्वार एक खुले प्रागण में और पूर्वी मुखाग्र तक ले जाता है, जो ऊंचे फर्श से युक्त एक अग्रमंडप है। आगे मंदिर का मुख्य भाग एक वर्गाकार चतुर्मुख मंदिर कक्ष है, जो एक स्तंभयुक्त विहार या ढंके हुए पथ

से घिरा हुआ है जिसमें हर पार्श्व पर, कोने को मिलाकर छह छह स्तंभ हैं। यह पुनः निचले फर्श स्तर वाले एक मंडप से घिरा हुआ है, जो पूर्व और पश्चिम में एक एक और दक्षिण में तीन प्रवेशों को छोड़कर सभी पार्श्वों पर चट्टानी दीवारो से घिरा है। यहां मंदिर कक्ष केंद्रीय अवस्थिति में है और उसके द्वारमार्ग अलंकृत बृहद द्वारों की चौखटों से आबद्ध हैं। पश्चिमी पार्श्व पर एक अन्य अग्रमंडप है, जो पूर्व में स्थित अग्रमंडप के ही समान है। यह अग्रमंडप बाहर और एक सुरंग से आगे सड़क तक ले जाता है। दक्षिणी पार्श्व पर, मुख्य मंडप अपने तीन द्वारों से, जिसमें मध्यस्थ द्वार के आसपास एक उत्कृष्ट बृहद द्वार है और अगल-बगल में दो अंतर्वर्ती खिड़कियां हैं, इस दिशा में स्थित विस्तार में जाया जा सकता है, जो दस स्तंभों की एक पंक्ति और दक्षिणी मुखाग्र पर दो भित्तिस्तंभों से युक्त एक बाह्य खुले मंडप के रूप में है। इसके बाहर एक संकीर्ण खुला प्रांगण है। आगे की चट्टानी दीवार पर अपूर्ण उत्खनन हैं, जिनका आकार छोटा है और जिनमें से सबसे अंतिम छोर का उत्खनन शिव को समर्पित है। इसके स्तंभ रोचक हैं और इसके मुखाग्र पर नारी आकृतियां हैं। मुख्य गर्भगृह का मूलभूत समर्पण शिव को किया गया था, किंतु मंदिर में अब देवी की एक आधुनिक प्रतिमा स्थापित है।

पूजा में जंगली महाराज रोड पर पातालेश्वर (या पांचालेश्वर) गुफा एक निचली छद्म चट्टान में काटी गई है और इस रूप में अनन्य है कि इसमें तीन मंदिर एक ही सांझी प्रदक्षिणा सहित हैं। नदी के लिए एक वृत्ताकार अग्रमंडप और दुर्गा के लिए एक पार्श्ववर्ती मंदिर है। तीनों मंदिर कक्ष शायद हिंदू त्रिमूर्ति को समर्पित थे—बीच का शिव को और आसपास के ब्रह्मा और विष्णु को। ये सारे लक्षण संकेत करते हैं कि इसका निर्माण राष्ट्रकूट काल में आठवी शताब्दी के द्वितीयार्ध मे हुआ होगा।

महाराष्ट्र में माहुर (जिला नान्देड़) स्थित हिंदू गुफा में एक संधार प्रकार का गर्भगृह है, जिसके साथ सामने दो अनुप्रस्थ गलियारे और आजू बाजू दो छोटे गौण मंदिर कक्ष हैं। यह स्पष्टतया एलोरा की गुफा 17 और 21 के नमूने पर बाद की योजना है और आठवीं शताब्दी के पहले चतुर्थांश में बनी होगी। यह शायद एलोरा के धुमरलेना की प्रादेशिक समकालीन निर्मिति है। शिव गुफा के बगल में एक अपूर्ण उत्खनन भी है।

औरंगाबाद के निकट भोकरदन स्थित गुफा में केलना नदी तल के बाएं तट पर निचले दृश्यांश छद्म शैल में काटे गए खुले स्थान में पीछे की ओर स्तंभयुक्त आयताकार मंडप के पीछे एक पंक्ति में पांच मंदिर कक्ष हैं। हर कक्ष में एक द्वार विवर है। मंडप में आगे और पीछे दो खंड हैं, जो मुख और अर्धमंडप बनाते हैं। मंडप की पार्श्व दीवारों को गोलाई में खोखला किया गया है, जिनमें बड़ी बड़ी मूर्तियां हैं। द्वारपाल बड़े आकार के हैं और अनंतशायी, सूर्य, बलराम, महिषासुर-

मर्दिनी इत्यादि की मूर्तियां हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि यह गुफा पश्चिमी चालुक्यों से संबद्ध है या पूर्वी चालुक्यों से। यह एक मिश्रित परपरा की भी हो सकती है। मूर्तियों का प्रकार और अन्य प्रमाण ईसवी सातवीं शताब्दी के मध्य में निर्मित पूर्वी चालुक्य संबद्धता का संकेत देते हैं।

गोवा में अर्वालेम स्थित दो संलग्न गुफा मंदिरों का समूह एक नदी के निकट पश्चिमी के स्थानीय लेटराइट (मखरैला) शैल में उत्खनन का विरल उदाहरण है। दोनों सामान्य लक्षणों के हैं। उनमें से एक, दक्षिणी गुफा मंदिर तीन कक्षों वाली इकाई है, जिसके हरेक कक्ष में चट्टान में कटी एक पीठ में लिंग सन्निविष्ट है। लिंगों के प्रतीकात्मक पक्ष एक-दूसरे से भिन्न हैं और वे तीन अलग अलग देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। केंद्रीय लिंग सामान्य चालुक्य प्रकार का शिवलिंग है; दक्षिणी गर्भगृह में एक लिंग दंड के ऊपर सूर्यचक्र है, जो सूर्य का प्रतीक है और नीचे शिलालेख में इसके सूर्य रूपाकार होने का विशेष उल्लेख है। उत्तरी कक्ष में लिंग के ऊपर एक सपाट नोकदार बरछा या 'शक्ति' है, जो इसके कुमार या कार्तिकेय के प्रतीक होने का संकेत है। यह सूर्य नारायणा सिद्धांत के अनुसार त्रिमूर्ति में से विष्णु के स्थान पर सूर्य, ब्रह्मा के स्थान पर ब्रह्मण्य या कार्तिकेय को रखने का रोचक उदाहरण है, जैसे कि महाबलीपुरम स्थित गुफा मदिर में है।

शैलोत्खनित गुफा कला की बौद्धकाल से ही सर्वोत्कृष्ट विशेषता वास्तुशिल्प की अपेक्षा मूर्तिकला की प्रमुखता रही है। इसका प्रमुख कारण पाषाण सामग्री की मृदुता और स्थानों के अधिकाधिक उपयोग की इच्छा थी, जैसे कि स्तंभों पर, भित्तिस्तंभों के बीच की दीवारों पर और वितान पर भी। इसी प्रवृत्ति का परिणाम व्यापक स्तर पर चित्रांकन था जैसे कि अजंता, एलोरा और बादामी में।

शिल्पांकन में विविध देवता-रूपाकारों का चित्रण प्रायः वर्णनात्मक या सक्षिप्त पटलों में हुआ। वे द्वारपाल, महेशमूर्ति आदि के समान बहुत बड़े आकार की वैयक्तिक मूर्तियों से लेकर लगभग छोटे उत्कीर्णनों तक विविध आकारों में हैं। आरंभिक पश्चिमी चालुक्य गुफाओं जैसे बादामी में विष्णु और शिव की मूर्तियां अंधाधुंध रूप से गढ़ी गईं जबकि परवर्ती गुफा मंदिरों में वे लगभग पृथक हैं। पूर्व प्रकार की गुफाओं में देवियों में से केवल दुर्गा दिखाई देती हैं, जबकि परवर्ती गुफाओं में सप्तमातृका, सरस्वती, गजलक्ष्मी और पार्वती भी हैं। परवर्ती श्रेणी राष्ट्रकूट गुफाओं में, वैष्णवी उत्कीर्णनों के अधिमिश्रण के पुनरावर्तन सहित दिखाई देते हैं, यद्यपि यह कुछ ही सीमा में हैं जबकि पश्चिमी चालुक्य मूर्तिकला रूपाकार, मुद्रा और अभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिए विशिष्ट है, राष्ट्रकूट चरण में मुद्रा और अभिव्यक्ति पर कम बल के साथ सघन अलंकरण की अधिकता है और यही नहीं, उनमें संक्षिप्त या वर्णनात्मक रूप में पुराण प्रसगों के चित्रण की प्रवृत्ति भी है। ऐसे उपदेशात्मक चित्रण की बहुलता आरंभिक चरण में सौंदर्य बोध की प्रवृत्ति की कमी

की भरपूर क्षतिपूर्ति कर देती है। कम से कम, शैव मंदिरों में मत की प्रमुखता और आगमों के नियम पालन की प्रवृत्ति देखी गई है। जबकि पश्चिमी चालुक्य लिंग पीठ अधिकतर वर्गाकार हैं, राष्ट्रकूट लिंगपीठ जैसे एलोरा गुफा क्रमांक 15 और 16 और गणेशलेना गुफा में वृत्ताकार हैं। वे एकाश्मक हैं और उत्खनन के अंगभूत शैल के ही भाग हैं। पल्लव गुफा मंदिरों में, यह लिंगपीठों के अभाव के विपरीत है, जहां फर्श में बने खांचों में समपार्श्विक (प्रिज्म) धारालिंग प्रकार के लिंगों का आगमन या .वर्गाकार निचले भाग के ऊपर एकरूप वृत्ताकार खंड जो खांचे में बैठाया जाता है वह भी, गुफा मंदिर के निर्माण काल के परवर्ती हैं। चालुक्य राष्ट्रकूट लिंग एक भिन्न प्रकार के हैं। केवल पांड्य मंदिरों के एकाश्मक लिंगपीठों और लिंगों में ही वर्गाकार, वृत्ताकार और अष्टभुजाकार लिंगपीठ भी, मिलते हैं।

यद्यपि शिव का प्रतीक लिंग विशिष्ट लिंगपीठ सहित, जो 'अवुदैयार' कहलाता है, पल्लव गुफा मंदिरों के आरंभिक चरणों में अंग रूप से स्वयं गुफा के साथ साथ तराशा नहीं गया, किंतु ये मत्तरैयार शृंखला के शैलोत्खनित रूपाकारों के एकीकृत भाग के रूप में तराशे गए, जो कालक्रमानुसार परवर्ती पल्लव संरचनात्मक चरण के समय के हैं। किंतु तमिल देश के उत्तर में, चालुक्य राष्ट्रकूट गुफा मंदिरों में, शैलोत्खनित लिग पीठ की उपस्थिति, (यद्यपि सदैव उस पर लिंग सहित नहीं) उस क्षेत्र में पूर्व प्रचलित अभिरुचि की अविच्छिन्नता का संकेत देती है। क्योंकि गुडीमल्लम (जिला चित्तूर) में ऊर्ध्व लिंग रूपाकार के अनन्य उदाहरण के बाद लिंग, जिनमे से अनेक 'आर्ष' (प्राकृतिक रूप से बने) थे, लिंगपीठों में सन्निविष्ट किए हुए, इक्ष्वाकुकाल के नागार्जुनकोंडा में नदी के आस पास के क्षेत्र में उत्खनन के दौरान पाए गए। इनके बाद हाल ही में आंध्र प्रदेश के कुर्नूल और मेहबूबनगर जिलों में नदी घाटी योजनाओं के बचे हुए क्षेत्र में लिंग और लिंगपीठ प्राप्त हुए हैं। ये कारवन (कायरोहोना) से पूर्वकाल में ऐसी ही खोज से जुड़कर पाशुपत मत के संस्थापक लकुलिश से संबद्ध होते हैं और शताब्दियों में दक्षिण की ओर लिंग संप्रदाय के क्रमिक विस्तार का संकेत देते हैं, जो तमिलनाडु में आठवीं शताब्दी ईसवी के आरंभ में पहुंचा है।

बादामी समूह में देखे गए प्रतिमा रूपाकारों में वैष्णव रूपाकारों में से, वराह, त्रिविक्रम, नरसिंह, अनंतशायी, वैकुंठनाथ, विष्णु और चित्रवल्लरियों में वैष्णव कथाएं और कृष्णलीला सम्मिलित हैं। शिव के तांडवमूर्ति, हरिहर और अर्धनारी रूपाकार हैं। अन्यों में गणेश, कार्तिकेय, दुर्गा और महिषमर्दिनी हैं। ऐहोल (रावलपुडी या रावलगुडी) में वराह, हरिहर, अर्धनारी, गंगाधर, सप्तमातृका, महिषमर्दिनी और दो निधियां हैं।

एलोरा के चालुक्य चरण में गणेश, कार्तिकेय, सरस्वती, गजलक्ष्मी, सप्तमातृका, शिव पार्वती कथाएं संक्षिप्त रूप में, पार्वती तपस्या, कैलास-तोलन,

अक्षक्रीड़ामूर्ति, कल्याण सुंदर, अधंकारी, शिव तांडव, लकुलिश, शिव लकुलिश, कृष्ण, बलराम, सुभद्रा, सूर्य, अनंतशायी और ब्रह्मा हैं। इसी स्थान पर राष्ट्रकूट काल दुर्गा, महिषमर्दिनी, पार्वती तपस, कल्याण सुंदर, कैलास दृश्य, अर्धनारी शिव, गोवर्धनधारी, कालियदमन, वराह, नरसिंह, लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश और कार्तिकेय की मूर्तियो के लिए उल्लेखनीय है। एलोरा स्थित गणेशलेना षण्मत या सूर्य के छह पक्षीय मत, विष्णु, शिव, कार्तिकेय, गणेश और दुर्गा का चित्रण करती है।

ऐलिफैंटा की मूर्तियां कुछ परिवर्धनों सहित लगभग वैसी ही हैं जैसी धुमरलेना (एलोरा) में, महेशमूर्ति और शिवयोगी। जोगेश्वरी में कार्तिकेय, लक्ष्मी, गणेश, सप्तमातृका, लकुलिश और कल्याण सुंदर हैं। पूना स्थित पातालेश्वर में गजलक्ष्मी, त्रिपुरांतक, अनंतशायी, लिंगोद्भव और अर्धनारी हैं। माहुर में अर्धनारी, गंगाधर, त्रिपुरांतक, गणेश, कार्तिकेय और सूर्य हैं।

तटवर्ती आंध्र के पूर्वी चालुक्य गुफा मंदिर

आंध्र के तटवर्ती क्षेत्र में वेंगी के पूर्वी चालुक्यों के प्रदेश में कृष्णा नदी के दोनों किनारो पर मृदु चट्टानों में उत्खनित कोई एक दर्जन से अधिक गुफा मंदिर हैं। वे उत्तरी तट पर कृष्णा जिले में विजयवाड़ा और मोगलराजापुरम की पहाड़ियों में और दक्षिणी तट पर गुंटुर जिले में उंदवल्ली, पेनामागा और सीतारामपुरम की पहाड़ियों में मिलते हैं। पूर्वी चालुक्यों से संबद्ध ये गुफा मंदिर अपने अभिविन्यास, प्रतिमा विज्ञान और गर्भगृह की योजना में व्यष्टिपरक विशिष्टताएं प्रदर्शित करते हैं। अपनी मूल चालुक्य और उत्तरी विरासत से अलग उन्होंने पड़ोसी पल्लव प्रथाओं को भी कुछ अंशों में लिया है। इस शृंखला के गुफा मंदिरों की असामान्य विशेषता गर्भगृह की पिछली दीवार के आधार पर चट्टान में तराशा पीठिका खांचा है, जो पूज्य देवता को द्योतित करता है, कि वह शिव का लिंग रूपाकार है या उत्कीर्णित प्रस्तर पट है जिस पर खांचे में बिठाए गए अन्य देवताओं की छवि है। भैरवकोंडा में, लिंग या मूर्ति के लिए पीठिका के ऊपर दीवार पर पूर्वी चालुक्यों के गुफा मंदिरों में वैष्णव उत्कीर्णनों की अनुपस्थिति ध्यान देने योग्य है, जहां इसके विपरीत वे पश्चिमी चालुक्य राष्ट्रकूट समूह में प्राप्त होते है।

व्यावहारिक रूप से सारे गुफा मंदिर शैव हैं या शैव देवकुल के अन्य देवी देवताओं को समर्पित हैं। एक मात्र अपवाद अपसरित उंदवल्ली गुफा मंदिर है, जो विष्णु को समर्पित है। शैव गुफा मदिरों में नंदी चट्टान में तराशा गया है जैसे कि आगे दक्षिण में पांड्य उदाहरणो में मिलता है। कालक्रम के अनुसार विजयवाड़ा स्थित 'अक्कन्ना मदन्ना' गुफा अपने वर्तमान रूप में पहले आती है। इसका निर्माणकाल सातवीं शताब्दी का मध्यकाल है और उसके शीघ्र बाद ही मोगल

राजापुरम की गुफा I से IV, फिर विजयवाड़ा स्थित निचला गुफा मंदिर, उंदवल्ली और शृंखला की अन्य गुफाएं आती हैं। जिसका समापन भैरवकोंडा समूह पर होता है, जिसका निर्माणकाल आठवीं शताब्दी का मध्य है। अंतिम गुफा यदि सीधे पूर्वी चालुक्य विरासत की नहीं है, तो भी तेलुगु चोड़ संबद्धता की है।

इन गुफा मंदिरों में मूलभूत रूप से चट्टान में तराशा हुआ एक मंडप, पीछे की ओर एक या अधिक, प्रायः मंदिर कक्षों से युक्त है। एकाधिक मंदिर पीछे एक पंक्ति में होते हैं। कुछ मामलों में मंडप सादे और अन्यों में बहुस्तंभी, या स्तंभों और भित्तिस्तंभों की दो पंक्तियों—सामान्य मुखाग्र पंक्ति और एक समानांतर भीतरी पंक्ति द्वारा अगले और पिछले भाग में विभाजित हैं। स्तंभ प्रायः सादे, मोटे, छोटे और खंडों में वर्गाकार हैं, या उनकी मध्य ऊंचाई कोनों पर प्रवणित (ढलवां) है। इसके परिणामस्वरूप उनका मध्य भाग अष्टभुज हो जाता है, जबकि उनका आधार और शीर्ष भाग खंडों में वर्गाकार है। मुखाग्र के कपोत कुदु या नासिका मेहराबों से सज्जित हैं। मंदिरों के प्रवेश द्वार सादे हैं, जैसे कि दक्षिणी गुफा मंदिरों में हैं, और वैसे नहीं जैसे पश्चिमी चालुक्य राष्ट्रकूट प्रकार के अलंकृत बृहद द्वारों सहित होते हैं। प्रवेश द्वार के अगल-बगल में प्रायः दो भित्तिस्तंभ हैं, जिनके ऊपर तोरण या वंदनवार होता है। अधिकांश गुफा मंदिर शिव को समर्पित हैं, किंतु दो तो निश्चित रूप से दुर्गा को, और कुछ विष्णु को समर्पित हैं। बादामी, ऐहोल, एलोरा इत्यादि की तुलना में मूर्तिशिल्पीय संपदा बहुत कम है। जो कुछ मूर्तियां हैं, उनमें तांडव शिव उल्लेखनीय है। उंदवल्ली स्थित अनतशयनगुडी गुफा मंदिर समूह में सबसे बड़ा और एलोरा की बौद्ध गुफा 11 और 12, दो तल और तीन तल के सदृश्य तीन तल संरचना है। यदि यह और पहले का नहीं, तो भी सातवीं शताब्दी का बना है और शायद मूल रूप से बौद्ध मत के लिए था, किंतु बाद में विष्णु मंदिर में रूपांतरित कर दिया गया जिसमें प्रमुख देवता लेटे हुए विष्णु या अनंतशायी हैं।

भैरवकोंडा गुफा मंदिर नेल्लोर जिले में कोट्टापल्ले स्थित पहाड़ियों में नरम स्तरित चट्टान के अंतर्वेध में उत्खनित हैं। यह शैल सामग्री कृष्णा गुटुर समूह की सामग्री से भिन्न है। उनके बीच में नृत्य रत शिव और हरिहर की दो शैल मूर्तियों के साथ छोटे ताक या स्मारक मंदिर कक्ष हैं, जिनके भीतर लिंग उत्खनित हैं और उनके साथ आठवीं शताब्दी के समर्पणात्मक या अन्य प्रकार के शिलालेख हैं। आठ बड़े गुफा मंदिर दो समूह में आते हैं। घोड़े के बाल जैसी घाटी के उत्तरी छोर से आरंभ करके पहले चार, अग्रमंडप रहित सादे मंदिर कक्ष हैं, जिनमें विस्तारपूर्वक सज्जित कपोतों और कुदु अलंकरणों का अभाव है। दूसरे समूह के गुफा मंदिर नियमित प्रकार के हैं, जिनमें दो स्तंभों और दो भित्तिस्तभों की मुखाग्र पंक्ति सहित एक बाह्य मंडप है जिसमें पीछे की ओर मंदिर कक्ष है। मंडप मुखाग्र पर कुदुओं

सहित पूर्ण कपोत है जैसे कि पल्लवों के मामल्ल शैली के गुफा मंदिरो में है। स्तंभ खंडों में वर्गाकार हैं और चालुक्य नमूने के हैं जैसे कि कृष्णा के तट पर गुफा मंदिरों में पाए गए हैं। कुछ में स्तंभों के शीर्ष पर सिंहों की आकृतियां हैं और आधार में भी सिंह हैं, जिसके ऊपर के शीर्ष अवयव वैसे ही हैं जैसे मामल्ल शैली के गुफा मंदिरों में हैं। मंदिरों के प्रवेश सादे और बृहद द्वार रहित हैं। ये मिश्रित विशिष्टताएं और अन्य विशेपताएं, साथ ही मंडप में ब्रह्मा और विष्णु की उत्कीर्णित मूर्तियां, मंदिर मे लिंग के लिए प्रावधान और चंडेश और गणेश जैसी अन्य मूर्तियों की उपस्थिति और चट्टान में तराशा गया नंदी उनके पल्लवेतर उद्गम को सूचित करता है और उनका निर्माणकाल आठवीं शताब्दी का मध्य ठहराता है।

वास्तुशिल्पीय मूर्तिकला

एकाश्मक विमानरथ

पूर्णतया किसी वास्तविक चट्टान में तराश कर बनाए गए एकाश्मक विमान मंदिर, शैल स्थापत्य को पल्लव नरसिंहवर्मन मामल्ल (630-668) के सर्वोत्कृष्ट योगदान हैं। ये वास्तव में महाबलीपुरम की खड़ी शिलाओं के विभाजित पुंजों में से या कठोर ग्रेनाइट पट्टिताश्म को पूरी की पूरी शिलाओं में से तराशी गई विशाल मूर्तियों के वास्तुशिल्पीय नमूने हैं। संपूर्ण मंदिर के आकार को तराश लेने के विचार का बीजाणु पश्चिम भारत के चट्टान काटकर बनाए गए चैत्यों के सभा भवनों के भीतर तराशे गए स्तूपों में निहित है। इस विचार को बौद्धों द्वारा शंकरम् (जिला विशाखापट्टनम, आंध्र प्रदेश) में विशाल खुले, छत रहित स्तूप आकारों में आगे विस्तार दिया गया। एक पूर्ववर्ती, यद्यपि अनगढ़ एकाश्मक मंदिर आकार उदयगिरि (जिला विदिशा, मध्य प्रदेश) में तवा गुफा में पाया गया है। यह न्यूनाधिक एक गोलाकार एकाश्मक मंदिर है, जो बालुकाश्म शैल के एक अकेले पुंज में से काटा गया है और एक आधार मंच पर गोलार्ध में तराश कर उस पर तवे के आकार का एक सपाट पत्थर का छत्र रखा गया है, जिसकी संकल्पना, उस पर खुदे अभिलेख के अनुसार चंद्रगुप्त के एक मंत्री द्वारा की गई थी।

इससे भी अधिक महत्व का तथ्य यह है कि पल्लवों ने सातवीं शताब्दी के आरंभ में प्रचलित ईट और लकड़ी के विमान मंदिरों के विभिन्न रूपाकारों को कठोर अविनाशी पाषाण एकाश्मों में ढाल दिया। उन पाषाणी प्रतिमाओं का अस्तित्व इन तेरह शताब्दियों के बाद भी बचा हुआ है, जबकि उनके ईट और लकड़ी के बने उनके समसामयिक और परवर्ती मूल पूरी तरह नष्ट हो गए। इस प्रकार वे दक्षिण मे विमान स्थापत्य के आरंभ के प्रारंभिक उदाहरणों के रूप में बचे हुए हैं, और उस समय विद्यमान या विकसित किए गए विमानों के विविध रूपों को दर्शाते हैं। ये एकाश्म, जिन्हें स्थानीय रूप से रथ कहा जाता है, रूपाकारों की जिस विविधता–विन्यास और उत्थान, को दिखलाते हैं, वे धार्मिक अनुष्ठानों, कला और स्थापत्य–आगम, शिल्प और वास्तु पर सुपरिभाषित आचारों और नियमों के

अस्तित्व का भी संकेत देते हैं। वे इस प्रकार भारतीय मंदिर स्थापत्य, विशेष रूप से दक्षिण के स्थापत्य के अध्ययन मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण सीमा चिह्न हैं।

संपूर्णतया तराशे गए नमूनों के रूप में ये एकाश्म अपने सम्मुख स्थित अर्ध-मंडप सहित एकात्मक प्रकार के मदिर रूपाकारों का गठन करते हैं और विमान के आधार से शिखर तक के न केवल वाह्य पक्ष को, बल्कि, एक सीमा तक, गुहा मंदिरो के समान आंतरिक पक्षों को भी उजागर करते है। वे सब के सब नींव या आधार से ऊपर की ओर किए जाने वाले इमारती निर्माण के विपरीत शिखर से आधार तक तराशे गए थे। फिर भी, परंपरागत विधि के अनुसार स्तूपी या कलश की स्थापना, मंदिर में अचर्य मूर्ति की, मंदिर में आराध्य मूर्ति की समारोहपूर्वक स्थापना, प्रतिष्ठा और कुंभाभिषेकम् अनुष्ठानों के उपरांत मदिर की प्रतिष्ठापना के साथ होनी चाहिए। इसलिए स्तूपी को आरंभ में तराशा नहीं जाता था और इन एकाश्म शैलों पर काम उससे नीचे के भाग, यथा, शिखर से आरभ किया जाता था और एक अलग से तराशी गई स्तूपी को बाद में यथास्थान जोड़ दिया जाता था। एक विकल्प के रूप में, सबसे ऊपर पर्याप्त पाषाण सामग्री को आरंभ में विना तराशे छोड़ दिया जाता था, जिसे काम के समापन पर स्तूपी के रूप में तराशा जाता था।

इन एकाश्म विमानों का तक्षण, जो कि सवका सब महावलिपुरम तक सीमित है, लगता है कि मामल्ल के वाद दो पीढ़ियों तक अर्थात 700 ईसवी तक चलता रहा जब शायद मुख्य देवता की नक्काशी के रूप में इन विमानों के मंदिरों में—द्रौपदी रथ में और धर्मराज रथ के ऊपरी तल पर मूर्तियां तराशी गईं। इसके पूर्व मंदिर के भीतर मुख्य देवता के गचकारी रूपाकारों के चित्रित करने का प्रचलन था।

विमान मंदिर

चूंकि उत्तर और मध्य भारत के विशिष्ट 'प्रसाद' मंदिरों के विपरीत 'विमान' रूप दक्षिणी मंदिरों का सर्वाधिक विशिष्ट और स्पष्ट लक्षण है, इसलिए इस संदर्भ में इसको संक्षेप में परिभाषित करना और उसके सामान्य लक्षणों और उसके रूपाकार, विन्यास और उत्थान के विविध प्रकारों को भी समझ लेना उपयोगी होगा। दक्षिणी 'विमान' मंदिरों के मूल तत्वों की ऐसी सामान्य जानकारी को समझना आवश्यक होगा क्योंकि इस कड़ी में आने वाले मंदिरों का, उनके सर्वाधिक विशिष्ट लक्षणों के अतिरिक्त उनके विवरण दे पाना व्यावहारिक नहीं होगा।

पूर्वकालीन समस्त और पश्चातकालीन अधिकांश 'शिल्प' और 'आगम' ग्रंथों एवं अनेक समसामयिक अभिलेखों के अनुसार 'विमान' शब्द 'उपान' या

'अधिष्ठान' के निम्नतम गढ़न, या मंच से 'स्तूपी' या उच्चतम कलश तक संपूर्ण भवन का द्योतक है। यह केवल मंदिर पर कोई अधिरचना नहीं है, जैसा कि अनेक लेखकों और कुछ बाद में लिखे गए ग्रंथों मे प्रायः मान लिया गया है। इसमें आगे की ओर प्रायः एक छोटा प्रकोष्ठ (ड्यौढ़ी) होता है। जिसे 'अर्धमंडप' या 'अंतराल' कहा जाता है जो उसी आधार या 'अधिष्ठान' पर खड़ा होता है। दक्षिणी मंदिर के आरंभिक उदाहरण एकात्मक प्रकार के थे; जिसमें चहारदीवारी या 'प्राकार' से घिरे अपने अर्धमंडप सहित एक मंजिला या बहुमंजिला 'विमान' होता है। प्रारंभिक दक्षिणी मूल ग्रंथ भी मुख्यतया 'विमान' का वर्णन करते हैं, जिसने यद्यपि उन्नति में पर्याप्त महत्व प्राप्त कर लिया, फिर भी वास्तविक अभिन्यास में प्रारंभिक रूप में और लक्षण में सुसंबद्ध था। तदनंतर, एक स्थिति आई, जब अर्धमंडप के आगे केवल एक महामंडप जोड़ दिया गया और उसे मुख्य भागों के साथ भली भांति संघटित कर दिया गया, और समस्त परिसर को एक 'प्राकार', चहारदीवारी से घेर दिया गया। प्रवेश, जो कि दक्षिण के बहुमंजिले निर्माणों का एक और लक्षण है, अपने महत्व और आकार के अनुसार 'द्वारंशोभा', 'महाद्वार' या 'गोपुर' कहलाता था। प्रायः अतिरिक्त मंडप 'प्राकार' के भीतर आगे के प्रांगण में एक असंयुक्त और अलग से खड़ा हुआ उपभवन होता था। अपने से जुड़े 'अर्धमंडप' या 'मुखमंडप' के सहित मुख्य विमान का महत्व, 'अधिष्ठान' के नीचे एक मंच 'उपपीठ' जोड़कर बढ़ा दिया जाता था। फिर भी, ग्रंथों में 'उपपीठ' को एक वैकल्पिक भवन बताया गया है। हमें समझ लेना होगा कि मंदिर का क्रियात्मक महत्व उसके स्थानीय विस्तार के सीधे अनुपात मे होता था। मुख्य मदिर में प्रतिष्ठापित मुख्य देवता स्वरूप के अतिरिक्त देवी देवताओं को 'विमान' और 'अर्ध' और 'महामंडप' की दीवारों पर दो आयामी ताकों में और अधिरचना के 'तलों' या मंजिलों पर स्थान देना पड़ता था। शेष मूर्तियों को मंडप के स्तंभों तक स्थान दिया जाता था। अनुष्ठानों के बढ़ते हुए महत्व और विस्तार और उत्सवों में वृद्धि के कारण इस केंद्रीय भवन में अक्षीय और परिधीय दोनों प्रकार के विस्तार किए गए। इसने केंद्रीय इकाई के चारों ओर उप 'मंडपों' और पूरक मदिरों या 'विमानों', मंडपों और 'मालिकाओं' या मठों का रूप ले लिया। समस्त परिसरों को एक या अधिक 'प्राकारों' से घेर दिया गया, जिनमें एक या अधिक 'गोपुर' बनाए गए, जिसका परिणाम दक्षिण भारत के परिचित मंदिर परिसर हैं। ये परिवर्धन कभी कभी मुख्य इकाई के समकालीन होते थे। तंजावुर के वृहदीश्वर जैसे मंदिरों के निर्माण में संपूर्ण मंदिर परिसर की योजना एक साथ वनाई गई और उसका निष्पादन लगभग साथ साथ किया गया। फिर भी, अधिकतर यह विभिन्न कालों में धीरे धीरे किए गए परिवर्धनों का परिणाम है; इस तरह मूल अभिन्यास में उत्तरोत्तर विस्तार के परिणाम-स्वरूप बड़े बड़े मंदिर परिसर या मंदिर नगर बने जैसे चिदंबरम तिरुवन्नमलाई,

मदुराई और श्रीरंगम में हैं।

श्रीरंगम जैसे प्रथित मंदिर नगरों में, जो इस तरह के निर्माणों में सबसे बड़ा है, मंदिर से संबंधित लोगों के निवास गृह बाह्य परिधि के भीतर ही वनाए गए। उदाहरणार्थ, श्रीरंगम में, जहां रंगनाथ (शयनमुद्रा में विष्णु) का मुख्य मंदिर केंद्र सात संकेंद्रित 'प्राकारों' या चारदीवारियों से घिरा हुआ है, भीतर की चार चहारदीवारियों में विभिन्न उपमंदिर और उत्सव 'मंडप' बने हुए हैं, जबकि बाहरी तीन दीवारों में निवास गृहों और भवनों की पंक्तियां हैं, जिनके मुंह भीतर की ओर हैं और जिन्हें 'मैकाई' ('मालिका') कहा जाता है। ये सातवें 'प्राकार' के बाहर बने मकानो और सड़कों के सहित एक आधुनिक म्युनिसिपल शहर का गठन करते हैं। सारे त्रिआयामी निर्माणों में अनुप्रस्थ एवं उर्ध्वाधर पक्षों का महत्व होता है, अतएव रूपरेखाओं की विविध प्रकृति और उठान की मात्रा तथा तरलछंद नाम से निर्दिष्ट मंजिलों की संख्या का ब्यौरा ही दक्षिणी विमानों की विशाल विविधता के निमित्त बन जाते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके विभेद स्पष्ट करते हुए श्रेणियों में वर्गीकरण करना पड़ता है। चतुर्भुज वर्गाकार या आयताकार रूपरेखाएं और वक्ररेखी वृत्ताकार, अंडाकार, अर्धवृत्ताकार रूपयोजनाएं—प्रारंभिक बौद्ध और अबौद्ध मंदिरों में भी प्रचलित हो गई थीं। परंतु षट्कोणीय या अष्टकोणीय रूप योजनाएं जो दक्षिणी विमानों के निर्माण में प्रचलित की गई, असाधारण रही होंगी।

ऊंचाई के मामले में सादे या एक तल विमान में अनिवार्यतया छह ऊर्ध्व घटक होते हैं, जो आधार से शिखर तक इस प्रकार हैं—(1) 'अधिष्ठान' या आधार मंच, (2) 'पद', या स्तंभ या 'भित्ति' या दीवार, क्योंकि मंदिर सहित संरचना इनमें से किसी एक या दोनों आधारों पर खड़ी होती है, (3) 'प्रस्तर', या उदग्र कोर्निस या 'कपोत' सहित प्रस्तरपाद, (4) मंदिर की छत और प्रस्तर पर 'ग्रीवा' या झरोखा, (5) शिखर या झरोखे या 'ग्रीवा' के शिरोभाग को ढंकती हुई सबसे ऊपरी छत और (6) 'स्तूपी' या शिखर के ऊपर मुकुट के समान कलश। इस तरह की सामान्य संरचना को 'अल्प विमान' एकतला या एकमंजिला कहा जाता है और 'षडंग' या षड्वर्ग अर्थात छह अंगों वाला होता है। इसके मुख्य अंग में, और प्रस्तरपाद या भूतल की अपेक्षा लघु आयामों के प्रस्तर में, भूतल के 'प्रस्तर' और ऊपर के घटक 'ग्रीवा शिखर स्तूपी' के बीच एक क्षेपक के रूप में एक अन्य तल या 'हर्म्य' का परिवर्धन 'विमान' को 'द्वितल' या दोमंजिला बनाता है, जिसके आठ 'अंग' होते हैं क्योंकि दूसरे 'तल' पर 'हर्म्य' और 'प्रस्तर' का परिवर्धन होता है। आरंभिक काल में इस प्रकार के 'अष्टांग विमान' अधिक प्रचलित थे। मंजिलों की संख्या बढ़ाकर तीन या चार ('त्रितल, चतुश्तल') इत्यादि की जा सकती थी, जिससे वे 'जति विमान' कहलाते थे। 'पंचतल' या और अधिक मंजिलों (जो सोलह तक हो सकती थीं) वाले 'विमान' को 'शिल्प' ग्रंथों में 'मुख्य विमान' कहा गया है। इस संबंध

में तंजावुर का विशाल वृहदीश्वर विमान प्रासंगिक है, जिसकी ऊंचाई 60 मीटर से भी अधिक है।

दक्षिण के 'विमान' का सर्वाधिक विशिष्ट और साथ ही सामान्य लक्षण हर मंजिल पर, उसकी परिधि पर 'प्रस्तर' और अगले 'तल' के ढांचे या 'हर्म्य' के ऊपर 'विमान' जैसे लघु मंदिरों की एक माला की उपस्थिति है। ऐसी माला को 'हार' कहते हैं। जबकि साधारण प्रकार के 'एकतल अल्प विमानों' के लिए 'हार' का प्रावधान नहीं है, किंतु 'जाति' और 'मुख्य विमानों' के लिए ऐसे 'हारों' का प्रावधान किया गया है। लगभग 700 ईसवी तक के आरंभिक उदाहरणों में बहुमंजिले 'विमानों' के 'ग्रीवा' को घेरने वाले सर्वोच्च 'तल' सहित सभी 'तलों' पर हार पाए जाते हैं। पश्चातकालीन विमानों में सर्वोच्च 'तल' पर हार नहीं हैं। उनका स्थान 'वाहनों' या 'आदितल' के मंदिर में प्रतिष्ठापित-मुख्य देवता के अनुरूप ज्ञात प्रतीकों या 'लांछनों' ने ले लिया है। ये शिव मंदिरों में नंदी या 'भूत', देवी, विष्णु या जैन मंदिरों में सिंह; विष्णु मंदिरों में गरुड़ इत्यादि हैं। इस काल से दक्षिण के मंदिरों में यह एक अपरिवर्तनीय वैशिष्ट्य बन गया। इस तरह किसी मंदिर की सांप्रदायिक पहचान और प्रतिष्ठापना का प्रकार, उसके सर्वोच्च 'तल' पर प्रदर्शित 'वाहनों' या 'लांछनों' को दूर से देखकर भी जाना जा सकता है।

चतुर्भुज, वहुभुजी या वक्ररेखीय आयोजना के अनुसार दक्षिणी शिल्प और आगम ग्रंथों में दक्षिणी विमानों का वर्गीकरण नागर, द्राविड़ और वेसर के रूप में किया गया है। आधार से कलश तक चतुर्भुज, वर्गाकार या आयताकार, या जिसकी ग्रीवा और शिखर चतुर्भुज हो, वह नागर कहलाता है। आधार से शिखर तक जो षड्भुज या अष्टभुज हो, या जिसकी ग्रीवा और शिखर षड्भुज या अष्टभुज हो, वह द्राविड़ कहा गया है। आधार से शिखर तक जो वृत्ताकार, अंडाकार या अर्धवृत्ताकार हो या जिसकी ग्रीवा और शिखर की आयोजना ऐसी हो, वह वेसर है। यद्यपि सामान्य रूप से अविकारी वर्गाकार या आयताकार•आयोजना से विशुद्ध नागर रूप बनता है, किंतु कई मामलों में आदितल के वर्गाकार ढांचे के ऊपर, या सादे या बहुमंजिले तलों की *शृंखला के ऊपरी ग्रीवा और शिखर अष्टभुजाकार या* वृत्ताकार आकृति धारण कर सकते हैं। ऐसे विमान द्राविड़ या वेसर वर्ग के मिश्रित प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार, आयताकार संरचना पर अंडाकार ग्रीवा और शिखर हो सकते हैं, जो विमान को पुनः वेसर वर्ग का बनाते हैं। अतः इस प्रकार के वर्गीकरण में आधारभूत अंगों या संरचना के आकार की अपेक्षा ग्रीवा और शिखर के घटक वास्तव में महत्वपूर्ण हैं।

वर्गाकार, वृत्ताकार, षड्भुजाकार या अष्टभुजाकार संरचना पर यदि गुबद वाला शिखर हो और जिस पर केवल एक कलश या स्तूपी हो, ऐसे विमान 'कूट शिखर' सहित 'कूट विमान' कहलाते हैं। डिब्बे जैसे शिरोभाग, मेहराब के समान

या उल्टी नौका के समान छत या चोटी पर स्तूपियों की पक्ति वाले शिखर सहित आयताकार या अंडाकार काय संरचना वाले विमान शाल विमान या कोष्ठ या सभा के रूप में जाने जाते हैं। चाप या अर्धवृत्ताकार संरचना, जिस पर एक अर्धवृत्ताकार छत और क्षैतिज भाग पर कलशों की शृंखला हो, सामान्यतया 'हस्ति पृष्ठ', या 'गज पृष्ठ' कहलाते है, क्योंकि उसका आकार खड़े हुए हाथी के पिछले भाग के समान दिखाई पड़ता है। यह 'पंजर' या 'निद' वर्ग में आता है।

बहुमंजिले विमानों के ऊपर हार या छोटे छोटे मंदिरों की शृंखला, इन्हीं तीन मंदिर रूपो—लघु कूट, शाला (या कोष्ठ) और पंजन (या निद) के आकार में बनाई जाती है। इन्हें तलों के ऊपरी किनारों पर कोनों और वाजुओं पर रखा जाता है और इन्हें कूट, कोष्ठ और पंजर तत्वों की अपेक्षा कम ऊंचाई के मठ या मुंडेरों जैसी क्षैतिज बनावट से आपस में जोड़ दिया जाता है जिसे 'हारांतर' कहते हैं इन हारांतरों में पार्श्विक निर्गत खिड़की जैसे प्रक्षेप होते हैं, जिनके साथ हारांतर की दीवार से प्रक्षिप्त नीचे की ओर आयताकार घटक या वास्तविक खिड़की, और ऊपर के भाग में हारांतर की मुंडेर वाली छत से प्रक्षिप्त एक मेहराबदार बहिर्गत खिड़की होती है। इन्हें क्षुद्रनासिका कहा जाता है क्योंकि वे विमान के मुख्य ग्रीवा शिखर भाग के बाजुओं में बने ऐसे ही प्रक्षेपों की अपेक्षा छोटी होती हैं। विमान के मुख्य ग्रीवा शिखर भाग में बने ऐसे प्रक्षेप महानासिका कहलाते हैं जो मूलतया वातायन का कार्य करते थे। यह देखा जा सकता है कि मामल्ल शैली के अधिकतर गुफा मंदिरों में हार केवल आयताकार शालों की एक लड़ी है, और हर दिशा के छोर पर अर्थात कोनों पर स्थित कूट, कर्णकूट कहलाते हैं और पहली बार ये पंच पांडव गुफा मदिर में पाए गए। हर दिशा में शाला और कोनों में कर्णकूट जबकि अधिकतर एकाश्म (एक ही बड़ी चट्टान) विमानों में पाए जाते हैं, हार का तीसरा तत्व निद या पंजर केवल दो मामलों में दिखाई देता है, एक तो धर्मराज रथ के प्रथम तल के ऊपर और दूसरा नकुल सहदेव रथ के द्वितीय तल के ऊपर जिनका निर्माण सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में पूरा हुआ था। यद्यपि इसे चालुक्यों और पल्लवों दोनों के अल्प विमानों के प्रथम, द्वितीय या तृतीय तलों की संरचनात्मक पक्षों में दुहराया नहीं गया, फिर भी बड़े जति और मुख्य विमानो के अपरिवर्तनीय घटक के रूप में निद आठवीं शताब्दी से आगे दिखाई पड़ता है।

'तल' के केंद्रीय हर्म्य को घेरने वाले हार और हर्म्य के बीच में एक सकीर्ण परिक्रमा पथ भी हो सकता है जैसा कि धर्मराज रथ में है, जहां सभी तलों पर एक एक गर्भगृह है और सभी तल क्रियाशील हैं। ऐसा हार 'अनर्पित' कहलाता है। हर मंजिल के केंद्रीय आकार के चारों ओर लघु मंदिरों के मूल नमूनों के एक घेरे की यह योजना भूतल पर गौण या परिवार मंदिरों से घिरे केंद्रीय मंदिर के समान अभिन्यास आयोजना के अनुरूप होती है और संकेत देती है कि इसे हर मंजिल

के स्तर पर योजनापूर्वक बनाया गया है। अनर्पित हार की यह योजना ऐसे विमानों के मामले में ही संभव थी, जहां गर्भगृह, संधार था या दुहरी दीवार से घिरा हुआ था और साथ ही दो दीवारों के बीच प्रदक्षिणा पथ का स्थान था जिसमें भीतरी दीवार इतनी अधिक ऊंचाई तक उठी हो/उठ सके कि वह द्वितीय तल हर्म्य का निर्माण कर दे और बाहरी दीवार अपने ऊपर प्रस्तर और हार के सहित केवल आदि तल की ऊंचाई तक ही उठी हुई हो। इसी सिद्धांत के आगे और विस्तार के द्वारा, आदितल के मंदिर के आसपास संकेंद्रित दीवारो की संख्या तीन भी हो सकती है जिसके परिणामस्वरूप त्रितल विमान बनता है। इस स्थिति मे एकदम बाहरी दीवार आदितल की ऊंचाई तक, मध्य दीवार द्वितीय तल की ऊंचाई तक और सबसे भीतरी दीवार तृतीय तल की ऊंचाई तक होगी और हर तल की ऊंचाई पर क्षैतिज विभाजक होंगे जो एक के ऊपर एक अधिस्थापित उन गर्भगृहों के क्रम की रचना करेंगे, जिनमें देवमूर्ति स्थापित रहती है।

यद्यपि ऐसे कुछ विमान पल्लवकाल और उसके बाद बनाए गए पाए जाते हैं, फिर भी मुख्य वर्ग के विमानों के सभी मामलों में योजना के सर्वव्यापी विस्तार का परिणाम आधार और ऊंचाई के अपरिष्कृत अनुपात वाले भारी-भरकम बौने भवन होते हैं, जबकि ऊंचाई की तुलना में पहले वाले भवन क्षेत्रफल में काफी बड़े हैं। इसका हल था आदितल के मंदिर के आसपास मोटी दीवारों की रचना जो अधिक ऊंचाई तक उठाई जा सकें, भार सहन कर सकें और ऊपरी तलों को आरेखित या अक्रियाशील या अव्यवहार्य तल बना सके, जिसमें तल के हर्म्य की दीवार के साथ हार संलीन हों और इस प्रकार मध्यवर्ती प्रदक्षिणा पथ का विलोपन कर दे। ऐसा हार अनर्पित कहलाता था और अपने आदितल में गर्भगृह के आसपास ऐसी एक दीवार वाले विमान को निरंधार कहा जाता था। यह सब तुलनात्मक रूप से छोटे आधार क्षेत्र पर प्रभावोत्पादक ऊंचाई के विमान बनाने की इच्छा से प्रेरित हुआ।

चतुर्भुज, बहुभुज, वृत्ताकार या अंडाकार मामलों में आदितल की भुजाओं का क्षेत्रकलन अधिष्ठान के निम्नतम भाग से आरंभ करके अंतरालों पर भूस्तरी प्रक्षेपों या खंडों द्वारा भंग किया जा सकता था। यह योजना ऊपरी तलों में भी अपनाई जा सकती थी जिसका परिणाम मध्यवर्ती खाली स्थानों सहित कोनों और भुजाओं पर खंडों की योजना में होता। उत्तर भारतीय शैली के मंदिरों में प्रक्षिप्त खंड रथ प्रक्षेपों के सूचक हैं और वर्ग की प्रत्येक भुजा पर भूस्तरीय खंडों की तीन, पांच या सात संख्या के अनुसार उन्हें त्रिरथ, पंचरथ या सप्तरथ कहा जाता है। दक्षिणी विमानों में इन भागों के अनुसार नाम नहीं दिया जाता। वहां खंड को 'भद्रा' कहते हैं। अपने बाहरी कोनों पर वे भित्तिस्तंभों द्वारा विभाजित होती हैं। संलग्न दीवारों के साथ अपने भीतरी कोणों पर और प्रस्तार क्षेत्र के ऊपर भूतल के समान वे हार कूट, शाला या पंजर के समूह का वहन करती हैं। कोनों की भद्रा, समभुज या

वर्गाकार हार के कूटों का वहन करती हैं, जो निरपवाद रूप से कोनों में स्थित होते हैं जिन्हें कर्णकूट कहा जाता है। कोनो के बीच आने वाले विमान के हर फलक पर भद्राएं तब अधिक चौड़ी होती है, जब वे अपने प्रस्तार के ऊपर हार की शलाओं का वहन करती हैं। इन दोनों के बीच तीसरे प्रकार के प्रक्षेप संकीर्णतम होंगे क्योंकि वे अपने प्रस्तार क्षेत्र के ऊपर हार के पंजर या निद तत्व का वहन करते हैं। यह केवल बड़े जति या मुख्य विमानों में होता है। इन भद्राओं में, विशेष रूप से चौड़ी वाली भद्राओं में, जिनके ऊपर शाला हो, ताक बने होते हैं जो अधिष्ठान के स्तर के ऊपर और प्रस्तार के कपोत के नीचे विभाजक भित्तिस्तंभों के बीच होते हैं। इनमें आकृति मूलक शिल्प बने होते हैं और इन्हें देवकोष्ठ कहा जाता है। भद्राओं के बीच के मध्यवर्ती खाली स्थान तल की वास्तविक दीवार के द्योतक होते हैं और आरंभिक उदाहरणों में सामान्यतया शिल्परहित पाए जाते हैं। उनमें के केवल भित्तिस्तंभ हैं, किंतु बाद के उदाहरणों में शिल्प-फलक भी हैं, और उथले ताक या भित्तिस्तंभों के अभिप्राय वाले सजावटी प्रकार के फलक भी हैं।

अपने ढाले गए शीर्षाभों या शिरोभागों सहित, जिनमें वास्तुशिल्पी शब्दावली के अनुरूप व्यवस्था होती है, स्तंभ और भित्तिस्तंभ कमोबेश अपने काष्ठ मूलों की पुष्टि करते हैं। स्तंभ का एक आधार या पीठिका—ओम—होती है और उसके ऊपर कमल की पंखुरियों का एक समूह होता है, जिससे नीचे लटकती हुई मालाओं की आकृतियां बनी होती हैं। यह भाग 'मारमास्थान' कहलाता है और स्तंभ का शिरोभाग 'पद्मबंध' और शीर्षाभ के आरंभ का संकेत करता है, जिसमें ढले हुए भाग होते हैं, यथा पद्मबंध के ऊपर एक घट, लसुन या कलश, एक तश्तरी के आकार का भाग जिसे ताड़ी कहा जाता है, उसके ऊपर चपटे कंद के आकार का एक कुंभ होता है जिस पर उल्टी कठौती का आकार बना होता है और एक पाली (या पद्म जब उसका आकार पंखुरियों सहित विलोम कमल के प्रस्फुटन के समान हो) जो वास्तव में एक तख्ते के समान शीर्ष-फलक का भीतरी भाग बनता है। पूर्ववर्ती रूप विधानों में फलक बड़ा, मोटा और वर्गाकार पाया जाता है, जो परवर्ती मंदिरों में बहुभुज या वृत्ताकार और पतला और छोटा हो गया। यह कोष्ठक या खंड—पोतिका— को सहारा देता है जो शहतीर या 'उत्तीर' को संभालता है। ओम या स्तंभ के आधार को प्रायः किसी वास्तविक या मिथकीय पशु या किसी अधिदैविक प्राणी के आकृति मूलक शिल्प का रूप दिया जाता है। इस प्रकार आधे बैठे हुए या उठते हुए व्याल (रूपांतरित चेहरों वाले सिंह के समान मिथकीय आकार) हाथी, नाग, नागदेव, भूत आदि हैं। स्तंभ और शिरोभाग के घटक भी, चतुर्भुज या वर्गाकार के स्थान पर छह, आठ, सोलह या अधिक भुजाओं वाले या खंडों में वृत्ताकार हो सकते हैं। ये पूर्ववर्ती मंदिरों में हमेशा वर्गाकार रहे। पोतिका के विभिन्न रूप प्राप्त हैं जैसे कि पल्लव गुफा मंदिरों की तरंग पोतिका या अन्यों मे सादी

प्रवणित पोतिकाएं। वे बाद में एक केंद्रीय जोड़, या दुहरे वलय के रूप में विकसित हुई, या उन्होंने एक ऐसी प्रक्षिप्त भुजा का आकार ग्रहण कर लिया जिसके अंतिम छोर पर एक झूलती हुई कमल की कली, पंद्रहवीं शती और बाद के मंदिरों की पुष्प पोतिका होती है। ये आकार क्षेत्रीय विकास और कालानुक्रमिक विकास के भी संकेत देते हैं।

अन्य महत्वपूर्ण वास्तुशिल्पी लक्षण है—तोरण, जो आवश्यक रूप से दो स्तभों के ऊपर एक मेहराबदार (कभी कभी सीधा भी जैसे सांची के तोरण हैं) वंदनवार हैं और एक पवित्र या समारोहात्मक प्रवेश द्वार के सूचक हैं। ऐसे मुक्त रूप से खड़े तोरण द्वार या स्तंभ तोरण प्राचीन प्रासादों के गोपुर द्वारों के अनुवर्ती कहे जाते हैं। किंतु जबकि उत्तर भारतीय स्मारकों में, जैसे सांची और भुवनेश्वर में ऐसे प्रवेश के तोरण बनाए रखे गए, दक्षिण में गोपुर प्रवेश द्वारों का प्रचलन रहा और वे मदिर परिसर के सर्वाधिक विशिष्ट और अपरिवर्तनीय भाग बने रहे। फिर भी तोरण का विचार समाप्त नहीं हुआ; उसका अभिप्राय विमान या गोपुर की दीवारों पर अनेक ताको और प्रवेशों पर लागू किया गया और उन्हें भित्ति तोरण कहा गया। उन्हें आश्रय देने वाले स्तंभ उसी प्रकार के हैं, जैसे अपने मुख्य घटकों सहित स्तंभ या भित्तिस्तंभ। फलक के शीर्ष पर आमने सामने बनाए गए मकरों के मुखों से फूलों और बेलबूटों की, या पशुओं, गणों और अन्य आकृतियों की मेहराबदार वंदनवार निकलती है। ऐसे तोरण पत्र तोरण, चित्र तोरण, विद्याधर तोरण आदि कहलाते हैं। ये कुछ गुफा मंदिरों के प्रवेश द्वारो की चौखटों पर, ताकों या देवकोष्ठों के अग्रभागों में, विमान की दीवारों पर और विभिन्न आकार और प्रकार की नासिकाओं के, महानासिका, शुकनासिका, क्षुद्रनासिका और अल्पनासिका के अग्रभागों में पाए गए हैं। प्रस्तार के कपोत पर त्रिअंकी खिड़की के समान मेहराबदार कुछ अलंकरण सहायक स्तंभो से रहित तोरणों के अग्रभाग में होते हैं।

अधिष्ठान या पीठिका भी परिवर्तनीय है। अपने एकदम सादे और सर्वाधिक प्रारंभिक रूप विधान में सबसे नीचे भूस्तर पर एक उपान होता है, गरदन के समान उर्ध्व भाग कंठ कहलाता है और ऊपर एक प्रक्षिप्त मंच प्रति या पट्टिका होती है। इसे मंच कहा जाता है। इसमें एक हल्का-सा विस्तार बीच में पुष्पासन गढ़कर किया जा सकता है जिसे कुमुद कहा जाता है और जो त्रिपट्ट (तीन फलकों वाला) या वृत्ताकार होता है। इसे कंठ के ऊपर और पट्टिका के नीचे बनाया जाता है। एक अन्य गढन, जो उपान की अपेक्षा कम भूस्तरीय किंतु ऊंची और उसके ऊपर तक आती है, जगति कहलाती है। तीसरा रूप भेद पट्टिका क्षेत्र में एक स्थिर कपोत या कोर्निस बनाकर किया जाता है। कमल के पत्तों की एक शृंखला के ऊपर जगति या कुमुद को रखकर उपान के ऊपर फैला हुआ भी दिखाया जा सकता है। ये आरंभिक काल के निर्माणों में क्षेत्रीय रूप विधान का संकेत देते हैं और बाद के

रूप विधानों में विस्तार को दर्शाते हैं।

अधिष्ठान के रूप विधान के विभिन्न संयोजन, तलच्छंद में तलों की संख्या, कर्णकूटों के बीच हार घटकों के रूप भेद, उत्तरोत्तर तलों में उनकी वैकल्पिक या विपरीत स्थिति, उनकी संख्या और अन्य लक्षणों ने विमानों के विभिन्न प्रकारों को जन्म दिया, जैसा कि शिल्प और आगम ग्रंथों में विस्तार से वर्गीकरण किया गया है और जो दक्षिण के हजारों मंदिरों में पाए जाते हैं।

जबकि एकात्मक प्रकार के दक्षिण के मंदिरों के सादे रूप विधान में केवल मुख्य विमान होता है, जिसमें गर्भगृह और ड्यौढ़ी के समान अतराल या अर्धमंडप होता है, आगम और अनुष्ठानों की वृद्धि के साथ विस्तार का आरंभ हो गया। मंडप, यथा महामंडप, मुखमंडप, अग्रमंडप आदि अक्षीय रूप में जोड़े गए, और जल्दी ही बाह्य परिधि पर भी उत्सव स्नापन और सभा मंडप बनाए जाने लगे। दक्षिण के मंदिरों के सभी मंडपों की छतें सपाट हैं, भले ही फिर वे कितनी ही लंबी या बड़ी हों। यदा कदा ढलुआ छतें भी मिल जाती हैं, जिसका कारण स्थानीय जलवायु विषयक आवश्यकताएं हैं, जैसे कि पश्चिमी तट और प्रायद्वीप के चरम छोर पर। यह उत्तर भारतीय--गुजरात, उड़ीसा या मध्य भारत के प्रासादों के एकदम विपरीत है। वहां, निरपवाद रूप से पिरामिड के आकार में ऊपर उठती या एक के ऊपर एक पंक्तिबद्ध अधिरचनाएं मिलती हैं, जो मुख्य प्रासाद की अक्षीय या आड़ी रेखा में मंडप के ऊपर एक कलश पर समाप्त होती हैं। ये अधिरचनाएं घंटसंवरण प्रकार या इसे सादे पीठ प्रकार की होती हैं। यद्यपि यह योजना अग्रवर्ती या बाह्यतम मंडप से प्रासाद के मुख्य शिखर के शिरोभाग तक उत्तरोत्तर आरोही कलशों की एक विशिष्ट क्षितिज रेखा दर्शाती है, किंतु मीनारों का एक अपेक्षाकृत सघन समूह भी बनाती है और प्रासाद मंदिर के ऊपर की अधिरचना मुख्य शिखर के मंडप के शिखर से तुलनात्मक रूप से ऊंचा होने की आवश्यकता को मंडपों की चपटी छत के कारण, जो कि दक्षिण के मंदिरों में मुख्य विमान की अनुलग्न होती हैं प्रतिपादित करती है। विमान, जो कि अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रमुख तत्व है, क्षितिज रेखा पर सदा अलग से दिखाई पड़ता है।

मंडप—बहुत कम ऐसे होते हैं जिनमें भीतर स्तंभ नही होते और बाजुओं से वंद या खुले होते हैं। जव बंद होते हैं, तो दीवारों के भीतरी भागों पर भित्तिस्तंभों की एक शृंखला होती है। उनके बाह्य पृष्ठों पर मुख्य विमान में लब्ध वाह्य विन्यास का अनुकरण किया जाता है। स्तंभ अधिकतर अनलंकृत प्रकार के होते हैं, जो उच्चतम और निम्नतम खडो में आयोजन पर वर्गाकार होते है और बीच के खंडों में अष्टभुज या वहुभुज होते हैं, जैसा कि दक्षिण के विशालकाय शैल में काटे गए गुफा मंदिरों में पाए जाते हैं, जो इसी कारण मंडप मंदिरों के नाम से लोकप्रिय हैं। कोटिकल मंडपम्, ओरूकल मंडपम्, इदाइची मंडपम् आदि नाम यही सूचित करते

हैं। ऊंचे स्तंभों के मामले में मध्यवर्ती भागों में अतिरिक्त वर्गाकार खंड भी जोड़े जाते हैं। ऐसे अनलंकृत मंडप स्तंभों में विशेषीकृत शीर्ष गढ़न नहीं होती, किंतु सीधे शीर्षस्थ वर्गाकार खंड के ऊपर पोतिका होती है। यदाकदा उनमें वास्तुशिल्पीय नियमानुसार संपूर्ण शीर्ष होते हैं या, जैसा कि दक्षिण के गुफा मंदिरों के मामले में देखा जाता है, वे कुंभ वल्ली प्रकार या पूर्व कथित तोषकाकार शीर्ष हो सकते हैं। चालुक्य शृंखला के परवर्ती मंडपों में अपने वर्गाकार आधार पर स्तंभ वक्र और गोलाकार आकारों की शृंखला के रूप में बनाए गए हैं जैसे कि खराद पर चढ़ाए गए हों। पल्लव पांड्य शृंखला के परवर्ती मंडपों में स्तंभों को, चित्र मूर्तियों, पशुओ की आकृतियों या अनेक लघु स्तंभों, जिन्हें 'अनि योट्टी क कल' कहा जाता है, से सजाया गया है।

यद्यपि मंडप की योजना के मूल तत्व विशाल चट्टानों में काटी गई गुफाओं और नागार्जुनकोंडा से प्राप्त अवशेषों में देखे जा सकते हैं, किंतु सातवीं शती से आगे के पाषाण और ईटों के मदिरों में उनकी रचनाएं अधिक स्पष्ट हुईं। दक्षिण में चालुक्य राष्ट्रकूट शृंखला और उनके बाद आने वाले और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा बनवाई गई शृंखलाओं में मंडप की रचना दो प्रकार की है। पहले मामले में, केंद्रीय मध्य भाग को विभाजित किया गया है, जिसमें ऊंचे स्तंभों पर उठी हुई छत है या रोशनदान और नीची छत युक्त दो पार्श्व वीथियां है। दूसरे प्रकार की रचना में मंडप आवश्यक रूपेण वर्गाकार है, जिसे केंद्रीय स्तंभों के अनुरूप ही छोटे और मोटे स्तंभों के परिधीय चक्र जोडकर चारों ओर संकेंद्रित विस्तार दिया गया है। एक केंद्रीय वर्ग के कोनों पर खड़े चार केंद्रीय स्तंभों और उनसे समान दूरी पर अक्षीय और विकर्ण पंक्ति में बारह स्तंभ या भित्तिस्तंभ केंद्रीय खंड के चारों ओर आठ खंडों (कुल नौ खंडों) का निर्माण करते हैं। ऐसे मंडप को 'नवरंग' कहा जाता है। भीतर के स्तंभों की पंक्ति में और अधिक बाहरी चक्र में और कोनों पर बीस और स्तंभों के परिवर्धन से खडों की संख्या पच्चीस हो जाएगी तथा मंडप और बड़ा वर्ग वन जाएगा। पल्लव पाड्य शृंखला के मंदिरों और धुर दक्षिण में उत्तर कालों में उपादान, तकनीकी और परंपरा में उनका अनुसरण किए गए मंदिरों में वर्ग से दीर्घायत में आकार का विस्तार किया गया जिसमें प्रशस्त फैलाव सहित ऊंचे स्तंभों की रैखिक पंक्तियों का प्रयोग किया गया। इस सवका परिणाम सौ या हजार स्तंभों वाले वहुस्तंभी मंडपों में सामने आया।

लगभग ग्याहरवीं शताब्दी के आरंभ तक, रक्षात्मक प्राकार या चहारदीवारी में एकाधिक मंजिल वाले द्वार या गोपुर, जो दक्षिण के मंदिरों की विशेपता है, विमान की तुलना में छोटे वनाए गए थे। वे तात्विक रूप से आयोजना पर आयताकार आड़ी रेखा मे, मध्य में प्रवेश द्वार सहित और एक अनलंकृत सादे या मंजिल वाली अधिरचना है जिस पर स्तूपियों की पंक्ति सहित शाला शिखर है।

हर स्तर पर हार घटक सहित तलच्छंद आयताकार या आयतास्त्र विमान के सदृश है। मंदिरों की आरंभिक शृखला में अधिकतर अल्प या ज़ति विमान प्रचलित थे। जति विमान वाले बडे मंदिरों में, उनकी अभिन्यास योजना में गोपुरद्वार, जो अनुपात और ऊंचाई में मुख्य विमान से पर्याप्त छोटा होता था। ये जति विमान पूरी संरचना में हमेशा प्रमुख होते थे। ये छोटे और मध्यम आकार के गोपुर एक या दो या तीन मंजिल वाले होते थे, जो द्वारशोभा, द्वारशाला, द्वारगोपुर आदि कहे जाते हैं। दसवीं शताब्दी के अंत से जब बड़े विमान बनाए जाने लगे, मुख्य प्रवेश द्वार भी तदनुरूप बड़े अनुपात धारण करने लगे और बहुमंजिले बनने लगे और महाद्वार, या गोपुर या राजगोपुर कहलाने लगे। मुख्य द्वार की ऊंचाई और आकार में वृद्धि भी होने लगी और अंततः वे मंदिर परिसर की प्रमुख संरचना बन गए। यह विशेष रूप से उन प्राचीन मदिरों के मामले में देखा जा सकता है, जहां मुख्य विमान केंद्र, जो प्राचीन था, ज्यों का त्यों रहने दिया गया और परवर्ती कालों में उसके चारों ओर उत्तरोत्तर प्राकार और गोपुर जोड़े गए जैसे कि चिदंबरम, तिरुवन्नमलाई, मदुरै और श्रीरंगम मंदिर परिसरों में। इस प्रकार महत्व विमान से हटकर गोपुर पर आ गया जिसका परिणाम यह हुआ कि तंजावुर स्थित वृहदीश्वर मंदिर जैसे आरंभिक मंदिर परिसरों में जबकि क्षितिज रेखा मुख्य विमान की स्तूपी से उतरकर मुख्य विमान के निर्माणकाल में ही बने सामने के दो गोपुरों में से बाहरी गोपुर पर आती है, उपर्युक्त चार मंदिरों में वह केंद्र से चढ़कर बाह्यतम गोपुर पर जाती है।

एकाश्मक विमान का रूप विधान

जबकि बादामी के चालुक्यों ने उसी नर्म वालुकाश्म के संरचनात्मक (इमारती) मंदिरों का निर्माण आरंभ किया, उनके पूर्वजों ने चट्टानों में कटे गुफा-मंदिर बनाये थे। पल्लवों का सामना बहुत कठोर सामग्री—ग्रेनाइट और चार्नोकाइट से पड़ा। लघु उभारों या पूर्ण स्तरीय अग्रभागक के रूप में कुछ विमान रूप विधानों को तराशने के अतिरिक्त, उन्होंने सामान्य आकार और विविध प्रकार के त्रिआयामी एकाश्मक विमान भी तराशने आरंभ किए। यह कठोर पाषाण में गुफा मंदिर तराशने मे प्राप्त उनके अनुभव का परिणाम था। तराशे गए विमान मंदिरों को बनाने के ऐसे पथ प्रदर्शक कार्य का उद्‌घाटन मामल्ल (नरसिंहवर्मन द्वितीय 630-668) द्वारा किया गया, और एकाश्मक विमान मंदिरों को परिपूर्णता के विभिन्न अंशों तक पहुंचाया गया। उसके उत्तराधिकारियों, महेंद्रवर्मन द्वितीय (668-672) और परमेश्वरवर्मन प्रथम (672-700) और शायद राजसिंह (700-728) द्वारा भी संरचनात्मक मंदिरों के निर्माण का प्रचलन आरंभ करने के पूर्व, अपने आरंभिक वर्षो में नए एकाश्मक मदिर बनाए गए। ऐसे नौ एकाश्मक विमान हैं, जो 'रथ' नाम से लोकप्रिय हैं और

लोक परंपरा के अनुसार पांडवों के नाम पर हैं। ये सभी महाबलिपुरम में सीमित हैं और निर्माण के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूप विधानों के प्रतिदर्श हैं। इनके साथ ही उसी स्थान पर पाई गई विमानों की द्योतक आठ लघु आधार-नक्काशी और त्रिमूर्ति गुफा मंदिर के अग्रभाग के पूर्ण अनुपात के उदाहरण पर भी विचार करना उपयोगी होगा क्योंकि वे सब मिलाकर दक्षिणी विमान के विभिन्न रूप विधानों का निदर्शन कराते हैं। संयोगवश, वे समकालीन और पूर्ववर्ती ईट और लकड़ी से बने विमानों से पाषाण में बनाई गई प्रतिकृतियों के प्रारंभिक निरूपण हैं। इसलिए ये पाषाण प्रतिकृतियां दक्षिण भारतीय मंदिर शिल्प के अध्ययन का एक अच्छा आरंभिक बिंदु बन सकती हैं। ऐसा इसलिए भी कि ये न केवल विभिन्न रूप विधानों, बल्कि ईंट और लकड़ी के बने मूल मंदिरों के विभिन्न रूप विधानों के उपयुक्त विशिष्ट भागों के काष्ठ कार्य, बंधन, धातु कार्य और सजावटी आकल्पन के सूक्ष्मतम विवरणों को पूर्ण विश्वसनीयता के साथ पुनर्प्रस्तुत करते हैं।

महाबलीपुरम में अर्जुन की तपस्या के दृश्य में प्राप्त लघु नक्काशी, अधिष्ठान, पद या भित्ति, प्रस्तर, ग्रीवा, शिखर और स्तूपी के षडांग सहित एक एकतल अल्प विमान का प्रतिरूप है। आधार से कलश तक चतुर्भुज और वर्गाकार होने के कारण यह नागर वर्ग का है और विष्णु को समर्पित है, जो उभरी हुई आकृति में गर्भगृह के भीतर खड़े दिखाए गए हैं। मूल काष्ठ कृति के भागों की प्रतिकृति एकदम स्पष्ट है। रामानुज मडप गुफा मंदिर के अग्रभाग के दोनों पार्श्वों पर दो नक्काशीदार लघु प्रतिकृतियां एकतल, नागर रूप विधान के अनुरूप हैं, किंतु उनका गर्भगृह खाली है। उनका अधिष्ठान एक बड़े मंच पर स्थित है, जो उप-पीठ कहलाता है और जिसे विमान की ऊंचाई बढ़ाने के लिए प्रायः अभिकल्पन (डिजाइन) में एक वैकल्पिक अंग के रूप में जोडा जाता है।

आधार से शिखर तक छह खंडों वाले एकतल विमान की एक ऐसी ही लघु नक्काशी अर्धगोलाकार नकुल सहदेव रथ की शिखर मेहराब (तोरण) मुखपट्टी के भीतर की ओर चित्रित की गई है। आधार से शिखर तक एकरूप बहुभुज आयोजन सहित यह दक्षिण के विमानों के शुद्ध द्रविड़ वर्ग से है जैसा कि ग्रंथों में बताया गया है। भीम रथ के डिब्बे के ऊपरी भाग जैसे शिखर के दो मेहराबदार छोरों के भीतर की ओर इसी प्रकार के दो उभारदार लघु भित्ति चित्र एकतल विमानों के द्योतक हैं। ये दोनों वर्गाकार (आदितल) हैं, जो उसी प्रकार के अधिष्ठान के ऊपर है। दोनों के ऊपर प्रस्तर, एक वृत्ताकार ग्रीवा और स्तूपी सहित वृत्ताकार शिखर है, जो वेसर वर्ग के मिश्रित प्रकार का उदाहरण है, क्योंकि उनकी ग्रीवा और शिखर भाग वृत्ताकार हैं, जबकि नीचे के आदितल के घटक खंडो में वर्गाकार हैं। ऊंचे और स्तंभ जैसे दिखने वाले द्वितल या शुद्ध वेसर विमानों के दुमंजिले रूप विधान का निरूपण जो आधार से शीर्ष तक खंडों में वृत्ताकार होता है, गणेश

रथ के डिब्बे जैसे शिखर के दोनों छोरों पर प्राप्त उभारदार लघु भित्ति चित्रों द्वारा होता है।

महाबलीपुरम स्थित त्रिमूर्ति गुफा मंदिर, महेंद्र या मामल्ल शैली के चट्टान में तराशे गए मंडप प्रकार के अन्य गुफा मंदिरों से भिन्न है। उसमें यह केवल तीन संलग्न इकाइयों के विमान या मंदिर के अग्रभाग का, मंडप घटक के सामने के भाग के बिना, मोटे उभार (भित्ति चित्र) में निरूपण है। हर इकाई अधिष्ठान सहित पूर्ण है। अधिष्ठान में सामने सीढ़ियां हैं, खोदे गए मंदिर कक्षों और बाह्य भित्तिस्तभों सहित आदितल है, दीवारें और ताक हैं, प्रस्तर है जिसके ऊपर कुदु मेहराबें और 'हार' के तत्वों से सुशोभित कपोत है। इस चरण में वे शैल के शीर्ष पर पहुंच जाते हैं। इन तीन स्पष्टतया द्वितल विमानाग्रों की ऊपर की ओर बढ़ने की निरंतरता मूल चट्टान की सीमित ऊंचाई के कारण बाधित होती है। तीन पश्चिमाभिमुख मंदिर कक्षो की पिछली दीवारों पर प्रमुख देवताओं के भित्ति चित्र (नक्काशी) हैं। दक्षिणी कक्ष में भक्तों सहित खडे हुए विष्णु हैं। मध्यकक्ष में भक्तों सहित खड़े हुए शिव हैं और उत्तरी कक्ष में ब्रह्मा के स्थान पर अपने भक्तों सहित ब्रह्मण्य या ब्रह्माषष्ठ, हैं। यह मंडपगपट्टु गुफा मंदिर के मुख्य देवताओं से थोड़ा भिन्न है, जो महेंद्र प्रथम द्वारा खुदवाया गया ऐसा पहला पल्लव मंदिर है, और जो उसके अभिलेख के अनुसार विष्णु, शिव और ब्रह्मा की त्रिमूर्ति को समर्पित किया गया था। मंडपगपट्टु की ये प्रतिमाएं शायद गुफा मंदिर के ताकों जैसे मंदिरों की दीवारों पर चित्रित की गई थीं। तीनों विमानों के अग्रभागों के प्रवेश द्वारों पर उपयुक्त द्वारपाल आकृतियां ताकों के भीतर तराशी गई। समूह में दक्षिण की ओर मुंह वाली चट्टान पर महिषासुर राक्षस के कटे हुए सिर पर खड़ी दुर्गा की आकृति तराशी गई है। यह एक ताक के भीतर है, जो एक अधिष्ठान के ऊपर बनाया गया है और अधिष्ठान के सामने सीढ़ियां हैं, जैसे संलग्न त्रिमूर्ति मंदिर में है। ताक का प्रवेश एक विशद तोरण वाले दो भित्तिस्तभों से घिरा हुआ है, जबकि अधिष्ठान मंच के दोनो बाह्य छोरो पर ऊंचे भित्तिस्तंभ तराशे गए हैं। संपूर्ण संयोजन द्रौपदी रथ के अग्रभाग के उत्थान की प्रतिकृति, किंतु शीर्ष पर तराशी गई कुटिया के छत, जैसी दिखाई देती है।

महाबलीपुरम के दक्षिणी छोर पर स्थित पांच रथ अपने आप में एक समूह हैं। इनमें से द्रौपदी, अर्जुन, भीम और धर्मराज रथ, जो एक पंक्ति में खड़े हैं, उत्तर से दक्षिण की ओर फैली हुई और तीन सरल खंडों में विभक्त एक व्हेल की पीठ जैसी चट्टान में काटे गए हैं। कम ऊंचाई वाले उत्तरी छोर के खंड का उपयोग छोटे द्रौपदी रथ और एकाधिक तल वाले अर्जुन रथ को तराशने के लिए किया गया है। इन दोनों रथों के पृथक अधिष्ठानों के नीचे एक ही साझा मंच या उप-पीठ है। पर्याप्त बडे क्षैतिज शीर्ष वाले मध्य खंड का दीर्घायत भीमरथ के लिए, समुचित रूप से उपयोग किया गया है। दक्षिण के ऊंचे खंड का आधार पर्याप्त प्रशस्त भी

है, जिसका उपयोग त्रितल धर्मराज रथ के लिए किया गया है। ये सब पश्चिमाभिमुख हैं। पांचवां रथ—नकुल सहदेव रथ, जो अर्धगोलाकार या गज पृष्ठ आकार का है और संलग्न गजशिल्प, जों दोनों ही दक्षिणाभिमुख हैं, एक अन्य छोटी चट्टान में काटे गए हैं, जो द्रौपदी और अर्जुन रथों के पश्चिम में सामने की ओर अलग से खडी है। द्रौपदी और अर्जुन रथों के पूर्व में एकदम पीछे की ओर खड़ी एक चट्टान भूमि के स्तर तक काट दी गई है ताकि इन दोनों रथों के पृष्ठ दृश्य पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर रहें। दोनों रथों के बीच चट्टान का केंद्रीय भाग बनाए रखा गया है, किंतु उसे बैठे हुए पश्चिमाभिमुख नंदी की विशाल मूर्ति के रूप में तराश दिया गया है। द्रौपदी रथ के ठीक सामने अलग से एक छोटी सीधी खड़ी चट्टान उत्तराभिमुखी खड़े हुए सिंह की विशाल मूर्ति का आकार दे दिया गया है अन्यथा उससे द्रौपदी रथ का सामने का दृश्य बाधित होता।

अन्य चार रथों में से, गणेश रथ महाबलीपुरम की मुख्य पहाड़ी के बीच एक शिलाखंड में से काटा गया है और मुख्य पहाड़ी के पश्चिम की ओर कुछ दूरी पर अलग से खड़े शिलाखंडों में दोनों पिडारी रथ (उत्तरी और दक्षिणी, यह नामकरण इसलिए कि वे ग्राम देवी पिडारी के आधुनिक मंदिर के निकट स्थित हैं) और वलैयांकुट्टई रथ (वलैयांकुट्टई सरोवर के सामने स्थित) बनाए गए हैं।

छोटा द्रौपदी रथ एक अत्यंत सादी कुटिया जैसे विमान के प्रकार का उदाहरण है, जो आयोजना में वर्गाकार है और जिसमें विमान के सामान्य छह अंगों में केवल चार अंग, यथा अधिष्ठान पाद और भित्ति, शिखर और स्तूपी हैं, जिन अंगों का अभाव है वे प्रस्तर और ग्रीवा है। चतुर्वर्ग रथ चतुर्भुज गुंबदी छत या शिखर और उस पर एक कलश सहित कूट प्रकार का द्योतक हैं। आधार से शीर्ष तक वर्गाकार आयोजना के कारण यह शुद्ध नागर वर्ग का उदाहरण है। यह दुर्गा को समर्पित है, जिनकी सेवको सहित खड़ी हुई आकृति मंदिर की पिछली दीवार पर उकेरी गई है। मुख्य द्वार पर एक परिष्कृत तोरण है और तीन पार्श्व दीवारों पर भी तोरणों से आवेष्टित तीन देवकोष्ठों में खड़ी हुई दुर्गा की उकेरी हुई आकृतियां हैं। प्रवेश द्वार के दोनों पार्श्वों में द्वारपालिकाएं हैं, जो प्रवेश द्वार को आवेष्टित करते कोने के भित्तिस्तंभ और तोरण भित्तिस्तंभ के बीच बने ताक मे स्थित हैं। अन्य रथो के विपरीत, इस रथ में मुख या अर्धमंडप भी नहीं है और शिखर से प्रक्षिप्त नासिका का भी अभाव है।

उसी नागर श्रेणी का एक द्वितल और इसलिए अष्टांग या अष्टवर्ग, आधार से शिखर तक वर्गाकार विमान, पूर्वाभिमुख अपूर्ण वलैयांकुट्टई रथ के रूप में देखा जा सकता है। उसमें एक छोटा अर्धमंडप है और आदितल में एक ही दीवार है, इसलिए निरंधर है। दोनों तलों के प्रस्तरों पर अर्पित हार, दूसरे तल के हर्म्य और ऊपर ग्रीवा पर बनाए गए हैं, जो कोनों पर स्थित कर्णकूटों और हर दिशा में उनके

बीच बनी चार शालाओं से बनाए गए हैं। ग्रीवा शिखर क्षेत्र की चारों दिशाओं में नासिकाएं हैं। आदितल स्तर पर बने हार को अर्धमंडप के शीर्ष के ऊपर तक बढ़ाया गया है, जो आरंभिक विमानों का एक लक्षण है। मंडप के ऊपर के कूट और शाला आदितल के ऊपर के कूटो और शालाओं से छोटे हैं जो कि सामान्य है। यह अर्जुन के तपस्या-शिल्प में और रामानुज मंडप गुफा मंदिर के अग्रभाग के दोनों छोरों पर उकेरे गए विमानों द्वारा चित्रित छह अंगों वाले एकतल रूप विधान के ऊपर एक एक मंजिल जोड़कर किए गए तलच्छंद के विस्तार का उदाहरण है। उत्तर में स्थित उत्तराभिमुख जुड़वां पिडारी रथ, अपने अर्धमंडप सहित शुद्ध नागर श्रेणी के हैं, जिसमें केवल यही अंतर है कि द्वितीय तल के ऊपर कोई हार नहीं है—महाबलीपुरम में शृंखला का यह अतिम और इस संबंध मे आठवीं शती के परवर्ती विमानो के पूर्वानुमान का यह एक अग्रिम लक्षण है। ग्रीवा शिखर मुखों में प्रक्षिप्त नासिकाएं बनाई गई हैं। दोनों रथों में उनके आदितलों की दीवारों पर शिल्प का अभाव है और वे अपूर्ण हैं।

पूर्वाभिमुख, अपूर्ण दक्षिणी पिडारी रथ और अधिक वना हुआ अर्जुन रथ उसी तरह द्वितल, दोनों तलों पर खंडों में वर्गाकार है तथा दोनों स्तरों पर चार कर्णकूटों के ऊपर से जोड़े गए हार और चार शालाएं है। फिर भी ग्रीवा और शिखर खंडों में अष्टभुज जो उन दोनों को मिश्रित प्रकार की द्रविड श्रेणी के अष्टांग, निरंधर विमान बनाते हैं। ग्रीवा शिखर के चार आधारभूत पार्श्वो से चार नासिकाएं प्रक्षिप्त है। दोनों विमानो में अर्धमंडप पर कूटों के हार और शालाएं आदितल के ऊपर के कूटों के हारों और शालाओं से आकार में लघु हैं। उत्तरी पिडारी रथ की दीवारों पर कोई मूर्ति नहीं है, जबकि अर्जुन रथ में अधिष्ठान से प्रस्तर तक आदितल के फलक तक तीन बार संतुलित हैं, दोनों कोनों पर और मध्य में, अनलंकृत तक्षित ताकों में उत्कृष्ट आकृति शिल्प है। द्वितीय तल पर भी, सामने के हार की केंद्रीय शाला के दोनो पार्श्वो पर दृष्टिगोचर कोने के भित्तिस्तंभों के हर फलक के भीतर दीवारो पर मूर्तिशिल्प है। मंडप के अग्रभाग के दोनो स्तंभ और दोनों भित्तिस्तंभ व्याल आधारयुक्त हैं। उपरोक्त सभी मामलों के समान मंडप के ऊपर तक हार का विस्तार किया गया है।

धर्मराज रथ त्रितल है, तलो पर वर्गाकार और ग्रीवा शिखर क्षेत्र में अष्टभुज; किंतु तीनों मजिलों के क्रियाशील रहने के लिए अभिप्रेत हैं। इसलिए विमान की रचना मे, अन्य रथों और परवर्ती संरचनात्मक उदाहरणों में अक्रियाशील किंतु प्रतीकात्मक उच्चतर तलों के विपरीत, तीन अधिस्थापित गर्भगृह हैं। इसके निष्पादन में निर्माण की कक्षीय विधि अपनाई गई, जिसमें तीन संकेंद्रित, दीवारो से घिरे वर्धमान ऊंचाई के वर्ग बनाए गए जो क्रमानुसार तलों की उत्तरोत्तर ऊंचाई तक एक-दूसरे के भीतर ऊपर उठते हैं, और इस तरह बीच में अंतराल छोड़ते है।

आदितल प्रस्तर की ऊंचाई तक उठती सबसे बाहर वाली दीवार, तथापि, केवल चारों कोनों के आसपास खंडों में विद्यमान है, मध्यवर्ती खुले पार्श्व, हरेक के दो स्तंभों और दो भित्तिस्तंभों सहित सब व्याल आधारित है। तीनों तलों के प्रस्तर के ऊपर के हार इस तरह तल दीवारों से पृथक हैं, और इसीलिए अनर्पित हैं। आदितल के सामने, पश्चिम में स्थित छोटे मुखमंडप पर एक हार है जिसकी रचना मे पहली बार कूटों और शालाओं के साथ साथ अर्धवृत्ताकार निदा या पंजर को सम्मिलित किया गया है। अष्टभुज ग्रीवा शिखर क्षेत्र में चार आधारभूत पार्श्वों पर चार प्रक्षिप्त नासिकाएं हैं। जबकि नीचे के तल अपने बाह्य भाग के अलावा अपूर्ण रहे, सर्वोच्च तल पर उसमें एक मंदिर खोदा गया, जिसमें उसकी पिछली दीवार पर सेवा में उपस्थित विष्णु और ब्रह्मा सहित शिव के सोमस्कंद रूप को प्रतिष्ठित किया गया है। इस तल पर भी, दो निम्न तलों की दीवारों के समान, ताकों में विविध देवताओं की उत्कृष्ट मूर्तियां हैं, जो आरंभिक पल्लव मूर्तिकला के विविध लक्षणों को दर्शाती हैं। इसका आरंभ शायद मामल्ल द्वारा किया गया था, जैसा कि द्वितल के पूर्वी पार्श्व पर अंकित लेख से संकेत मिलता है, और शीर्षतल की प्रतिष्ठापना सहित पूर्णता की विद्यमान स्थिति तक परमेश्वरवर्मन द्वारा पहुचाया गया, जैसा कि शीर्षतल पर अंकनों से संकेत मिलता है।

धर्मराज रथ में आदितल की जो दीवार कोनों को घेरती और चारों दिशाओं पर वीच में स्तंभयुक्त खुले प्रवेश द्वार छोड़ती दिखाई पडती है, वह वास्तव में आदितल मंदिर को आवृत्त करती एक वाह्य, संकीर्ण परिधीय मंडप की दीवार है। प्रतिमान वास्तव में वही है, जिसमें आदितल गर्भगृह की दीवार द्वितल के मंदिर की बाहरी दीवार के रूप में उठती है, जिसे संधान कहते हैं। इसके साथ एक अंतर्वर्ती अतिरिक्त दीवार होती है, जो नीचे के तलों की अपेक्षा कम रैखिक आयामों वाले तीसरे तल की ऊंचाई तक उठती है। इस प्रकार धर्मराज रथ अपने आदितल में केवल संधार का आभास देता है।

भीम और गणेश के रथ कोष्ठ या शाला प्रकार के आयतास्त्र विमान के उदाहरण हैं, जिनके शाला शिखरों पर—मंगरे के ऊपर स्तूपियों की एक कतार होती है। उसके विपरीत दूसरे रथों में कूट या अभिसारी प्रकार के शिखर, केवल एक कलशवाले ही हैं। अपूर्ण भीम रथ भी, धर्मराज रथ के समान संधान-आभासी है क्योंकि उसका आदितल एक संकीर्ण मंडप से घिरा हुआ है, जिसकी दीवारें कोनों को और लंबे एवं छोटे पार्श्वों पर स्थित दो स्तंभों तथा दो भित्तिस्तंभों के मध्यवर्ती खुले अग्रभागों को घेरती हैं, इनमें स्तंभ और भित्तिस्तंभ व्याल आधारित हैं। मंडप के ऊपर पार्श्वों पर, चारों कोनों पर कूटों के हार और बीच में शालाएं हैं। पश्चिमाभिमुख आयताकार मंदिर संभवतया शयन मुद्रा में इस तरह लेटे हुए विष्णु के लिए अभिप्रेत थे जिनका सिर दक्षिण और पैर उत्तर में हों। आयताकार ग्रीवा,

जो गर्भगृह की दीवारों की निरंतरता में ऊपर उठती हैं, कुछ अधिक ऊची है। ग्रीवा शिखर की दोनो लंबी भुजाओं पर तीन आकारों में सुप्रक्षिप्त पांच नासिकाएं हैं—मध्य में सबसे बड़ी, दोनों छोरो पर मध्यम आकार की और अंतर्वर्ती सबसे छोटी। अपने संयोजन मे प्रस्तर सहित तीन बड़ी नासिकाएं पूर्ण नासिकाओं की द्योतक हैं। दोनों छोटी नासिकाओं में प्रस्तर भाग का अभाव है। हार मंडल के कूटों और शालाओं के बीच के हारांतर भागों में, सभी अन्य रथों में सामान्य से भी अधिक छोटी नासिकाएं हें। इस प्रकार यह रथ अकेला ही ग्रंथो में वर्णित नासिकाओं के विविध रूपविधानों को प्रदर्शित करता है। दुमंजिला गणेश रथ निरंधार है, इकहरी दीवार और सामने आदितल के समान लंबाई वाले एक सकीर्ण मुखमंडप से युक्त है। मंडप अपनी छोटी भुजाओं वाले पार्श्वों पर और सामने के कोनों पर दीवारों से घिरा हुआ है जिससे सामने का अग्रभाग खुला हुआ है जिसके स्तभ और भित्तिस्तंभ व्याल आधारित हैं। दोनों तलो के ऊपर और मंडप के ऊपर भी हारों में कूट और शालाएं सम्मिलित हैं। ग्रीवा शिखर क्षेत्र के दोनों लंबे पार्श्वों पर तीन प्रक्षिप्त नासिकाएं हैं, जिनमे से बीच की नासिका लंबी और अपनी बनावट में प्रस्तर तत्व से युक्त हैं और शेष दोनों नासिकाए इस तत्व से रहित और छोटी हैं। स्तूपियां समन्वित हैं और विमान की पूर्णता पर मगरे पर छोड़े गए शैल पुंज में से तराशी गई हैं, जबकि अन्य रथों में वे अलग से जोड़ी गई हैं। शिखर के छोरो की दोनों मेहरावो के शीर्ष पर त्रिशूल कलश है, जो तीन शृंगों वाले शूल देव का मस्तक है और केवल चेहरा ही द्योतक है। स्तूपियों के समान ही इस तरह के शूल देव कलश भीम रथ पर भी चढ़ाए गए थे। द्वारपालों के अतिरिक्त इस रथ में कोई और मूर्तिशिल्प नहीं है। इस. रथ के अग्रभाग में, व्याल आधारित दो स्तंभों के अतिरिक्त अग्रभाग के भितिस्तंभ भिन्न हैं, जिनमे एक अन्य प्रकार के मिथकीय पशु, चोंचदार चेहरे वाली व्याल जैसी आकृति भित्तिस्तंभ के आधार में वनाई गई है। अपने अभिलेख के अनुसार यह रथ मूलतया शिव को समर्पित था; गर्भगृह में स्थापित पाई गई गणेश की प्रतिमा अभी हाल ही में रखी गई है।

द्वितल और पूर्णतया अर्धवृत्ताकार और निरंधार नकुल सहदेव रथ द्वयास्त्र (अर्धवृत्त छोर युक्त दो पार्श्व) या चाप (धनुषाकार) रूपविधान का भलीभांति प्रदर्शन करता है। इसे गज या हस्तिपृष्ठ भी कहते हैं। यह दर्शाने के लिए कि यह खड़े हुए हाथी के पृष्ठभाग जैसा होता है, पार्श्व मे वैसा ही एक बड़ा मूर्तिशिल्प तराशा गया है, जैसे कि उस समानता पर वल दिया गया है। नकुल सहदेव रथ के चाप आकार ने अपना यह वास्तुशिल्पीय नाम इस तथ्य से प्राप्त किया है कि आयोजना पर विमान पूरी तरह से खींचे गए धनुप या चाप के अंग्रेजी के 'यू' अक्षर के मोड़ के समान दिखाई देता है। इसके अडाकार या दीर्घवृत्तीय आकार के कारण, यद्यपि आगे के छोर पर यह काट-छांट दिया गया है, यह भी वेसर श्रेणी के विमान

के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसमें सामने की ओर एक छोटा मुखमंडप है जिसकी चौड़ाई लगभग उतनी ही है जितनी आदितल की। सामने के दो स्तंभ व्याल आधारित हैं और पीछे के दो भित्तिस्तंभ गज आधारित हैं। आदितल के ऊपर वाले प्रस्तर पर सामने के दोनों कोनों पर दो कर्णकूटों सहित एक हार है, जबकि पार्श्वों पर और पीछे के अर्धवृत्त पर शालाओ की पंक्ति है। मंडप पर स्थित हार मे भी केवल कूट और शालाएं हैं। द्वितीय तल का हार तथापि निदों और पंजरों से युक्त है (जो मुख्य विमान के एकतल के लघुप्रतिरूप हैं।) ये सामने के दो कर्णकूटों के बीच अवस्थित हैं, जबकि पार्श्वों और वृत्ताकार के आसपास शेष हार शालाओं से बना है। हार की संरचना में यह नया प्रयोग, पंजर या निद के तीसरे तत्व का संयोजन यहां पहली बार किया गया लगता है, जैसा कि धर्मराज रथ के मंडप के ऊपर निर्माण पूरा होने का लगभग वही समय रहा होगा जो इस अर्धवृत्ताकार रथ का होगा। इस रथ में न तो मंदिर के भीतर, न भित्तिस्तंभों के बीच तलों की दीवारों पर, कोई मूर्तिशिल्प हैं।

एकाश्मक मंदिर रूपाकारों को काटकर बनाने की पल्लव परिपाटी न केवल दक्षिण भारत में पल्लवों के पड़ोसियों द्वारा, बल्कि बहुत दूर दूर तक अन्यों द्वारा भी अपनाई गई और दक्षिणी और उत्तरी ढंग के कुछ एकाश्मक मंदिर भारत के विभिन्न भागों में, प्रायद्वीप के धुर दक्षिणी छोर पर स्थित तिरुनेलवेली जिले से लेकर उत्तर में हिमालय की तराई में स्थित कांगड़ा जिले तक, पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में मंदसौर और मध्य भारत में ग्वालियर तक, केवल अगली दो शताब्दियों में ही बना गए थे।[1]

पल्लवों के इस पथप्रदर्शक कार्य के बाद तोंडाईमंडलम के पल्लव प्रदेश के उत्तर में स्थित पूर्वी चालुक्य क्षेत्र में उसी और अगली शताब्दियों में एकाश्मक विमान रूपाकारों को तराशने के कुछ प्रयत्न ध्यान देने योग्य हैं। अनंतशयनागुडी के प्रसिद्ध चार मंजिले गुफा मंदिर के सन्निकट पश्चिम में, उदवल्ली चट्टान के प्रक्षिप्त खंड को विमान और अग्रमंडपों में तराशा गया। गंडपों को पूरी तरह

---

1 प्रायद्वीप की सीमाओं के वाहर, एकाश्मक मंदिरों को यद्यपि उत्तरी रेखा प्रणद प्रकार के, मदिरों को तराशने की इस प्रथा का पश्चिम में विस्तार, आठवीं नवीं शताब्दी मे धनमार (मंदसौर जिला) की पहाड़ियों में संस्थापित सात परिवार मदिरो सहित वैष्णव मदिर परिसर के उदाहरण से सूचित होता है। उत्तर में मसरूर (कांगडा जिले) में परिवार मंदिरो सहित एकाश्मक मदिरों का परिसर है, जो भूमि के ऊपर स्थित वालुकाश्म शैल में तराशे गए है और नवी शताब्दी में वनाए गए है। मध्य भारत में प्रासाद और मुखमडप सहित चतुर्भुजजी का मदिर ग्वालियर की वालुकाश्म पहाड़ी पर वनाया गया है, जिसका श्रेय नवी शताब्दी के प्रतिहारो को दिया जाता है। पूर्व मे कोलगाग (भागलपुर जिले) में गंगा के एक चट्टानी द्वीप के शिखर के पास ग्रेनाइट के एक शैल में से एक एकाश्मक मंदिर खोदा गया, जो अपूर्ण है। इसमें प्रस्तर और ग्रीवा सहित शाला शिखर है। इसकी दीवारों पर वास्तुशिल्पीय नक्काशी उड़ीसा के मंदिरों के सगान है।

तराशा गया और विमान को सामने के भाग के रूप में बाह्य रूप से प्रस्तुत किया गया। पंक्तिबद्ध अधिरचना सामने के मंडपों की शीर्ष रेखा के ऊपर मुख्य पहाड़ी तक ऊंची है। भीतर का निर्माण सामने के आगारों और उनके पीछे मंदिर कक्ष के सहित खोदे गए गुफा मंदिर के पूर्ण पक्ष को प्रस्तुत करता है। मंडप के अग्रभाग में दो स्तंभ और दो भित्तिस्तंभ हैं, जो सब अनलंकृत प्रकार के हैं। कुदु मेहराबों से सजे उसके प्रस्तर पाद पर एक सुस्पष्ट कपोत है। भीतर मुखमंडप की पार्श्विक दीवार में देवकोष्ठ हैं, जो अब खाली हैं। मंदिर के प्रवेश द्वार के दोनों ओर अर्ध-मंडप की पिछली दीवार पर तोरणों से आच्छादित वैसे ही ताक हैं। मंदिर कक्ष खाली है। संलग्न चट्टान फलकों में विमान की लघु प्रतिकृतियां तराशी गई हैं, जो संख्या में छह हैं और विभिन्न आकारों में हैं। वे अर्जुन की तपस्या और महाबलिपुरम स्थित रामानुज मंडप के दोनों ओर बनी प्रतिमान नक्काशियों से मिलती जुलती हैं। वे एकतल नागर विमान की प्रतिकृतियां हैं, जो आधार से शीर्ष तक वर्गाकार होता है।

एकाश्मक विमान के अधिक क्षतिग्रस्त अवशेष विजयवाड़ा में, अक्कन्ना-मदन्ना समूह के ऊपरी गुफा मंदिर के सामने पाए गए। चेजेरला (जिला गुंटुर) में कपोतेश्वर के अर्धवृत्ताकार ईटों के मदिर के अहाते में मंदिरों के अनेक लघु प्रतिमान पाए गए हैं जो स्वरूप में एकाश्मक और स्पष्टतया व्रतानुष्ठित (मानता) प्रकार के हैं। ये पड़ोसी जिले कुर्नूल स्थित सत्यावोलु, महानंदी और आलमपुर के मंदिरों के अहाते में पाए गए ऐसे ही मंदिर प्रतिमानों का स्मरण दिलाते हैं। चेजेरला प्रतिमानों में से एक तो इसलिए दिलचस्प है कि उसमें मंदिर के अग्रभाग के लिए पूरी तरह से अलग-थलग खड़े स्तंभों की एक जोड़ी प्रदर्शित की गई है।

जबकि बादामी के समकालीन पश्चिमी चालुक्यों ने, जो अपने संरचनात्मक पाषाण मंदिरों के निर्माण में प्रगति कर रहे थे, चट्टानों में तराश कर मंदिर बनाने की पल्लवों की पद्धति को नहीं अपनाया, किंतु राष्ट्रकूटों ने, जिन्होंने जल्दी ही चालुक्यों का उनके अपने क्षेत्र में स्थान ले लिया था, इसे उत्साहपूर्वक अपना लिया और अन्य एकाश्मक मंदिरों के साथ ही एलोरा में दक्षिणी मंदिर परिसर के महान और विशाल एकाश्मक संस्करण की रचना की, जिसे कैलास के नाम से जाना जाता है।

राष्ट्रकूट कृष्ण प्रथम (756-775) द्वारा किया गया सृजन एक प्रकार से अनुपम है। एक ढलुवां पहाड़ी में एक चुने हुए क्षेत्र पर सभी दिशाओं में समकोणों पर चट्टान के आधार तक ऊपर से नीचे खोदकर एक आयताकार केंद्रीय पुंज (लगभग 60X30 मीटर) अलग कर लिया गया, और उसके सामने, आगे की प्रशस्त खाई के आगे एक और खाई खोदकर एक संकीर्ण आड़ा आयताकार आकार अलग कर दिया गया, जो दीवार के समान आरपार फैला हुआ है। शैल का बड़ा आयताकार पुंज, जो इस बाजू से उस बाजू तक के बजाय आगे से पीछे तक लंबा था, मुख्य विमान और उसके अक्षीय मंडपों का परिसर तराशने के लिए उपयुक्त

था। साथ में सामने दोनों पार्श्वो पर दो ऊंचे और मोटे खुले खड़े हुए एकाश्मक स्तंभ भी हैं, जो सभी दिशाओ में बनी खाई से बने एक खुले प्रांगण से घिरे हैं। सामने की ओर अगले प्रांगण को, जिसका प्रमाप 90X60 मीटर है, पार्श्वों की अपेक्षा चौड़ा तराशा गया और इसी के दोनों पार्श्वो पर एकाश्मक, असंलग्न खड़े स्तंभ तराशे हुए पाए गए। सामने की ओर संकीर्ण आयताकार शैल पुंज, आगे के गोपुर, को तराशने की उपयुक्त सामग्री था, जिसके दोनों ओर प्राकार की दीवार के दो खंड हैं। गोपुर दुमंजिला है जिस पर एक शाला शिखर है और उसके नीचे वाले भाग में एक रास्ता काटा गया है, जो सामने की ओर अगले प्रांगण में और मुख्य विमान परिसर के आधार के चारों ओर बने प्रदक्षिणा पथ पर ले जाता है। ऊपरी मंजिल नंदी मंडप के फर्श से संबंधित है। इसी तरह इसकी कल्पना दो मंजिली संरचना के रूप में की गई थी जिसमें नीचे की मंजिल ठोस और अनुप्रयोज्य और एक उठे हुए मंच के उद्देश्य से बनाई गई, तथापि उसमें आदितल के सारे वास्तुशिल्पीय लक्षणों के बाह्य चिह्न हैं। ऊपर का तल कार्य योग्य है जिसके भीतर नंदी है। इससे आगे मंदिर के मुख्य भाग में, अंतराल या अर्धमंडप और सामने अक्षीय रूप से एक बंद महामंडप सहित मंदिरयुक्त विमान तात्विक रूप से बना हुआ है। संपूर्ण अक्षीय श्रृंखला एक अत्यधिक अलंकृत नींव पर उठी हुई है, जिसका शीर्ष मंच, सुस्पष्ट रूप से तराशे गए, हाथियो, सिंहों और अन्य पौराणिक पशुओं के अग्रभागों की वल्लरी पर आधारित है। महामंडप के पिछले दो कोनों पर कूट प्राकार के द्वितल विमानों से सज्जित है, और उसमें दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में मध्य में प्रक्षिप्त ड्योढ़ी से तीन द्वार हैं जिन पर गोपुरम जैसे प्रवेशद्वार दिखाने के लिए अधिक बड़ी और अधिक उठी हुई .शालाओं की अधिरचना है। मंडप का शीर्ष भाग लगभग सपाट है जिस पर एक बड़ा अनेक पंखुरियों वाला कमल, उसके केंद्र के ऊपर तराशे गए कलश का आधार है। महामंडप और अंतराल के पीछे मुख्य विमान खड़ा है, जिसका गढ़ा हुआ वर्गाकार अधिष्ठान नीचे के मंच की भुजाओं से छोटी भुजाओं वाला है। यह अधिष्ठान उपपीठ के मध्य में स्थित है, जबकि पांच वियुक्त उप-मंदिर मंच के किनारे पर अंतराल मे तराशे गए हैं। उपपीठ की तीन मूलभूत दिशाओं में बने तीन छोटे विमान द्वितल शाला विमान हैं जबकि पीछे के कोनों पर बने दो विमान त्रितल कूट विमान हैं। ये पांचो, पीछे के कोनों पर दो छद्‌म द्वितल कूट विमान और सामने नंदी मंदिर सहित मुख्य विमान के चारों और आठ पूरक देवताओं के मंदिर या अष्ट परिवार को संपूर्ण बनाते हैं। ये अवधारणा दूरस्थ दक्षिण के संरचनात्मक मंदिरों में पहले ही विकसित हो चुकी थी। मुख्य विमान चार तलों वाला या चतुश्तल है। मंदिर सहित आदितल के ऊपर अधि रचना का निम्नतम तल अंतराल के ऊपर सामने प्रक्षिप्त है, जो शुकनासिका कहलाने वाले एक त्रिअंकी प्रक्षेप को आकार देता है। यह चालुक्य श्रृंखला के

दक्षिणी मंदिरो और साथ ही उनके उत्तरी प्रासादों का लक्षण है। यद्यपि तल वर्गाकार हैं। किंतु ग्रीवा और शिखर अष्टभुजाकार है, जिससे विमान के मिश्रित प्रकार के द्रविड वर्ग का होने की पुष्टि होती है। स्तूपी, जो अब अप्राप्त है, एकाश्मक का अंग नहीं थी। सबसे ऊपर के तल पर, जो हार रहित है, चार वृषभ रखे गए हैं, जो अवगत लांछन हैं। संरचना विविध प्रतिमा विज्ञान के उदाहरणों से भरपूर है। इसके पीछे पहाड़ी पर एक अपूर्ण शाला प्रकार के भवन, पल्लवों के भीम और गणेश रथों के सदृश और उसी प्रकार के एकाश्मक के अवशेष हैं।

एलोरा में गुफा संख्या 15 के सामने एकाश्मक नंदी मंडप, जिसमें राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग का एक अभिलेख है, शायद इस क्षेत्र का थोड़ा पहले का तराशा गया एकाश्मक है।

कैलास विमान का एक छोटा और काफी बाद का बना जैन एकाश्मक संस्करण छोटा कैलास के नाम से प्रसिद्ध है। यह एलोरा में राष्ट्रकूट काल में ही बना था। गुफा संख्या 33 के सामने के प्रांगण में एक अन्य चौमुख खड़ा है। यह त्रितल है और उसके तल वर्गाकार हैं। आदितल की चारों दिशाओं में ड्यौढ़ी जैसे प्रक्षिप्त प्रवेश हैं। शिल्पयुक्त प्रस्तर पट्ट मंदिर के फर्श के केंद्र में रखा हुआ है, जो चारों ओर से दरवाजों के बीच से दिखाई देता है। प्रक्षिप्त ड्योढ़ियों के ऊपर सामान्य की भांति हार की शालाओं के स्थान पर पंजर जैसी नासिकाएं हैं। कोनों पर सामान्य कर्णकूट हैं। शीर्ष तल पर कोई हार नहीं है, किंतु कोनों पर अवगत लांछन चार सिंह हैं। ग्रीवा और शिखर अष्टभुजाकार हैं, जो विमान को मिश्रित प्रकार के द्रविड़ वर्ग का बनाते हैं। छोटा कैलास कहलाने वाला एकाश्मक मंदिर परिसर इद्र सभा प्रांगण में एकाश्मक चौमुख विमान नहीं है। छोटा कैलास और आगे और अधिक ऊंचाई पर है। यह कैलास (शिव-मंदिर परिसर) की प्रतिकृति है, जिसमें एक द्वितल विमान है। शिखर अष्टभुजाकार है और शुकनासा आदितल के ऊपर वाले दूसरे तल पर स्थित ऊपरी मंदिर में है। ताल प्रस्तर के साथ कूटों और शालाओं का हार है और विमान के सामने के अक्षीय विस्तार में तीन प्रवेशों से युक्त मुख और महामंडप हैं। प्रवेशों पर शिल्पयुक्त एक द्वार मंडप है, जो खाई से घिरे आंगन में ले जाता है।

इस शृंखला में पल्लव और राष्ट्रकूटो की रचनाओं की तुलना में, धुर दक्षिण के समकालीन पांड्यों द्वारा तिरुनेलवेली जिले के कालुगुमलाई स्थित वेत्तुवांकोविल एकाश्म उत्कृष्ट हैं। यदि यह थोड़ा जल्दी नही, तो भी इसका निर्माण काल लगभग 800 ईसवी सन कहा जा सकता है। ऊपर से नीचे तक खड़ी चट्टान के विभक्त भागों या अलग खड़े हुए कठोर चट्टानी शैलों को अलग अलग काटने की पल्लवी तकनीक के विपरीत, पांड्यों ने, यद्यपि कठोर पाषाणों मे शैल वास्तुशिल्प की पल्लव परंपरा का अनुसरण किया, फिर भी, इस एकाश्म के निर्माण में एलोरा जैसी

राष्ट्रकूटों की खाई खोदने की तकनीक अपनाई। पहाड़ी की ढलान पर खाई से घिरे शैलपुंज में काटे गए द्वितल विमान और उसका अर्धमंडप, दोनों ही अपूर्ण हैं, किंतु परिष्कृत ऊपरी भाग कारीगरी और कला के उच्च स्तर का उद्‌घाटन करता है और उसमें कुछ उत्कृष्ट शिल्पकृतियां विद्यमान हैं। तल आयोजन पर वर्गाकार हैं और ग्रीवा और शिखर अष्टभुजाकार हैं। इसलिए यह द्रविड़ पद्धति में मिश्र प्रकार का एक उदाहरण है। ग्रीवा के आधार के चारों ओर शीर्षतल के कोनों पर स्थित चार नंदी मंदिर के निर्माण का समय और उसके शिवार्पित होने का संकेत देते हैं। निर्माणकाल का संकेत ग्रीवा शिखर के फलकों पर दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व नासिकाग्रों पर क्रमशः दक्षिणामूर्ति, विष्णु, ब्रह्मा और शिव की मूर्तियों से मिलता है, जो कि नवीं शताब्दी से एक अचल लक्षण ही बन गया।

संरचनात्मक पाषाण मंदिर–आरंभिक अवस्था

पल्लव पांड्य श्रृंखला

जबकि बादामी के चालुक्यों के साथ भले ही उनके काटे गए गुफा मंदिरों के अनुषंग में न सही–उसी कालावधि में कांची के पल्लवों के द्वारा भी पाषाण मंदिरों का निर्माण आरंभ हुआ, फिर भी यह कहा जा सकता है कि संरचनात्मक प्रचलन नरसिंहवर्मन द्वितीय राजसिंह (700-728) के समय से उनके काटे गए एकाश्मकों के बाद आरभ हुआ। अपने चालुक्य प्रतिस्पर्धियों के साथ तीक्ष्ण प्रतियोगिता में, जिसने वास्तुशिल्प में अनन्य उपलब्धियों की लालसा को निरंतर प्रेरित किया और चालुक्यों द्वारा सरल और लाभदायक रूप से उपयोग किए गए नरम बालुकाश्म (सैंडस्टोन) के विपरीत–ग्रेनाइट, नाइस और चार्नोकाइट जैसी बहुत कठोर प्राकृतिक चट्टानों के उत्खनन और उन्हें आकार देने की समस्या से ग्रस्त राजसिंह पल्लव ने तौंडेमंडलम के शैलों से प्राप्त अलग प्रकार के पाषाणों से प्रयोग किए। यही नहीं, 'शैल वास्तुशिल्प' का अभिप्राय ही हो गया कि उन्हीं स्थानों पर मंदिर निर्माण हो, जहां पहाड़ियां या शैल हों। ऐसे मंदिर अन्यत्र नहीं बनाए जा सकते थे, जैसे कि कांची की पल्लव राजधानी में विभिन्न प्रकार के पत्थरों के साथ उसके प्रयोग के उदाहरण तट मंदिर में प्रयुक्त श्यामवर्ण कठोर प्रकार के लेप्टिनाइट, मुकुंदनयनार मंदिर में प्रयुक्त कठोर, लालिमा युक्त नाइस और ओलक्कण्णेश्वर मंदिर में प्रयुक्त अपेक्षित रूप से थोड़े नरम स्लेटी सफेद ग्रेनाइट में देखे जा सकते हैं, जो सबके सब महाबलिपुरम में हैं। इसके अतिरिक्त पनमलै स्थित तालगिरीश्वर मंदिर में कठोर गुलाबी आभा वाले नाइस पाषाण का उपयोग किया गया। यह पाकर कि इन कठोर पत्थरों में निर्माण कठिन और अधिक समय खर्च करने वाला होता है, और अपने प्रतिस्पर्धियों को यदि पछाड़ने नहीं, तो भी तेजी और गति बढ़ाने के लिए राजसिंह ने अंततः नर्म पत्थरों वाली परंपरा को अपनाया और उसे अपने राजधानी नगर में मंदिरों के लिए मामूली स्तर का खुरदुरा, भुरभुरा, स्थानीय बालुकाश्म पत्थरों का उपयोग करना पड़ा। फिर भी ऐसे बालुकाश्म निर्माणों में कठोर पत्थर का उपयोग,

जिसकी परंपरा उसके पूर्वजों ने आरंभ की थी, पूरी तरह छोड़ा नही गया। उसका उपयोग अधिष्ठान के उपान और पट्टिका के रूप मे किया गया। कांची में कैलासनाथ का विशाल मंदिर और वहीं पर अन्य मंदिर भी इसी प्रकार के हैं। फिर भी इस संबंध में पल्लव चालुक्यों से कितने भी पिछड़ गए हों, किंतु उनके एकाश्मक या काटकर बनाए गए रथों के अंतराल ने उन्हे निश्चित रूप से लाभ पहुंचाया क्योंकि उससे उन्हें रूप विधान, अनुपात और अभिकल्पन के बेहतर विचार मिले जिनसे उन्हें अपने संरचनात्मक भवनों को चालुक्यों के संरचनात्मक निर्माणों से अधिक भव्य, अधिक सुव्यवस्थित और अधिक आयामी बनाने में सहायता मिली।

महाबलीपुरम स्थित तट मंदिर सहायक मडपों, प्रकार और गोपुरों सहित तीन मंदिरों का एक परिसर है। इन तीन में सबसे बड़े विमान का मुंह पूर्व में समुद्र की ओर है और वह क्षत्रिय सिंहेश्वर कहलाता है। और उसके पीछे पश्चिम में स्थित गांव की ओर मुंह वाला छोटा विमान राजसिंहेश्वर कहलाता है। ये दोनों शिव को समर्पित हैं और उन दोनों के बीच एक आयताकार मंडप मदिर है जिस पर कोई अधिरचना नहीं हे। यह नरपतिसिंह पल्लव विष्णुगृह कहलाता है। यह एक निचले शैलांश पर तराशे गए पहले से विद्यमान शयनमुद्रा में विष्णु प्रतिमा के ऊपर बनाया गया है। संरचना पर लिखे ये सब नाम, परिसर के निर्माता राजसिंह की उपाधियां हैं। छोटे विमान के सामने अक्षीय मंडपों और गोपुरों का निर्माण किया गया है। जिसे एक सम्मिलित प्रकार से घेर दिया गया है। बडे पूर्वी विमान का अपना एक अतिरिक्त प्राकार है, जो पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा को घेरता है किंतु पश्चिम में खुला है। छोटा विमान तिमजिला है, आयोजना पर पूर्ण वर्गाकार, किंतु ग्रीवा और शिखर अष्टभुज और शीर्प पर स्तूपी है। जबकि आदितल शीर्ष पर हार तत्व से वंचित है, उसमें शीर्पस्थ तल के समान कोनों पर शंख फूंकते, बैठे हुए चार भूत हैं। हार तत्व द्वितीय तल पर चारों दिशाओं में और आदितल के सामने अर्धमंडप के ऊपर भी विद्यमान है। बाद के शिव मंदिरों में भूत आकृतियों ने स्थायी रूप से नंदी का स्थान ले लिया है। तल आनुपातिक रूप से ऊंचे हैं, शीर्षस्थ तल नीचे के तल के हार तत्वों से स्पप्टरूपेण ऊपर उठता है। अष्टभुज ग्रीवा और शिखर पर स्तूपी पालिश किए गए काले पत्थर से बनी है। दीवारों पर भित्तिस्तंभों के आधार में सिंहों के पृष्ठ भाग बने हैं, जो कि राजसिंह मदिरों की विशेषता है। चौमंजिला पूर्वी विमान भी ग्रीवा तक वर्गाकार है। ग्रीवा, शिखर और काले पाषाण की बनी स्तूपी अष्टभुजाकार है। कूटों और शालाओं के हार केवल दूसरे और तीसरे तलो और आदितल के सामने स्थित अर्ध मंडप के ऊपर हैं, जबकि आदितल में चारो कोनों पर *उकडूं बैठे हुए सिहों की आकृतियां है। शीर्पस्थ तल पर शंख फूंकते

* घुटने मोड़कर

और उकड़ूं बैठे चार भूत हैं, जो शिव मंदिर के प्रतीक हैं, जैसा कि छोटे विमान के मामले में भी है। एकदम निकट प्राकार, जो इसी विमान की विशेषता है, आदितल की अपेक्षा कम ऊंचाई का है। इसके कोनों पर कर्णकूट और पार्श्वों की दीवारों पर शालाएं हैं। पीछे पश्चिम की ओर अंतराल को आंशिक रूप से विष्णु मंडप के शीर्ष पर उसी ऊंचाई पर हार से पाट दिया गया है। इस प्रकार की पूर्वी भुजा में समुद्र की ओर वाले प्रवेश पर केंद्रीय शाला को शेष की अपेक्षा बड़ा बनाया गया है ताकि वह द्वारशाला या छोटे गोपुर के अनुरूप दिखाई दे। आनुपातिक रूप से ऊंचे तल और निम्नतम तथा उच्चतम तलों पर से हार तत्व का विलोपन इस पतली संरचना को लालित्य और मोहकता प्रदान करते हैं, जबकि आदितल को घेरने वाला कम ऊंचाई का निकटस्थ प्राकार और उसके वितान पर हार घटक बाह्य रूप से एक अतिरिक्त तल का आभास देते है। यह स्पष्ट रूप से कुल ऊंचाई के उचित अनुपात में इस आधार क्षेत्र का विस्तार करता है। दोनो विमानों के मंदिरों में पीछे की दीवारों पर नक्काशीदार सोमस्कंद फलक हैं। इसके अतिरिक्त गर्भगृह के फर्श के मध्य में षोड्पभुजी, खड़ा, पालिश किया हुआ बसाल्ट पत्थर का लिंग बिना पीठिका के स्थित है। यद्यपि इस मंदिर परिसर की दीवारो पर से मूर्तिशिल्प नमी और समुद्र से आनेवाली लवणयुक्त हवा से काफी मिट गया है, फिर भी वास्तुशिल्पीय आयाम और सज्जा और समुद्र पर प्राकृतिक दृश्यबंध इस भवन को भारत का एक उत्कृष्ट स्मारक बनाते हैं। सामान्य पश्च सिह आधारित भित्तिस्तंभो के अतिरिक्त बड़े विमान की अपनी दीवारों और प्राकार की दीवारों पर अन्य प्रकार की आकृतियां, यथा–हाथी, मेष, नाग, नागदेव और भूत की आकृतियां उनके आधार के लिए उपयोग में लाई गई हैं।

प्रकाशस्तंभ पहाड़ी के ऊपर स्थित ओलक्कण्णेश्वर मंदिर अपने मूल अधिरचना तलों से विहीन है और उसके आदितल और अर्धमडप की केवल बाह्य रूपरेखा (सन् 1900 में वर्तमान मंदिर के निर्माण के पूर्व उसका रूपांतरण और उपयोग एक प्रकाशस्तंभ के रूप में किए जाने के कारण) बची हुई है जिस पर बाहरी दीवार के मूर्तिशिल्प, ताक और भित्तिस्तंभ बचे हुए हैं। इसकी सर्वाधिक रोचक विशेषता दक्षिण पार्श्व पर केंद्रीय ताक में दक्षिणामूर्ति प्रतिमा की प्राप्ति है, जिससे बाद में अनुकरण की गई दक्षिणी विमानों की इस सामान्य विशेषता का आरंभ हुआ। एक महत्वपूर्ण विशेषता जो ओलक्ण्णेश्वर मंदिर के निर्माण का श्रेय राजसिंह पल्लव को देती है, वह है व्याल आधारित भित्तिस्तंभ जो मंदिर और अर्धमडप के बाहरी कोनों पर लगे हुए हैं।

पनमलै शैल (दक्षिण अरकाट जिला) पर उसी लाल गुलाबी कठोर ग्रेनाइट से बने तालगिरीश्वर मंदिर की आयोजना रोचक है। यह आधार और तलों पर निरपवाद रूप से वर्गाकार है, परंतु इसके पूर्वाभिमुखी आदितल पर छोटे आयताकार

मंदिर हैं जिसके दक्षिण, पश्चिम और उत्तरी पार्श्वों पर मध्य में अधिष्ठान के समनुरूप भू-स्तरीय विस्तार के ऊपर कक्ष बने हुए हैं। पूर्व में समनुरूप सलग्नक, जिसके भीतर से रास्ता है, मुख्य मंदिर में जाने के लिए अंतराल प्रवेश का निर्माण करता है। दो पूर्वाभिमुख पार्श्ववर्ती वेदिकाएं और साथ ही पश्चिमाभिमुखी दो पश्च वेदिकाएं भी, मुख्य मंदिर के समान शिवार्पित हैं। मुख्य मंदिर में उसकी पिछली दीवार पर विशेष रूप से एक ऊंचे बने हुए ताक के भीतर सोमस्कंद का नक्काशीदार फलक है, जो खड़े गोल प्रस्तर पट्ट लिंग के ऊपर से दिखाई देता है। यह लिंग मंदिर के फर्श पर बिना पीठ के स्थापित किया गया है, जबकि अन्य राजसिंह मंदिरों में पिछली दीवार के मध्य में लगे सोमस्कंद फलक लिंग के पीछे छिप जाते हैं। विमान चार मंजिला है और दो मंजिले आयताकार पार्श्व मंदिरों की शाला अधिरचनाएं इतनी दक्षता से बनाई गई हैं कि वे आदितल के कर्णकूटों के हार और अन्य तत्वों में विलयित हो जाती हैं। शीर्षस्थ मंजिल के अतिरिक्त अन्य मंजिलों पर फिर से हार पाया गया है। ग्रीवा और शिखर, जिसका ईट और गारे से आधुनिक पुनरुद्धार किया जा चुका है, मूल आयोजना के अनुसार अष्टभुजाकार हैं। आदितल की दीवारों के कोने और संलग्न वेदिकाएं स्पष्ट उत्तिष्ठ व्याल भित्तिस्तंभों से सज्जित हैं, जो राजसिंह मंदिरों की विशेषता है। शीर्षतल पर कोनों में मूल आकार अवस्थित हैं। अन्यथा मुकुंदनयनार मंदिर के समान दीवारों पर शिल्प का अभाव है, जिसका स्पष्ट कारण निर्माण के लिए उपयोग की गई कठोर सामग्री है। अंतराल की भीतरी दीवारों पर केवल द्वारपाल, ब्रह्मा और विष्णु की शिल्पाकृतियां हैं, जिससे मूल त्रिमूर्ति धारणा का संपोषण होता है किंतु ब्रह्मा और विष्णु के महत्व को कम कर दिया गया है। उत्तर में बाहरी मंदिर में एक पल्लव भित्ति चित्र के अवशेष हैं जिसमें शिव और पार्वती को नृत्यरत दिखाया गया है।

महाबलिपुरम में मुकुंदनयनार मंदिर भी रक्ताभ ग्रेनाइट से बना है और वह अधिक सादा और कठोर है, जिसमें द्वितल विमान है। यह नीचे वर्गाकार है किंतु ग्रीवा और शिखर अष्टभुज हैं, जिससे यह द्रविड़ श्रेणी का है। इसमें विमान और सामने की ओर मंडप है। शिखर और स्तूपी के ऊपर वाले भाग नष्ट हो गए हैं। दीवारें अनलंकृत, भित्तिस्तंभ सादे, अनगढ़ आकार और व्याल आधार से रहित हैं। इसमें मंदिर के पीछे की दीवार पर मुख्य देवता के रूप में सोमस्कंद की उकेरी हुई प्रतिमा है।

कांची में कैलासनाथ परिसर राजसिंह और उसके पुत्र महेंद्र तृतीय का संयुक्त प्रयास है। मुख्य विमान राजसिंहेश्वर (अब कैलासनाथ कहलाता है) पूर्वाभिमुखी और चार मंजिला है, और ग्रीवा तक निरपवाद रूप से वर्गाकार संरचना है, किंतु ग्रीवा और शिखर अष्टभुजाकार हैं। आदितल दुहरी दीवारों से युक्त है और इसका

ढला हुआ आधार चारों दिशाओं और चारों कोनों पर स्पष्ट रूप से भू-स्तरी है—क्योंकि पार्श्वों और कोनों पर छोटे छोटे मंदिर हैं जिनमें गर्भगृह भी हैं। ये मंदिर आदितल की बाहरी दीवार से सटे हुए और उसी में समाविष्ट हैं। यह पनमलै मंदिर में पाए गए वैशिष्ट्य का विस्तार है। जबकि चारों कोनों पर अधिष्ठान की प्रशाखाएं वर्गाकार हैं और वहां चतुर्भुज कूट शिखरों सहित वर्गाकार आयोजना के द्वितल विमान अवस्थित हैं; चारों दिशाओं में स्थित छोटे द्वितल विमान आयताकार आयोजना युक्त हैं और दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में शाला शिखरों से युक्त हैं। पूर्व में स्थित समनुरूप निर्माण भी आयताकार है, जिसकी शाला अधिरचना में गर्भगृह के स्थान पर रास्ता है और जो मुख्य मंदिर में जाने के लिए एक अंतराल पथ के रूप में उपयोग में आता है। संलग्न मंदिरों के कूट और शाला शिखर आदितल की बाहरी दीवार के प्रस्तर के ऊपर हार योजना में बड़ी चतुराई से समाविष्ट किए गए हैं जैसा कि पनमलै में है। इन संलग्न विमानों के भूतल पर बने गर्भगृहों में शिव के रूप स्थापित हैं। मुख्य मंदिर के समान दक्षिण-पूर्व, दक्षिण, उत्तर और उत्तर-पूर्व के ये संलग्न विमान पूर्वाभिमुखी हैं, जबकि दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम और उत्तर-पश्चिम के विमान पश्चिमाभिमुखी हैं। मुख्य मंदिर में एक खड़ा सोलह फलकों वाला, पालिश किए गए बसाल्ट पत्थर का लिंग है, जिसकी विशाल वृत्ताकार लिंगपीठ मंदिर के लगभग पूरे फर्श को घेरती है। पिछली दीवार पर एक विशेष ताक में, एक सामान्य सोमस्कंद फलक उकेरा गया है, जिसमें शिव और उमा बैठे हुए हैं, नन्हा स्कंद उमा की गोद में है और पीछे दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु खड़े हैं। गर्भगृह की भीतरी दीवार अनलंकृत और वर्गाकार है, जबकि संलग्न विमानों के बीच से दिखाई पड़ती बाहरी दीवार पर और संलग्न संरचनाओं की दीवारों पर भी देवी देवताओं की आकृतियां सघन रूप से उकेरी हुई हैं। दोनों दीवारों के बीच आंतरिक रूप से संकीर्ण, आच्छादित प्रदक्षिणा पथ है। आदितल की दो मोटी दीवारों पर पुल जैसी आरपार रखी गई पट्टियों पर अधिरचनात्मक तल बनाए गए हैं। दुहरी दीवारें और पार्श्वों और कोनों पर छोटे विमानों द्वारा अतिरिक्त पुष्टि स्पष्ट ही इस विमान की अधिरचना को उचित टेक देने के लिए हैं, जो इस काल का सबसे बड़ा विमान है, और साथ ही वह ऊंचाई के अनुपात में एक सुंदर आधार प्रदान करता है और पूरे भवन को संतुलित अनुपात देता है। आदितल प्रस्तर के ऊपर हार तत्वों में पिंजरों का अभाव है, जो कर्णकूट और संलग्न मंदिरों के पार्श्विक शाला शिखरों के अतिरिक्त आदितल की बाहरी दीवार के अंतर्वर्ती भागों के ऊपर शालाएं स्थित हैं, किंतु द्वितल के हार पर कूटों, शालाओं और पंजरों के सारे संपूरक हैं। तीसरी मंजिल के ऊपर फिर से कूटों और शालाओं का एक हार है, और चौथी मंजिल के शीर्ष पर कोनों पर चार नंदी अवस्थित हैं। आदितल दीवार में संलग्न मंदिरों की दीवारों में भित्तिस्तंभो के उत्तिष्ठ व्याल आधार हैं, जो राजसिंह

मंदिरों की विशेपता है। सामने एक अलग-थलग अनेक स्तंभोंवाला एक आयताकार मंडप है, जो अपने उत्तर-दक्षिण अक्ष पर लंबा और उसके भित्तिस्तंभ व्याल आधार पर स्थित हैं, जबकि शेष अनलंकृत प्रकार के और आधारीय और अग्रस्थ वर्गाकार खंडों और मध्यवर्ती अष्टभुज क्षेत्रों से युक्त हैं। संपूर्ण परिसर प्राकार से घिरा हुआ, जिसमें उसकी पूर्व दिशा के बीच में एक अंतराल है और यह प्राकार एक खुले प्रांगण को भी घेरता है। पूर्व में खुले बड़े भाग में एक सामान्य आकार का एक आयताकार, द्वितल, शाला प्रकार का विमान है जिसके साथ एक अर्धमंडप बना हुआ है। दूर से देखने पर यह विमान स्वयं गोपुर के समान दिखाई देता है। इसके दोनो तल हार रहित हैं। यह विमान राजसिंह के पुत्र के नाम पर महेंद्रवर्मेश्वर कहलाता है। इसके मंदिर में सामान्य लंबे आकार का लिंग और सोमस्कंद फलक है। इसके अतिरिक्त अर्धमंडप की भीतरी दीवार पर ब्रह्मा और विष्णु की शिल्पाकृतियां और उसकी बाहरी दीवार और देव कोष्ठों में अन्य शिल्पाकृतियां हैं। भित्तिस्तंभ उत्तिष्ठ व्याल आधारित हैं। पश्चिम दिशा में प्राकार के मध्य में एक और प्रवेश है, जो शाला अधिरचना सहित एक वास्तविक गोपुर है; यह आकार में छोटा है। प्राकार की दीवार के भीतरी पटल पर अट्ठावन छोटे छोटे द्वितल विमानों का एक समूह है जिनमें से केवल दो वर्गाकार और कूट प्रकार के हैं। दो विमानों को छोड़ शेष सभी शिवार्पित हैं। वे दोनों विमान आयताकार हैं और मुख्य राजसिंहेश्वर मंदिर के उत्तर और दक्षिण में स्थित हैं और उनमें विष्णु और ब्रह्मा के समूहों की शिल्पाकृतियां क्रमशः दक्षिणमुखी और उत्तरमुखी बनी हुई हैं। किंतु परिवार मंदिरों की मालिका के कूट विमानों में से जो पूर्व में स्थित हैं, वे पश्चिममुखी हैं और पश्चिम में स्थित विमान पूर्वमुखी हैं, जबकि उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं में स्थित विमान पूर्वमुखी हैं। इनमें से अधिकतर गर्भगृहों में अनलंकृत दीवारों पर पुराने चित्रों या शिल्पाकृति के ऊपर चित्रित गचकारी के अवशेष है। मालिका के इन परिवार मंदिरों की बाहरी दीवारों पर विभिन्न प्रतिमा विज्ञान की विविध शिल्पाकृतियां, शैव और वैष्णव दोनों हैं, जिससे यह मंदिर परिसर प्रतिमा विज्ञान और रूपंकर कला का एक वास्तविक संग्रहालय बन जाता है। इन शिल्पाकृतियों में दिक्पाल और गणेश, जो पल्लव मंदिरों में यहां पहली बार उकेरे गए, और साथ ही सप्तमातृका समूह, चंडेश और अन्य परिवार के देवता सम्मिलित हैं। महेंद्रवर्मेश्वर में एक छोटा बाड़ा है, जिसमें सामने एक छोटा गोपुर या द्वारशाला और सामने के दो कोनो के निकट दो अतिरिक्त पार्श्विक प्रवेश हैं। भीतर मध्य में उत्तर और दक्षिण में दो पार्श्विक आयताकार मंदिर हैं। पूरे परिसर के सामने अष्टभुजाकार ग्रीवा और शिखर सहित आठ छोटे द्वितल वर्गाकार कूट विमानों की एक शृंखला खड़ी है। जो सभी स्मारक मंदिर हैं, और महेंद्रवर्मेश्वर तथा भीतरी मालिका के परिवार मंदिरों के समान अपने तलों के ऊपर हार घटकों से विहीन हैं। उन सभी

में उनकी पिछली दीवारों पर सोमस्कंद फलक और उनकी बाहरी दीवारों पर विविध शिल्पाकृतियां हैं।

कांचीपुरम में कैलासनाथ परिसर के राजसिंहेश्वर के आसपास विभिन्न मठ मंदिरों में पाए गए भित्ति चित्रों के समस्त अवशेष मुख्य मदिर और पल्लव के समकालीन नहीं हो सकते। जबकि कुछ चित्र निस्संदेह रूप से पल्लव है, जो बालुकाश्म की खुरदरी सतह पर किए गए पलस्तर पर चित्रित किए गए थे और जो उस आरंभिक काल में भी पथरीली सतह को चिकना बनाने और सुरक्षा के लिए उचित और आवश्यक (जैसा कि अजंता में) पाया गया था, फिर भी अनुवर्ती काल में पलस्तर और चित्रों के नवीनकरण के निस्संदिग्ध साक्ष्य विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए, मालिका के उत्तर-पूर्वी कोने पर एक गर्भगृह में इस लेखक द्वारा पाया गया वर्तमान पलस्तर नीचे के पत्थर पर, स्वयं राजसिंह के एक शिलालेख को आच्छादित किए हुए है। केवल इसी से यह संकेत मिलता है कि स्वयं संस्थापक या उसके तुरत बाद के समय में ही पलस्तर का अनुबोध हुआ होगा। क्योंकि, यदि पलस्तर किया ही जाना है तो कोई शिलालेख खुदवाया नहीं जाएगा। इसी तरह इस लेखक ने दक्षिणी पंक्ति पर एक अन्य गर्भगृह में, एक चित्रित प्लस्तर के टूटे हुए हिस्सों के नीचे 'कुलोतुंग प्रथम' (राज्यारोहण 1070 ई.) के एक परवर्ती चोल शिलालेख के अंश पाए, जो बतलाते हैं कि उस समय पत्थर की सतह खुली थी और यह भी कि पलस्तर बाद में लगाया गया है। इसलिए उसके ऊपर का चित्रांकन उपरोक्त समय के बाद का ही हो सकता है। अन्य साक्ष्यों से यह पता चलता है कि मंदिर पल्लव और आरंभिक चोलकाल में उपयोग में आता रहा किंतु परवर्ती चोलों के समय (कुलोत्तुंग प्रथम के बाद) उपयोग में नहीं रहा। यह स्थिति विजयनगर राजवश के उदय तक रही। शिलालेखों से पता चलता है कि राजकुमार कंपन ने मुस्लिम आक्रमणों से पहुंचे नुकसान की मरम्मत करवाई और मंदिर में फिर से पूजा आरंभ करवाई। इससे विजयनगर काल के भी चित्रांकनों के खंडित अंशों का स्पष्टीकरण मिल जाता है। इसके बाद मंदिर को फिर से बुरे दिनों का सामना तब तक करना पडा जब तक कि वह सरक्षित स्मारक नहीं बन गया और फिर से उपयोग में नही आने लगा। इस तरह पनमलै मंदिर के चित्रित खंड, जिनका पहले उल्लेख किया गया है, आरभिक पल्लव चित्रांकन हैं जो वर्तमान में अभी तक पाए गए हैं।

कांची में नंदीवर्मन पल्लवमल्ल (731-796 ई.) द्वारा बनवाया गया विष्णु को समर्पित बैकुंठ पेरुमल मदिर विशाल आकार-प्रकार की एक अन्य पल्लव संरचना है। यह पश्चिमाभिमुखी है और बालुकाश्म से बना है जिसमें अधिष्ठान के शीर्षस्थ निम्नस्थ तलों मे ग्रेनाइट का सम्मिश्रण है। इसमें एक चार मंजिला मुख्य विमान है, जिसमें शीर्षस्थ तल को छोड़कर सभी तलों पर अधिस्थापित गर्भगृह हैं, जो विष्णु

के तीन मुद्रा रूपों यथास्थान (खड़े हुए), आसन (बैठे हुए) और शयन (लेटे हुए) के लिए हैं। इस तरह यह इस प्रकार के अनेक विष्णु मंदिरों का, जो बाद में वर्तमान काल तक बने, अग्रवर्ती है। इस प्रकार के कुछ मंदिर हैं—उत्तिरामेरूर में सुंदरवरदपेरुमल मंदिर, मदुरै में चित्रकूट, और मन्नार कोविल में विष्णु मंदिर। संधारा विधि के बीच में चलने के रास्ते सहित एक दूसरे के भीतर तीन संकेंद्रित वर्गाकार बनानेवाली तीन संकेंद्रित दीवारों की पद्धति से तीन मंजिलें बनाई गई हैं। वे एक निर्मित अधिष्ठान के ऊपर स्थापित हैं। सबसे भीतर की दीवार तीन मंजिलों की ऊंचाई तक ऊपर उठती है, जो कक्ष के तीनों स्तरों को घेरती है। बीच की दीवार दूसरी मंजिल की छत के स्तर तक जाती है और बाहरी दीवार पहली मंजिल की छत तक रुक जाती है। आदितल का मंदिर इस प्रकार ढंके हुए दो प्रदक्षिणा पंथों से घिरा हुआ है जिसमें से बाहरी पथ प्रदक्षिणा के काम में आता है, जबकि भीतर वाले पथ से दूसरे तल पर जाया जा सकता है। उत्तर-दक्षिण में चढ़ने और उतरने के लिए सीढ़ियों के जीने बने हुए हैं, जिनसे दूसरे तल पर आया जाया जा सकता है। ये सीढ़ियां वाहर की पश्चिमी दीवार के बीच में जाकर समाप्त होती हैं। दूसरे तल पर चलने के लिए बना बाहरी पथ कूटों के हारों, शालाओं और पंजरों से बनी बाहरी दीवार के शीर्ष पर बनी मुंडेरों से घिरा हुआ है। भीतरी परिक्रमा नीचे से आनेवाली सीढ़ियो के दोनों जीनों के शीर्ष पर स्थित है। यह हार आदितल के सम्मुख स्तंभों पर बने अर्धमंडप के शीर्ष के ऊपर तक विस्तृत है। बीच की दीवार दूसरे तल के ऊपर तक जाती है और प्रदक्षिणा पथ को घेरते हुए ढंकती है, जिसके सिरे पर उसी प्रकार का हार बना हुआ है, जो तीसरे तल के गर्भगृह के आसपास के खुले प्रदक्षिणा पथ के लिए किनारे पर मुंडेर का काम करता है। इसी प्रकार सबसे भीतरवाली दीवार, जो तीसरे तल के गर्भगृह के ऊपर तक पहुंचती है, उस पर भी कूटों और शालाओं का हार बना हुआ है। प्रत्येक तल के कूट, शाला और पंजर दीवारों के स्पष्ट खंडों और अंतरालों को मंडित करते हैं। चौथा तल, जो एक छोटा तल है, चारों ओर से बंद है तथा अष्टभुज ग्रीवा और शिखर का वहन करता है, जिसके शीर्ष पर धातु का स्तूपी है। इसके चारों कोनों पर मूल रूप से चार सिंह थे, जिनके स्थान पर गचकारी से बने गरुड़ रख दिए गए हैं। आदितल की बाहरी दीवार के बीच के खंडों में छोटे छोटे द्वार हैं, जबकि पार्श्विक दीवार में शिल्पकृतियों से युक्त देवकोष्ठ हैं और बीच के अंतरालों में छिद्रित खिड़कियां हैं। ऊपरी तल की बाहरी दीवार के खंडों और अंतरालों में भी वैसी ही शिल्प है—सारा वैष्णवी। सबसे नीचे का तल और उसके सामने का अर्धमंडप, अधिष्ठान के आधार के स्तर पर एक संकीर्ण खुले परिक्रमा पथ से घिरा हुआ है। यह समस्त स्तंभों पर टिकी छत से ढंके एक रास्ते से चारों तरफ से घिरा हुआ है जो ऊंचे उठे हुए मंच पर बना है, जिसमें केंद्रीय भवन की ओर मुह किए हुए

व्यालों के आधार वाले स्तंभ हैं और बाहरी किनारे पर एक दीवार है, जिस पर आदितल की ऊंचाई से कुछ कम ऊंचाई तक कूट और शालाओं की माला बनी हुई है। यह व्यवस्था बाहर से देखने पर पंचतल का आभास देती है जैसा कि पहले वर्णित किए जा चुके तट मंदिर के मामले में भी है। विमान और अर्धमंडप पर बनी अनेक दैवी शिल्पाकृतियों और समकालीन अभिलेखों के अतिरिक्त इस मंदिर की सर्वाधिक रोचक बात यह है कि इसमें फलक शिल्पों की एक शृंखला है, जिसमें पल्लवों के अनुश्रुत पूर्वजों से लेकर, मंदिर के निर्माता नंदीवर्मन द्वितीय पल्लवमल्ल के समय तक पल्लव इतिहास का वर्णन है। यह एक ऐसी विशिष्टता है जो शायद ही कहीं और मिले।

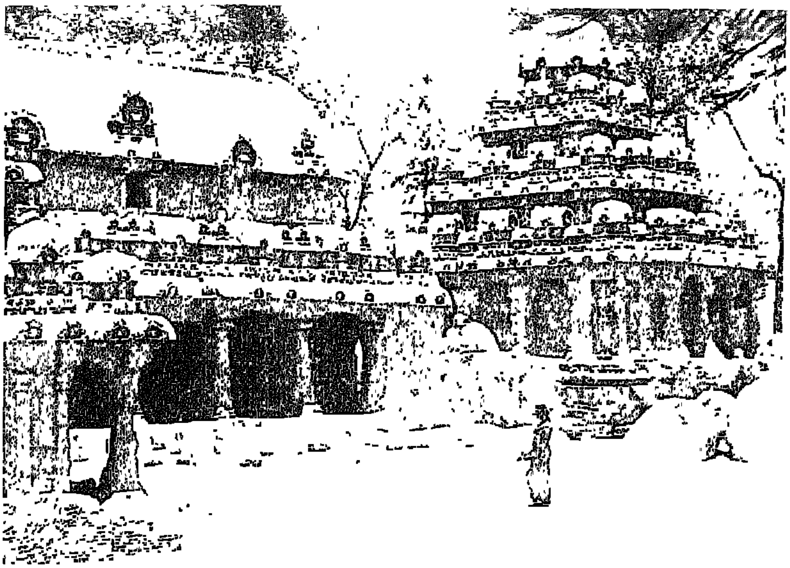
कांची में पाए गए इसी काल के अन्य मंदिर, यद्यपि आकार में छोटे हैं, फिर भी उनके वास्तुशिल्प और प्रतिमा विज्ञान के कारण रोचक हैं। वे हैं, मुक्तेश्वर, मतंगेश्वर, ऐरावतेश्वर, वालिश्वर, इरावतनेश्वर और पिरावतनेश्वर मंदिर, जो मुख्य रूप से वालुकाश्म पत्थरों से बने हैं किंतु उनके अधिष्ठान के आधार और शीर्ष पर ग्रेनाइट की पट्टियां लगी हैं। जहां भवन की महत्ता बढ़ाने का उद्देश्य था, वहां भी नीचे के मंच—उपपीठ में भी ग्रेनाइट लगाया गया है। वे सब के सब वर्गाकार विमान के विविध प्रकार हैं, जिनमें तलों की संख्या विभिन्न है और ऊपरी तल अकार्यशील तथा नीचे के तल के प्रस्तर हार से सज्जित और ग्रीवा शिखर भाग की योजना अलग अलग है। इरावतनेश्वर और त्रिपुरंतकेश्वर द्वितल हैं, ग्रीवा और शिखर सहित पूरे के पूरे वर्गाकार और इसलिए नागर श्रेणी के हैं। मतंगेश्वर और मुक्तेश्वर मंदिर, जो त्रितल हैं, इसी प्रकार वर्गाकार तलों से युक्त हैं, किंतु उनकी ग्रीवा और शिखर वृत्ताकार हैं और इसलिए वेसर वर्ग के हैं। पिरवतनेश्वर और वालिश्वर क्रमशः दो और तीन मंजिल के हैं, उनके तल वर्गाकार हैं, किंतु ग्रीवा और शिखर अष्टभुजाकार होने के कारण वे द्राविड़ श्रेणी के हैं। ऐरावतेश्वर की अधिरचना नष्ट हो चुकी है। तिरुपत्तुर (जिला तिरुचिरापल्ली) का कैलासनाथ वालुकाश्म पाषाण से बना बड़ा मंदिर है और बहुत कुछ कांची के कैलासनाथ के समान है। यह आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का बना हुआ है और यह पल्लव विमान के प्रादेशिक प्रकार का उदाहरण है।

परंतु इसके बाद जल्दी ही नंदीवर्मन द्वितीय पल्लव के लंबे राज्यकाल के मध्य में, आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मंदिर पूरे के पूरे ग्रेनाइट पत्थरों के खंडों को काट, तराश और शिल्पित करके बनने लगे, जैसा कि कुछ छोटे मंदिरों और उसके उत्तराधिकारी दंतिवर्मन के काल में बने उत्तिरामेरुर (चिंगलपेट जिला) के ईंटों से बने वैकुंठपेरुमल और सुंदरवरदपेरुमल के बड़े मंदिरों के ग्रेनाइट से निर्मित अधिष्ठानों में देखा जा सकता है। वैकुंठपेरुमल मंदिर में ताकों में गचकारी से बनी आकृतियां है, जबकि सुंदरवरदपेरुमल मंदिर में पाषाण पट्टिकाओं के उभार हैं।

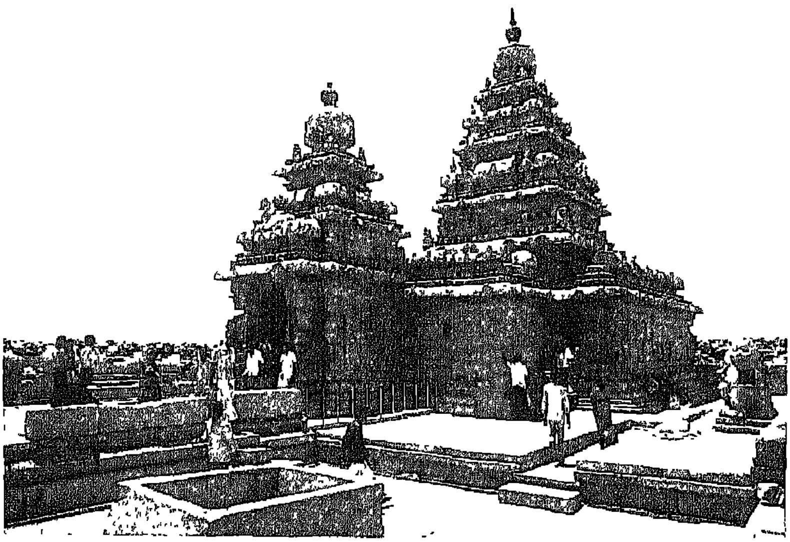
सुंदरवरदपेरुमल मंदिर के पाषाण अधिष्ठान पर ईटों से बना वर्तमान त्रितल भवन इस अर्थ में विशिष्ट है कि उसके तीनों तल क्रियाशील हैं जिनमें विष्णु के खड़े हुए, बैठे हुए और लेटे हुए तीनों रूप गर्भगृहों में स्थापित हैं। इसके दो निचले तलों की तीन–दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में इससे सटे हुए छोटे मंदिरों में विष्णु के छह अन्य प्रमुख रूप–सत्य, अच्युत, अनिरुद्ध, नरनारायण, नृसिंह और वराह स्थापित हैं। इस तरह इसमें वैखानस आगम के अनुरूप नौ रूप या नवमूर्ति सम्मिलित हैं। ये दोनों मदिर और तिरूवदिगै (दक्षिण अर्काट जिला) स्थित विशाल और सुंदर नवीनीकृत ईंटों से बना मदिर जो एक पाषाण अधिष्ठान पर बना है, इस तथ्य की पुष्टि करता है कि पत्थर का प्रयोग आरंभ हो जाने के बाद भी न केवल ईट और लकड़ी का उपयोग चलता रहा, बल्कि बड़े निर्माणों में उनके उपयोग के कौशल को प्रोत्साहन देकर बनाए रखा गया।

तिरूत्तनी (चेंगलपुट जिला) स्थित विरत्तनेश्वर मंदिर ऐसे वर्गाकार अधिष्ठान और आदितल वाले एक मंजिला विमान का बहुत अच्छा उदाहरण है जिस पर अर्धवृत्ताकार ग्रीवा शिखर अधिरचना बनी हो। यह नवीं शताब्दी में पल्लव राजवंश के अंतिम शासकों में से एक अपराजितवर्मन के समय में कठोर काले पत्थर से बनाया गया था। इसकी दीवारों की ताकों में कुछ अच्छी नक्काशियां हैं, जो विमान और अर्धमंडप में देवताओं के निश्चित ध्रुवीकरण का उदाहरण देती हैं, जैसे अर्धमंडप की दक्षिणी और उत्तरी बाहरी दीवारों के ताकों में क्रमशः गणेश और दुर्गा तथा आदितल की बाहरी दीवारों के दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी ताकों में क्रमशः दक्षिणामूर्ति, विष्णु और ब्रह्मा। अभिषेक के पानी के निकास के लिए प्रनाल का निर्माण, जो अभी तक पूर्ववर्ती मंदिरों में नहीं पाया गया था, एक अन्य ध्यान देने योग्य विशिष्टता है। प्रनाल बाद में बनने वाले सभी मदिरों में एक अपरिवर्तनीय अंग बन गया।

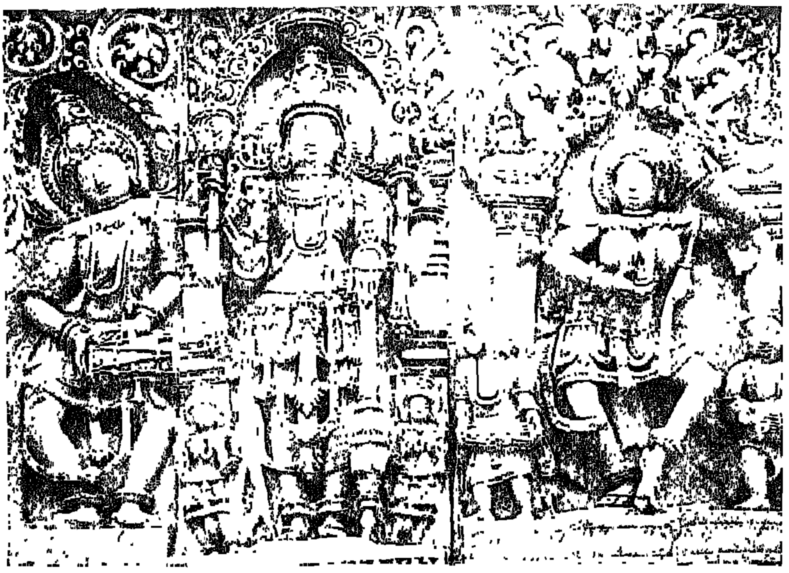
यद्यपि छोटे, किंतु पूर्ण रूप से कठोर पत्थरों से विमान बनाने और उसे पूर्णता प्रदान करने का श्रेय दक्षिण के समकालीन पांड्यों को जाता है, जिन्होंने अपने चट्टानो में तराशे गए मंदिरों और कालुगुमलाई (800 ई.) स्थित एकमात्र तराशे गए एकाश्मक विमान–वेत्तुवनकोविल के बाद दक्षिणी जिलों में छोटे करांली या संपूर्णतया पाषाण मंदिरों की एक शृंखला का निर्माण किया। दक्षिणी मैसूर में तालकड के समकालीन पश्चिमी गंगों और पल्लव तथा पांड्य साम्राज्यों के बीच की विभाजक रेखा कावेरी के दोनों तटों पर स्थित मुत्तरैयार, इरूक्कुवेल और अन्य सामंतों ने, जो चोलों के पूर्ववर्ती थे, इसी प्रकार 1000 ई. से पूर्व ग्रेनाइट के अनेक सुंदर मंदिरों का निर्माण किया। उस समय तक चोल सुप्तावस्था में थे और नवीं शताब्दी के उत्तरकाल में ही साम्राज्यशक्ति बने और तंजावुर को अपनी राजधानी बनाकर जल्दी ही पल्लव और पांड्य क्षेत्रों पर फैल गए।



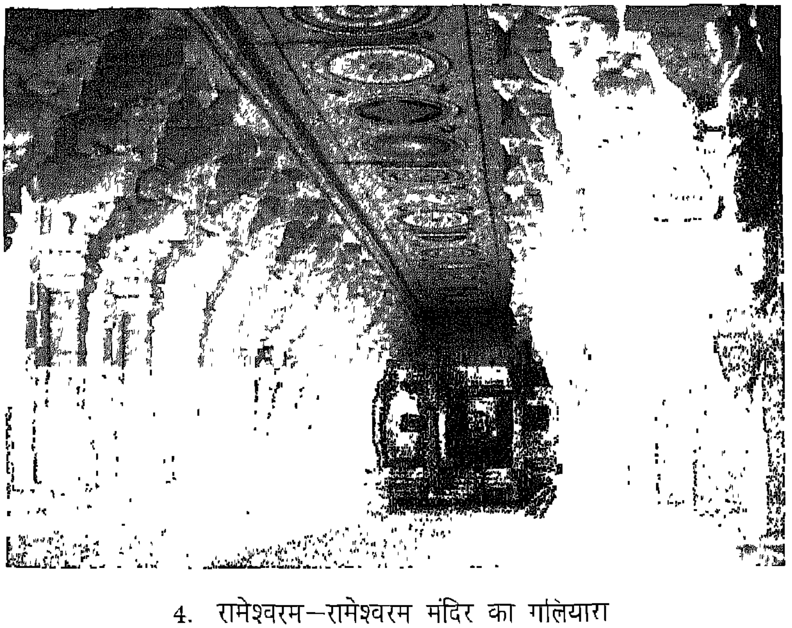
1. महावलीपुरम—पांडव रथ चट्टाने तराशकर बनाया गया रथ



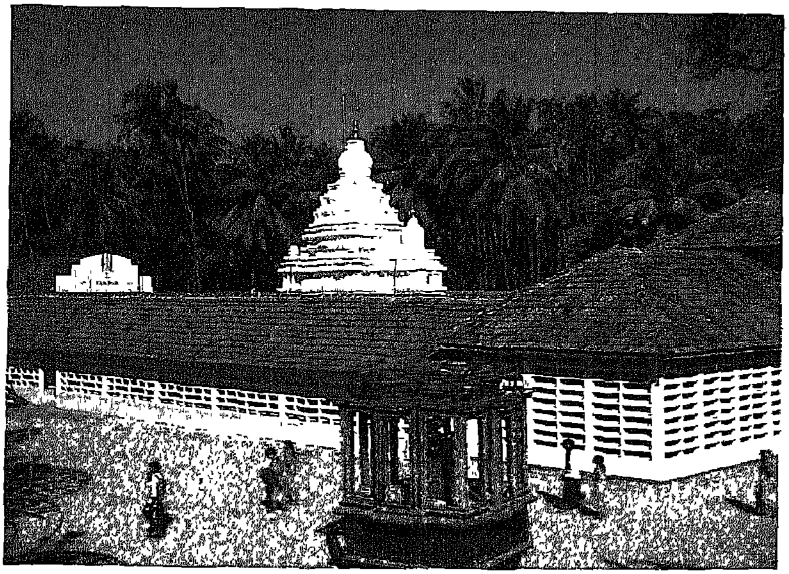
2. महावलीपुरम—तट मदिर (शिव)



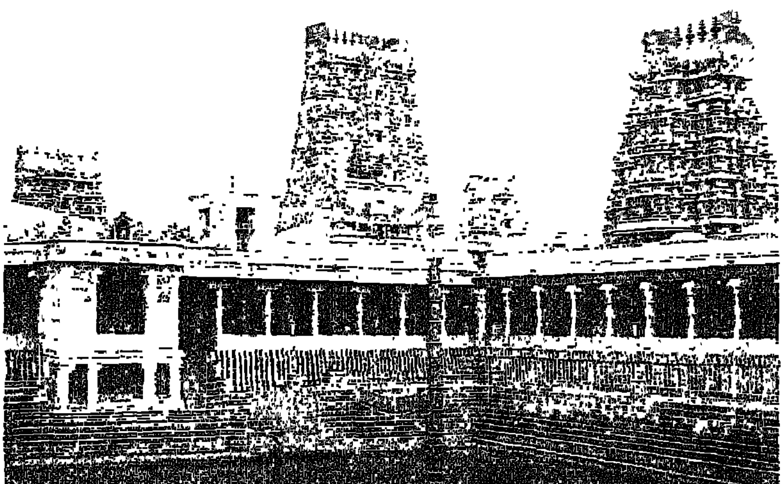
3. हलेबिड—हलेबिड मंदिर की दीवारों पर मूर्तिकला



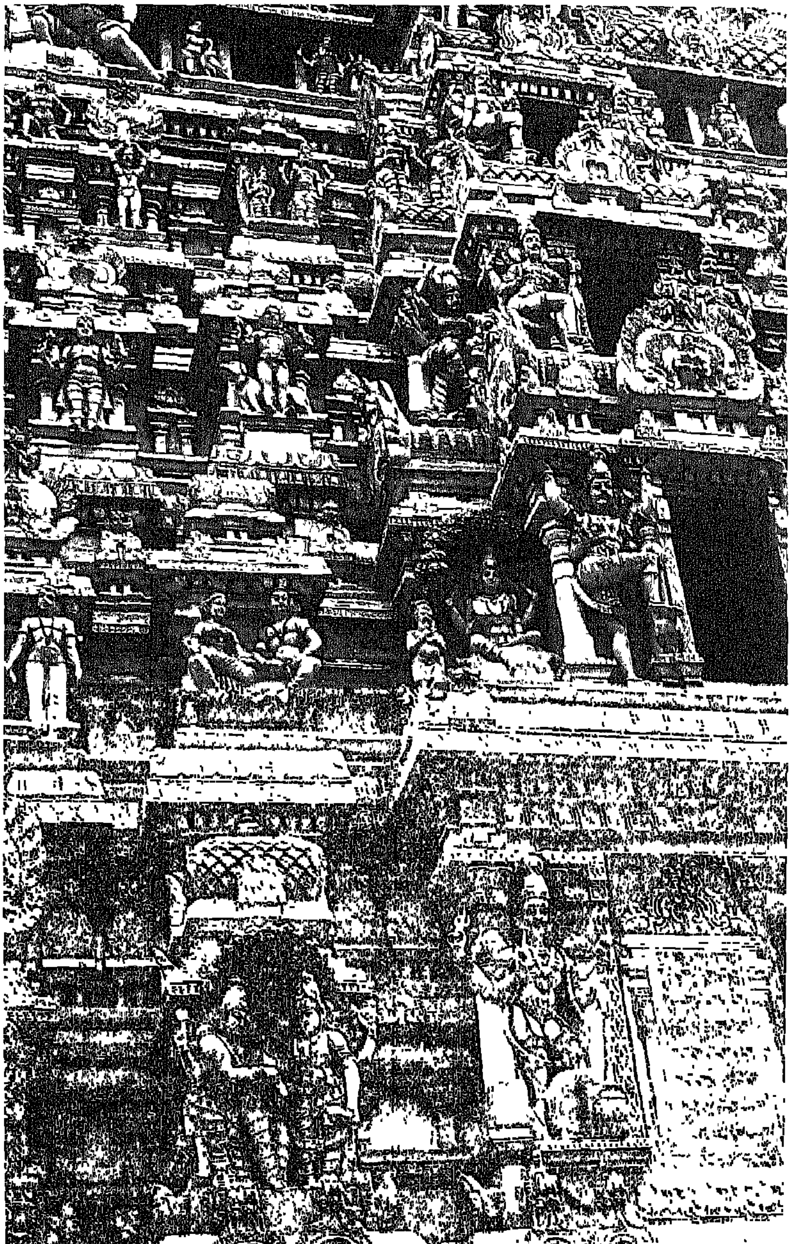
4. रामेश्वरम—रामेश्वरम मंदिर का गलियारा



5. मंगलौर—मंजूनाथ मंदिर



6. मदुरई—मदुरई-मीनाक्षी मंदिर



7. मदुरई—मदुरई-मीनाक्षी मंदिर का द्वार

कलियापट्टी, तिरुप्पुर, विसलूर और पननगुडी (पुदुक्कोट्टै जिला) स्थित छोटे और भव्य, संपूर्णरूपेण पाषाण मंदिरों की शृंखला में ढले हुए अधिष्ठान सहित वर्गाकार एकतल विमान हैं जो आधार पर 2 वर्गमीटर से भी कम हैं और उनके गर्भगृह के ऊपर वर्गाकार ग्रीवा और शिखर है। तिरुत्तनी विरत्तेश्वर के प्रसंग में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उसी निर्धारित क्रम में विमान कोष्ठ देवता के अतिरिक्त, उनमें आठ छोटे उपमंदिर—अष्ट परिवार—हैं जो कोनों और बाजुओं और प्राकार दीवार के भीतर आनुषंगिक देवताओं को समर्पित हैं और वे केंद्रीय विमान और उसके अक्षीय अनुलग्नकों को घेरते हैं। जबकि शेष सभी आठ उपमंदिर मुख्य विमान के समान आयोजना में वर्गाकार हैं, दक्षिण दिशा के मध्य में स्थित, सप्तमातृका को समर्पित एक उपमंदिर उपयुक्त शाला शिखर सहित आयताकार बना है जैसा कि तिरुक्कतलै (पुदुक्कोटि जिला) स्थित सुंदरेश्वर के विशिष्ट मंदिर समूह में निदर्शित है। रैखिक नमूने के ऐसे आयताकार या दीर्घवृत्ताकार मदिर ऐसे मामलों में निर्धारित हैं, और पाए गए हैं जहां देवता शयन मुद्रा में हैं, या जहां एकाधिक देवता (जैसे सप्तमातृका) एक पक्ति में प्रतिष्ठित हैं, या देवता पत्नी (जैसे विष्णु के साथ श्री या भू देवियां) और सेवकों सहित मंदिर में प्रतिष्ठापित हैं। शाला शिखर सहित आयताकार रूप निर्धारण और व्यवहार के अनुसार सभी देवी मंदिरो के लिए एक अपरिवर्तनीय नियम बन गया। कभी कभी अन्य सात परिवार मंदिरों में से एक या अधिक मंदिरो में आकार मे व्यतिक्रम हुआ, जैसे नगवरम जिला तिरुचिरापल्ली स्थित सुंदरेश्वर मंदिर में गणेश या गजानन के लिए अर्धवृत्ताकार या गजपृष्ठ मंदिर। मूलभृत्य के रूप में चंडेश का संप्रदाय या शिव मंदिर में मुख्य कारिंदा, जो राजसिंह पल्लव के काल में देखा गया था, जैसा उसके कांची स्थित कैलासनाथ मदिर में भी दिखाई देता है, अब निश्चित रूप धारण कर चुका था और उसे लगभग 1000 ई. तक उत्तर में अष्ट परिवार मंदिरो में से एक समर्पित किया जाता रहा। तदनंतर चोल साम्राज्य काल के मंदिरों में पूर्वकालीन नंदी और शिव के अन्य समान अनुचरों की भांति चंडेश को भी मुख्य विमान की निकट सन्निधि में प्रणाल के ठीक उत्तर मे आ जाने से एक अधिक सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो गया। यह दक्षिण के, मुख्यतया तमिलनाडु के मंदिरो का विशेष लक्षण है।

कण्णानूर स्थित बालसुब्रह्मण्य मंदिर और विरालूर (दोनों पुदुक्कोट्टै जिले में) स्थित शिव मंदिर उस प्रकार के उदाहरण हैं, जिनमें ग्रीवा और शिखर खंड में वृत्ताकार होते हैं और एकतल विमान के वर्गाकार अंग पर बनाए जाते हैं। बालसुब्रह्मण्य मंदिर के आदितल के चारों कोनों में गजाकृतियां हैं जो सुब्रह्मण्य कार्तिकेय की प्रतीक हैं, जबकि शिव मंदिर में सामान्य मयूराकृतियां हैं।

तिरूप्पत्तूर (रामनाथपुरम जिला) स्थित दुमंजिला तालिनाथ मदिर और तिरुवलीश्वरम (तिरुनेलवेली जिला) में वैसा ही शिव मंदिर, थोड़े बहुत उदाहरण है।

तालिनाथ मंदिर में सर्वोच्च तल पर कोनों पर नंदी के स्थान पर चार कर्णकूट लघु मंदिर हैं। तिरुवलीश्वरम शिव मदिर अपने उत्कृष्ट वास्तुशिल्प और उसकी दीवारों और अधिरचना पर उत्कीर्णनो के लिए प्रसिद्ध है, जिनमे शिव नटराज का विख्यात आनंद तांडव पाया गया है, जो शायद तमिलनाडु की लाक्षणिक रूप से घनीभूत और उदात्तीकृत धारणा का प्रारभिक चित्रण है और भारतीय तथा विश्व की कला में तमिलनाडु का विशिष्ट योगदान है।

अपनी विशिष्ट आनद तांडव मुद्रा में, गुप्त रूप से तमिल शैव सिद्धांत के शिव के पंचकृत्य का चित्रण करती नटराज की प्रसिद्ध प्रतिमा, जैसा कि कुमारस्वामी द्वारा चित्रित और परिभाषित किया गया है, नवीं शताब्दी के उत्तर भाग में प्रादुर्भूत होती है। शैव संत मणिक्कावचाकार नयनमारों में प्रथम हैं, जिन्होंने शिव के नृत्य के इस रूप और पक्ष का उल्लेख किया और छोटा तिरुवलीश्वरम पटल (890 ई.) शायद पहला पटल है जिस पर इस कल्पना ने पत्थर में आकार लिया। यह धारणा शायद सबसे पहले ताम्र या कांस्य में प्रकट हुई, क्योंकि तमिल कारीगरों ने तांवे या कांसे को ढालने में कौशल और उत्कृप्टता प्राप्त कर ली थी। इसका उद्देश्य मूल रूप से शोभायात्रा के लिए रहा होगा, जिसे बाद में पत्थर पर भी उत्कीर्ण किया गया। शीर्ष आकृति के रूप में ऐसी आरंभिक पाषाण प्रतिमाएं, अधिकतर लघु रूप में, परंतक प्रथम (राज्यारोहण 907 ई.) के काल में पुंजै (तंजावुर जिला) स्थित आरंभिक चोल मदिर में एक ताक के तोरण में और लगभग 940 ई. के तुरैयुर (तिरुचिरापल्ली जिला) स्थित मंदिर के एक स्तंभ पर पाई गई है। अन्य आरंभिक लघु प्रतिमाएं तिरुचिरापल्ली जिले के ही श्रीनिवासनल्लुर के कोरंगनाथ मंदिर में और तिरुमियाचूड़ मंदिर (तंजावुर जिला) के एक ताक के तोरण में पाई गई हैं। यह शायद पहली बार पत्थर में ताक के शिल्प के रूप मे कोनेरीराजपुरम (तंजावुर जिला) स्थित मंदिर के अर्धमंडप की दक्षिणी दीवार के देव कोष्ठ में प्रयुक्त हुआ और इस स्थिति में अन्य आरंभिक चोल मदिरों का एक सामान्य अंग बन गया।

तंजावुर की चोल शाखा के संस्थापक के नाम पर नर्तमलै (पुदुक्कोट्टै जिला) में विजयालय चोलीश्वरम एक रोचक और उत्कृष्ट मुत्तरैयार उदाहरण है। इस तिमंजिले मंदिर का संधार आदितल बाहर से अपनी आयोजना मे वर्गाकार है, जिसके सामने लगभग उसी नाप का वंद मडप है, जबकि पूजास्थल को घेरने वाली भीतरी दीवार वृत्ताकार है जो चारों ओर एक अंतराल छोड़ती है। भीतरी वृत्ताकार दीवार के ऊपर उठा हुआ दूसरा तल वर्गाकार हैं, जवकि तीसरा तल, और उसके ऊपर ग्रीवा और शिखर भी खंड मे वृत्ताकार है। सामने के मडप के ऊपर तक विस्तृत आदितल हार भी नृत्यशिल्पो की एक शृंखला प्रदर्शित करता है। परंतु इसके लिए, और मंडप प्रवेश स्थित द्वारपालों, सबसे ऊपर चारों पृष्ठों पर वास्तुशिल्पों और पूजागृह स्थित वृत्ताकार पीठ सहित बेलनाकार लिंग के लिए भी अधिक

शिल्पाकृतियां नहीं हैं। पश्चिमाभिमुखी परिसर अप्ट परिवार और एक प्राकार से घिरा हुआ है, जिसमें पूर्व की ओर छोटा गोपुर प्रवेश है, जो उस चट्टान की ढलुवां चढ़ाई के ऊपर उत्तर-पूर्वी कोने के निकट स्थित है, जिसमे मदिर का निर्माण किया गया है।

कोदुम्वतुर (तिरुचिरापल्ली जिला) स्थित मुवरकोविल इरुक्कुवेल मूल का है और जिसमें तीन समान आकार के द्वितल विमान हैं, जो आधार से शिखर तक वर्गाकार है। उनके अर्धमडप उत्तर से दक्षिण तक एक पंक्ति मे पश्चिमाभिमुखी हैं और उनके सामने सबके लिए समान एक वड़ा और दीर्घ आयताकार महामंडप है। इनमें से दो पूर्ण हैं और तीसरे का केवल तहखाना ही वर्तमान है। यह सब सोलह उप मंदिरों और एक प्राकार से घिरा हुआ था, जिसमें पश्चिम दिशा में एक छोटा गोपुर प्रवेश था। यह मंदिर महान दक्षिण भारतीय मदिरों की परंपरा में एक महत्वपूर्ण युगांतरकारी निर्माण है। यह उत्कृष्ट तंतुरचना युक्त और चुने हुए ग्रेनाइट से वना है और अपनी उत्कृष्ट शिल्पाकृतियो–विशेपरूपेण विनाधार, दक्षिणामूर्ति, कलारी शिव और कुछ नारी रूपो के लिए प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार, श्री निवासनल्लूर (तिरुचिरापल्ली जिला) स्थित कोरंगनाथ, कुभकोणम में नागेश्वरम पुंजे स्थित नल्तुनै ईश्वर और पुल्लमनगै में ब्रह्मपुरीश्वर संपूर्णरूपेण पत्थर से बने अन्य आरंभिक मंदिर हैं, जो अपनी उत्कृष्ट और लालित्यपूर्ण शिल्पाकृतियों के लिए विख्यात है। इन शिल्पाकृतियों मे नर और नारी के रूपचित्र (पोट्रेट) शिल्प भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार सैकड़ों पाषाण मंदिर तमिलनाडु में 1000 ईसवी के पूर्व और पश्चात की शताब्दियो में, पूर्व निर्मित ईट और लकड़ी के बने मंदिरों के स्थान पर, और शैव तथा वैष्णव संतों–नयनमार और आलवार संतों की स्मृतियों से पवित्र हुए स्थानों पर बनाए गए।

यद्यपि छोटे स्तर पर, ऐसी गतिविधि दक्षिणी मैसूर क्षेत्र में भी पाई जाती है, जहां तालकड के पश्चिमी गंगों ने कठोर पत्थरों से बने कुछ समकालीन मंदिर छोड़े हैं। सवसे प्राचीन एक छोटे आकार के जुड़वां एकतल विमान हैं, जो श्रावण-वेलगोला (जिला हासन) में चंद्रगिरि पर्वत पर परवर्ती जैन मंदिर की सन्निधि में हैं। परंतु उसी पहाड़ी पर सर्वाधिक प्रभावशाली जैन मदिर चामुंडराय वस्ती (982-985) है, जो तिमंजिला पूर्वाभिमुखी विमान है जिसके सामने एक बंद मंडप और खुली ड्यौढी है। अध्यारोपित पूजागृह प्रकार के इसके दो वर्गाकार निम्नतल, जिनमें दुहरी दीवार वाला संधार आदितल दीवारों के वीच रास्ता छोड़ता है, क्रियाशील है और उनके पूजागृहों में तीर्थकर के रूप प्रतिष्ठित हैं। तीसरा तल भी वर्गाकार है, किंतु क्रियाशील नहीं है। बाहरी दीवार के ऊपर आदितल का हार, जिसमें कूट, शाला और पंजर तत्व सम्मिलित हैं, सामने स्थित मंडप के ऊपरी किनारों तक विस्तृत है। इसलिए दूसरे तल पर एक खुली परिक्रमा है। हार में उत्कृष्ट शिल्पों की एक शृखला है।

किंतु श्रावण वेलगोला में सर्वाधिक महत्व का स्मारक गोम्मटेश्वर की विशालमूर्ति का अलौकिक मंदिर है। यह मूर्ति 17.5 मीटर ऊंची है और इंद्रगिरि पहाड़ी के खड़े चट्टानी शिखर में से तराशी गई है। यह गंग राचमल्ल (974-984) के मंत्री चामुंडराय द्वारा बनवाई गई थी। उत्कृष्ट अनुपातों वाली पालिश किए ग्रेनाइट से बनी मुक्त रूप से खड़ी मूर्ति होने के कारण यह ईजिप्ट में अबू सिम्बेल स्थित रेमसेस द्वितीय की विशाल प्रतिमा से भी अधिक रुचिकर है। इस विशाल मूर्ति का आधार होयसल विष्णुवर्धन (1110-1152) के मंत्री गगराय द्वारा बनवाई गई मालिका से घिरा हुआ है। पीछे से मूर्ति के निम्न भाग से जुड़ा हुआ मंडप एक अन्य मंत्री वलदेव द्वारा बारहवीं शताब्दी में बनवाया गया था।

श्रावण वेलगोला के निकट कंबडहल्ली स्थित गंग मंदिर भी जैन मदिर है और इस तथ्य के कारण दिलचस्प है कि सामान्य आकार-प्रकार के इसके तीन प्रमुख विमान जो पूर्णरूपेण ग्रेनाइट से बने है, एक सांझे मंडप की तीन दिशाओं में खुलते हैं, और उत्तर दिशा में उसकी चौथी भुजा में सांझा वाह्य प्रवेश है—यह समूहीकरण त्रिकूट कहलाता है। तीन वर्गाकार आधार वाले विमानों के क्रमशः वर्गाकार, अष्टभुजाकार और वृत्ताकार ग्रीवा शिखर हैं, जो नागर द्राविड़ वेसर प्रकार के उदाहरण हैं जैसा कि शिल्प ग्रंथों में बनाया गया है। इस परिसर में त्रिकूट केंद्र के सांझे मंडप के सामने दो और विमान बाद मे जोड़े गए। समस्त परिसर एक प्रकार से घिरा हुआ है जिसमें उत्तर में एक छोटा गोपुर प्रवेश है। कंबडहल्ली (जिला हासन) में यह परिसर पंचकूट बस्ती (जैन मंदिर) कहलाता है, जो इकाइयों का विशिष्ट समुच्चय है। यह समुच्चय नागर, द्राविड़ और वेसर रूप में दक्षिणी विमानों के त्रिअंगी वर्गीकरण का उदाहरण है और इसके अन्य पक्षों में भी रोचक है। विशेष रूप से देवकोष्ठो की चौखट वनाते ताकों के तोरणों की विविधता उल्लेखनीय है, जो ग्रंथों और अभिलेखों में वर्णित तोरणों के विभिन्न रूपाकारों, यथा—पत्र तोरण, चित्र तोरण, मकर तोरण, विद्याधर तोरण आदि को चित्रित करती है। इस प्रकार यह मंदिर समुच्चय विमान रूपाकार के विभिन्न लक्षणों का उदाहरण है, जिन्हें उस काल के शिल्प और आगम ग्रंथों में सूची और संहितावद्ध किया गया था। कहा जा सकता है कि यह पाठ्यपुस्तक का आदर्श उदाहरण या नमूना है जिसका ग्रंथों के साथ तुलना करते हुए अध्ययन किया जा सकता है।

वाणों की राजधानी नदी (जिला कोलार) के ग्रेनाइट मंदिर गंग नोलंब उद्धरण के हैं। पहाड़ी के ऊपर बना छोटा और पूर्ववर्ती योगनंदीश्वर वास्तुशिल्प की दृष्टि से प्रभावशाली नहीं है, जबकि पहाडी के नीचे बने भोगनंदीश्वर और अरुणाचलेश्वर के वडे जुडवां मंदिर, जो दोनों वर्गाकार प्रकार के हैं, प्रभावशाली हैं। जुड़वा मंदिरों को केंद्र बनाकर बाद में अक्षीय मंडप और परिधि पर निर्माण करके प्रकार और पूर्व में गोपुर बनाकर इसका एक परिसर में विस्तार किया गया है। इन दोनो में

पूर्ववर्ती भोगनंदीश्वर स्पष्ट रूप से पहले से अस्तित्वमान निर्माण का नवीनीकृत रूप है और अपने निर्माण की उत्कृष्टता और शिल्पाकृतियों के सौंदर्य के लिए विख्यात है। अरुणाचलेश्वर भोगनंदीश्वर की लगभग बाद में बनी प्रतिकृति लगता है। हेमावती (जिला अनंतपुर) स्थित नरम पत्थर से बने मंदिरों के अवशेष अपने उत्कृष्ट शिल्प के लिए प्रसिद्ध हैं और विशुद्ध नोलंब वास्तुशिल्प और कला के उदाहरण हैं।

चालुक्य राष्ट्रकूट शृंखला

आरंभिक चालुक्यों के संरचनात्मक प्रयोग उनकी राजधानी वातापि (बादामी), सन्निकट महाकूटेश्वर और जुड़वां व्यापारिक शहरों ऐहोल और पट्टदकल (सभी बीजापुर जिले में) तक सीमित पाए गए हैं। उन सभी में स्थानीय उत्कृष्ट ततु और गुण वाले नर्म बालुकाश्म का उपयोग किया गया है क्योकि वह सरलता से उपयोग किया जा सकता था। निर्माण में बड़े पाषाण खंडों का उपयोग करते हुए बड़े आकार की संरचनाओं और आकृति शिल्प की प्रचुरता का यही एक कारण था।

इस शृंखला के मंदिरों के प्रसिद्ध और विशिष्ट विमान और प्रासाद रूपाकारों पर विचार करने से पूर्व यह अच्छा होगा कि मंडप प्रकार के कुछ मंदिरों पर संक्षेप में विचार कर लिया जाए जो कि इस शृंखला के आरंभिक मदिर हैं और आरंभिक गुफा मंदिरों के प्रतिमान के अनुरूप बनाए गए थे। वे ज्योतिर्लिंग समूह के छोटे मंदिर, लडखन, कोंटगुडी और ऐहोल के मेगुटी मंदिर थे। ज्योतिर्लिंग समूह के दो मंदिर तो केवल मंडप जैसे हैं, जो दीवारों से बंद और सपाट छतवाले हैं, जिनके सामने एक छोटे आकार का बाहरी नंदी मंडप है।

लडखन एक भारी भरकम निर्माण है, जो निश्चित रूप से एक ढले हुए अधिष्ठान पर मंडप के रूप मे खड़ा है जिसमें चार केंद्रीय स्तंभ, उत्तरोत्तर कम होती ऊंचाई के स्तंभों की दो संकेंद्रित पंक्तियों से घिरे हुए हैं, जिससे बीच में उठी हुई छत में रोशनदान बन गए हैं और छोटे स्तंभों के बाहरी वृत्तों पर चारों ओर पत्थर की पट्टियों की छत ढलवां आकार ले लेती है। नींव के किनारे स्तंभों की बाह्यतम पंक्ति के बीच के अंतराल को पाषाण पट्ट की आवरण दीवारों से बंद कर दिया गया है, जिनमें से कुछ में गवाक्ष के ढंग के छेद बने हैं। दोनों ओर से सामने तक आती दीवार में एक केंद्रीय द्वार का स्थान है। पिछले छोर पर मध्य खंड जिस पर ढलवां छत है, नींव और पाषाण पट्ट दीवारों सहित पूजाकक्ष मे बदल दिया गया है। बीच के रोशनदान के ऊपर सपाट छतवाला एक ऊपरी कक्ष भारी पाषाण पट्टों से बना दिया गया है। इस सबमें, बाद में खुले स्तंभो वाला मुखमंडप जोड़ दिया गया, जो आड़ा आयताकार है। जिसमें मंडप प्रकार के तराशे हुए स्तंभ हैं जिनके आधार को उनके पिछले किनारे के ऊपर पीठदार आसन से जोड़ दिया गया। ये

कक्षासन चालुक्य मंदिरों और उनकी व्युत्पत्तियों की विशेषता हैं। इस प्रकार यह एक बड़े सभागार से अधिक नहीं लगता, जो एक के भीतर एक पूजाकक्ष सहित मंदिर के रूप में वदल दिया गया हो। लडखन मंदिर का विशाल मंडप, पिछले भाग में अपने तात्कालिक पूजाकक्ष और अपने ही अधिष्ठान पर खडी एक अपारंपरिक ढलवां छत सहित मूल रूप से ग्राम चौपाल का सभागार प्रतीत होता है (पर्सी ब्राऊन)। अनेक अभिलेखों की साक्षी को देखते हुए गांव के बड़ों के लिए मिलने और स्थानीय सामाजिक, प्रशासकीय, न्यायिक और धार्मिक मामलों से संबंधित कामकाज के लिए ऐसे सभागार असामान्य नहीं थे। इसी प्रसग मे उत्तिरामेरूर (चिंगलपुट जिला) के, आजकल वैकुंठपेरुमल नाम से प्रसिद्ध मंदिर का मामला है, जो एक वाद की पल्लव सरचना है, जिस पर हमने उस काल के मदिरो के पूर्व वृत्तांत मे ध्यान नही दिया गया है। इस सभा मंडप या उत्तिरामेरूर चतुर्वेदी मंगलम का यह विशाल सभागार स्पप्ट रूप से ग्राम सभा के लिए बनाया गया था और इसका अब जो भी कुछ शेप है, वह भव्य, पापाण निर्मित नींव, उपपीठ और अधिप्ठान है जिसके ऊपर खड़ा स्तंभयुक्त अधिनिर्माण नष्ट हो चुका है। वर्तमान गढ़ा हुआ आधार कठोर ग्रेनाइट पत्थर का है। अधिरचना शायद तीन दिशाओं में दीवारों से घिरी हुई थी जिसमें सिंह या व्याल आधारित कठोर पाषाण स्तंभों पर नर्म पत्थर (क्लोराइटिक परतदार चट्टान) के गढ़े हुए शीर्ष सामने वाले सोपान के अग्रभाग पर लगे रहे होंगे। वर्तमान संरचना पर ही प्राप्त पल्लव नंदीवर्मन तृतीय के चौबीसवें वर्ष में उत्कीर्ण शिलालेख में इसे मंडप ही कहा गया है, विमान नहीं। यह निर्माण दंतिवर्मन (796-846) के काल का है। संयोगवश, इस पर परंतक प्रथम चोल (919-921) के बारहवें और चौदहवें वर्ष का प्रसिद्ध शिलालेख है, जिसमे ग्राम सभा के गठन की विधि और निर्वाचन की अर्हता के लिए नियम और शर्ते लिखी गई हैं—यह शायद ग्राम की प्रशासकीय संस्था मे निर्वाचन से सबंधित पहला ज्ञात शिलालेख है। इस प्रकार यह ग्राम सभागार ग्रंथागार था, जैसा कि लडखन ऐहोल में था। लडखन के समान ही, इसमें भी मूल रूप से पीछे की ओर एक छोटा पूजाकक्ष था, जिसके स्थान पर बहुत वाद में वैकुंठपेरुमल की प्रतिप्ठा की गई। इस कक्ष में स्थित देवता के सम्मुख शपथ ग्रहण, विचार-विमर्श, और निर्णय होते थे जिसमें प्रतिष्ठित देवी देवता साक्षी या साक्षी भूत होते थे। विष्णु मंदिर के साथ जुड़े ऐसे सभा मंडपों का उल्लेख शिल्प ग्रंथों मे आया है जैसे कि माया मठ। वैकुंठपेरुमल के मंडप पर विष्णु के लिए मंदिर की उपस्थिति का उल्लेख पल्लव कंपवर्मन के एक अभिलेख में किया गया है। ऐहोल के वड़े व्यापारिक नगर के अन्य मंडपों का भी उद्देश्य यही लगता है।

इसी प्रकार कोंटगुडी में भी सभागार की पिछली दीवार के साथ एक मंदिर कक्ष है और अधिसंरचना बाद मे जोड़ी गई है क्योंकि छत के मदिर कक्ष में अधिक

विकसित चालुक्य विमान की छत के लक्षण मिलते है।

ईसवी सन् 634 के एक शिलालेख सहित जैन प्रतिष्ठान का मेगुटी अधिक विकसित है। यह मूलभूत रूप से एक वद मंडप है जो एक उठी हुई और गढ़ी हुई नींव पर स्थित है। इसमें भी मध्य में चार स्तभ है और नींव के ऊपर किनारे पर चारों ओर वाह्य दीवार है जो नौ खंडों—एक मध्य में और आठ वाह्य परिधि में—को घेरती है। दीवार युक्त मध्य खंड मे मुख्य पूजा मंदिर है और उसके ऊपर छत स्थित मंदिर भी है। दोनों वाजू में पिछले खड, पिछली दीवार के कोनो के निकट भूतल के दो परवर्ती मदिरों के लिए स्थान देते हैं। जिनके सामने मध्य अक्षीय रेखा पर दो परवर्ती खंड हैं जिनकी केंद्रीय कक्ष जैसी सपाट छत है जिससे उनके अपने अपने अर्धमंडप वन जाते है। सामने के तीन खंड सभी तीनों पूजा मंदिरों के लिए आड़ा आयताकार मुखमंडप बनाते हैं। सामने के तीन मुखमंडप खंडों और तदनुरूप पीछे के तीन खंडों पर ढलवां छतें हैं। बाहरी दीवारों पर भित्तिस्तंभों द्वारा तीन ताक उभारे गए हैं। उभारे गए भागों में देवकोष्ठ बने हैं। कुछ ताकों में छेद से खिडिकियां बनाई गई हैं। ईसवी सन् 634 का अभिलेख मेगुटी की उस पाषाण संरचना से संबंधित नहीं हो सकता जो हमे अब प्राप्त हैं, किंतु यह एक पूर्ववर्ती संरचना, जो शायद ईटो से निर्मित हो, से संबंधित है, जिसमें उत्कीर्णीत प्रस्तर पट्ट लगाया गया होगा या यह उसके सामने स्थापित किया गया होगा। क्योंकि, अधिष्ठान के घटकों और भित्तिस्तंभों और उनकी विकसित गढ़ाई को देखते हुए, ऐहोल, पट्टदकल और बादामी से प्राप्त अन्य प्रमाणों से तुलना करने पर, कोई भी उन्हें सातवीं शताब्दी के प्रथमार्ध का उत्तरकालीन ही मान सकता है। ऐसा ही एक समांतर मामला वर्तमान महाकूटेश्वर मंदिर का है। महाकूट, जो कि पूर्णरूपेण पाषाण निर्मित संरचना है, मुक्त रूप से खड़े महाकूट स्तंभ की तिथि से वाद का ही हो सकता है, या अधिक से अधिक उस समय मंडप की रचना हुई होगी, विमान की नहीं। स्तंभ की अपेक्षा बाद का बना वर्तमान पाषाण मंदिर किसी पूर्ववर्ती ईटों की संरचना के स्थान पर बना होगा जिसके सामने उत्कीर्णीत लेख वाला स्तंभ लगा होगा।

इन अजीव से दिखने वाले मंदिरों की योजना और अभिकल्पना, तथापि, पश्चिमी तट के परवर्ती कालीन इसी प्रकार के मंदिरों का पूर्वानुमान देती है, जहां अत्यधिक वर्षा के कारण ढलवां छतें अत्यधिक उपयुक्त थीं। इसीलिए इस प्रकार के मंदिर वहां सामान्य बन गए। मध्य खंड में स्थित मंदिर की छत उठी हुई और चारों तरफ ढलवां छतें होती थीं। मध्य मंदिर प्रायः चतुर्मुख प्रकार का होता था जैसा कि कार्कल स्थित चतुर्मुख जैन मंदिर है। इसी व्युत्पत्ति के अन्य मंदिरों के लिए, यदि और अधिक दक्षिण में नहीं, तो गोवा और मंगलौर के बीच के क्षेत्र में प्राप्त अनेक उदाहरणों को देखना चाहिए जो भटकल स्थित केतापि नारायण

मंदिर, या गोवा में केरी स्थित वैतल मंदिर में द्रष्टव्य है।

बादामी के चालुक्यों के विशिष्ट विमान मंदिरों पर आए, तो हम पाते हैं कि आरंभिक प्रयास राजधानी बादामी और संलग्न महाकूटेश्वर तक ही सीमित थे।

महाकूटेश्वर मंदिर महाकूटेश्वर में उत्तरी और दक्षिणी प्रकार के अनेक मंदिरों से बना प्रमुख मंदिर है, जो वास्तव में मंगलेश के काल–छठी शताब्दी–के समापन वर्षों से अस्तित्व में था। इसका उल्लेख उसके सामने खड़े विजय स्तंभ पर उत्कीर्ण लेख में हुआ है। यह स्तंभ अब बीजापुर संग्रहालय् में रखा हुआ है। स्पष्ट है कि यह मंदिर पाषाण मे फिर से बनाया गया और बाद में नवीनीकरण किया गया, फिर भी इसमें पूर्ववर्ती लक्षणों के अवशेष हैं। विमान का आदितल दुहरी दीवारों वाला है जिनके बीच एक वंद प्रदक्षिणा है। बाहरी दीवार और साथ ही नीचे के अधिष्ठान पर खंडों में हर दिशा के मध्य मे देवकोष्ठ उभारे गए हैं। हर दिशा में अंतराल में छेद करके बनाई गई खिडकियां हैं, जो परवर्ती भित्तिस्तंभों के चौखट के भीतर हैं। इनके साथ ऊपर प्रस्तर का एक कपोत है जिस पर लघु मंदिर तत्व हैं जैसे दक्षिणी विमान प्रकार के हार में पाए जाते हैं, या वे उत्तरी प्रासाद प्रकार के हैं। यह एक विकसित लक्षण है जैसा कि ऐहोल स्थित दुर्गा मंदिर के देवकोष्ठों में पाया गया है। वर्गाकार आदितल की बाहरी दीवार पर उसके प्रस्तर के ऊपर कोनों पर चार कर्णकूट और दीवार के मध्यम खंडों के ऊपर बीच में चार शाला हैं। नीचे अधिष्ठान को आगे बढ़ाकर चौड़ा कर दिया गया है, ताकि सामने एक अधिक वड़े वर्गाकार मंडप का आधार बन सके। इसकी दीवारों के मध्यवर्ती खंडो में शिव की शिल्पाकृतियों के लिए देवकोष्ठ है, जैसे कि विमान की दीवार पर भी है और अंतरालों में छेद करके बनाई गई खिडकियां हैं। आदितल की भीतरी दीवार के ऊपर की ओर विस्तार के रूप में उठा दूसरा तल ऊंचा है और उस पर भी चार कर्णकूट और चार शालाओं का हार है, जबकि ऊपर अष्टभुजाकार ग्रीवा और शिखर में विकर्ण फलकों पर चार बडे प्रक्षिप्त कूट जुड़े हुए हैं जबकि बीच के मूल फलकों पर नासिका हैं।

महाकूटेश्वर परिसर के दक्षिणी छोर पर, पूर्वाभिमुखी मल्लिकार्जुन मंदिर है जिसमें एक संधार विमान है। यह द्वितल उसी प्रकार का है, जिस प्रकार का महाकूटेश्वर है। दोनों में केवल कुछ छोटी मोटी वास्तुगत और शिल्पशास्त्रीय भिन्नताएं हैं। इस वर्गाकार विमान के ग्रीवा और शिखर अष्टभुजाकार हैं। इन दोनों मदिरों में कुछ विकसित लक्षण दिखाई देते हैं जैसे मंदिर प्रवेश पर विस्तारपूर्वक तराशा गया ऊपरी द्वार जो पूर्वद्रष्ट ताकों में की गई सजावट के अतिरिक्त है, और पूजाकक्ष के फर्श पर पानी की ढलवां प्रणाली के साथ एक निकास जो उत्तरी दिशा में खुलता है।

बादामी की पहाड़ियों के बीच एक बाहरी शृंग पर खड़ा मलेगिट्टी शिवालय

एक अत्यधिक सादी संरचना है जिसमें इकहरी दीवार से बना भारी भरकम निरंधान विमान है जो बालुकाश्म के बड़े खंडों से चुना गया है। उसके सामने लगभग उसी चौड़ाई का एक बंद मंडप है, जिसके आगे कम चौड़ाई की चतुर्स्तंभी खुली ड्यौढ़ी है। ये सब एक सांझे बढ़े हुए अधिष्ठान पर स्थित हैं। विमान के आदितल के चार कर्णकूटों और चार शालाओं का हार सामने स्थित मंडप के ऊपर तक विस्तीर्ण है। विमान के सामने के दो कर्णकूट ही मंडप के दो पिछले कर्णकूट बन जाते हैं। विमान के दूसरे तल पर भी इसी प्रकार के चार कूटों और चार शालाओं का हार है। बडे बड़े अन्य चार कर्णकूट ग्रीवा शिखर के साथ लगे हुए हैं, जो अष्टभुज ग्रीवा के कोने के फलकों को छिपा देते हैं और आंशिक रूप से अष्टभुज शिखर के गोलमटोल गुंबद को ढंक देते हैं। इस तरह इस विमान को एक विशेष दिखाव देते हैं। ग्रीवा के मूल फलकों पर समान आकार की नासिकाएं हैं। विमान की दीवार पर तीन खंड, आजू बाजू के दो कर्णकूटो और मध्यवर्ती शाला के अनुरूप हैं। इन खंडों में देवताओं की आकृतियों के लिए सादे आयताकार ताक बने हुए हैं। इसी प्रकार मंडप की दो पश्चवर्ती दीवारों में पांच उभार हार तत्वों के अनुरूप हैं जिसमें से हर दिशा में मध्यवर्ती एक देवकोष्ठ है जो पुनः मंदिर प्रवेश के दोनों ओर सामने की पूर्वी दीवार के दोनों खंडों पर प्राप्य है। मंडप की दीवार के प्रत्येक पश्चवर्ती फलक के उत्तर और दक्षिण में दूरस्थ अंतरालों में छिद्रित खिड़कियां हैं।

बादामी के किले में निम्न शिवालय (किसी अन्य नाम के अभाव में इसी नाम से परिचित) जो शायद मूलतया विष्णु को समर्पित था, एक छोटी संरचना है। यह लगभग मलेगिट्टी शिवालय के समान ही, किंतु एक महत्वपूर्ण बिंदु पर उससे भिन्न है और वह यह कि इसका आदितल दुहरी दीवार वाला या संधार है। हार सभी तलों पर उपस्थित हैं और ग्रीवा और शिखर प्रक्षिप्त कूटों सहित अष्टभुजाकार हैं।

बादामी के किले में थोड़ा ऊपर की ओर पहाड़ी पर उच्च शिवालय मे एक संधार विमान है जो अपनी आयोजना में वर्गाकार है। विमान के आदितल की बाहरी दीवार आगे की ओर इसी प्रकार विस्तीर्ण अधिष्ठान पर बढ़ी हुई है जिससे एक बड़ा मंडप घिर जाता है। मंडप बंद है और उसके भीतर स्तंभ लगे हुए हैं और जिसके भीतर पीछे वाले मंदिर के समान चौड़ाई वाली एक नाभि मध्य में है। दो पश्चवर्ती पार्श्ववीथिया विमान के आदितल की दुहरी दीवारों के बीच के परिक्रमा पथ की निरंतरता का अंग हैं; जिन पर ढलवां छतें हैं जैसा कि प्रदक्षिणा पथ के मामले में भी है। आदितल और सामने के मंडप की बाहरी दीवारों पर वैकल्पिक रूप से उभार और अंतराल बने है जिन्हें भित्तिस्तंभों द्वारा खंडों में बांटा गया है ताकि वे अपने प्रस्तारों के शीर्ष पर स्थित हार के अनुरूप हो सकें। अंतरालों में छोटे भित्तिस्तंभ हैं जिनके ऊपर प्रस्तार के कोर्निस की कुदु मेहराबें है। दूसरा तल

ऊंचा है और आदितल की दीवार के ऊपर की ओर विस्तार के रूप मे ऊपर उठता है। इसके शीर्ष पर हार नही है। तीसरा तल कम ऊंचाई का है और यह भी ऊपर हार से वंचित है। ग्रीवा और शिखर नीचे के शेष विमान के समान ही वर्गाकार हैं और अन्य मंदिरो के विपरीत, प्रक्षिप्त कूटों से भारित नहीं है।

सातवीं शताब्दी में विकास की विभिन्न अवस्थाएं प्रदर्शित करते पूर्ववर्ती विमान रूपाकारों के इस समूह के विपरीत हमारे सामने पट्टदकल के संगमेश्वर, विरुपाक्ष और मल्लिकार्जुन मंदिरों के रूप में विमान के संपूर्ण रूपाकार है, जो एक सीमा तक विमान के लक्षणों को प्रतिबिंबित करते हैं जैसा कि समकालीन पल्लव संरचनात्मक मदिर और उनके पूर्ववर्ती एकाश्मक रथ करते हैं। संगमेश्वर इन तीनों में सबसे पहले बना और 'चालुक्य विजयादित्य' (697-733) द्वारा बनवाया गया। यह किसी अन्य शैली की अपेक्षा पल्लव शैली के अधिक निकट है, जिसमें ऊपरी तलों के अग्रभाग, अंतराल या अर्धमंडप के शीर्ष पर विमान के ग्रीवा और शिखर क्षेत्र में कोई शुकनासिका नहीं है। अन्य दो में से विरुपाक्ष का निर्माण विक्रमादित्य द्वितीय (733-746 ई.) की रानी द्वारा करवाया गया और मल्लिकार्जुन का निर्माण थोड़े ही समय बाद एक अन्य रानी द्वारा करवाया गया। इन दोनों में ही शुकनासिका है जो चालुक्य विमानों की आरंभिक शृंखला में विशिष्ट वास्तुगत तत्व के रूप में उपस्थित है, जैसा कि बाद में एलोरा में बने एकाश्मक कैलास में है। संगमेश्वर और विरुपाक्ष इस अर्थ में समान हैं कि आधार से शिखर तक उनकी आयोजना वर्गाकार है और इसलिए वे नागर व्यवस्था के हैं। मल्लिकार्जुन मे वर्गाकार तलो के ऊपर वृत्ताकार ग्रीवा और शिखर हैं इसलिए वह वेसर व्यवस्था का विमान है।

संगमेश्वर विमान त्रितल है और उसमें दुहरी दीवारों का संधान आदितल है, जिसकी बाहरी दीवार आगे बढ़कर विस्तीर्ण अधिष्ठान के ऊपर अर्धमंडप बनाती है और उसके आगे के भाग को चौड़ा करके बंद महामंडप का रूप दिया गया है जिसमें हर आंतरिक दिशा में पांच पांच खंभो की चार पक्तिया हैं। महामडप की उत्तरी दिशा के मध्य में एक खुली स्तंभों से युक्त ड्यौढी जोडी गई है। इस दीवार के बाहरी भाग में उभार और अंतराल वैकल्पिक रूप से बने हुए हैं जिनमें देवकोष्ठों की एक शृंखला विद्यमान है। ये देवकोष्ठ उन खंडों में हैं जिनमें विधि मूर्तिशिल्प की देवानुकृतियां हैं। विमान की बाहरी दीवार और उसके अगले मंडप की दीवार के विस्तार के ऊपर स्थित प्रस्तार में कर्णकूटो और शालाओं का एक हार है जो नीचे के उभार वाले खंडों के अनुरूप है। हर दिशा के मध्य में हार में छत के पानी के निकास के लिए छेद हैं। उनके ऊपर हार अंग में प्रारंभिक पंजर हैं, जो शायद चालुक्यों के विमान और उनके अनुषांगिकों मे इस तीसरे लाक्षणिक अंग का प्रथम प्रादुर्भाव है। द्वितीय तल भी, जो आदितल की भीतरी दीवार का ऊपर की ओर

प्रक्षेपण है, चार कर्णकूटों और शालाओं के हार से युक्त है, जबकि तृतीय तल में केवल मूल दिशाओं में चार शालाएं हैं, जो ग्रीवा और शिखर क्षेत्र के नासिका वाले प्रक्षिप्त भाग के सामने पड़ती हैं। ऊपरी तल के हार मे कर्णकूटों की अनुपस्थिति स्वयं हार के विलोपन और उसके स्थान पर कोनों पर मुख्य देवता के वाहनों और लांछनों के स्थापन की दिशा में पहला कदम है। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था, जो थोडा पहले नहीं तो लगभग एक ही समय में पल्लव मंदिरों के साथ साथ तट मंदिरों और कांची के कैलासनाथ में हुआ। संगमेश्वर ने एक अन्य मील का पत्थर भी स्थापित किया और वह यह कि इसकी योजना में अर्धमंडप के दो छोरों पर दो पार्श्व मंदिर भी हैं, जो गर्भगृह के प्रवेश के दोनों पार्श्वों पर दुर्गा और गणपति को समर्पित हैं।

'विरुपाक्ष' आरभिक चालुक्यों का सबसे बड़ा संरचनात्मक मंदिर परिसर है जिसमें एक ऊंचा चार मंजिला विमान है जिसके साथ एक अक्षीय मंडप और पूरे आगन में परिधि पर कूट और शाला प्रकार के द्वितल परिवार उपमंदिर है। यह सब एक प्राकार से घिरा हुआ है जिसमें सामने और पीछे, पूर्व और पश्चिम दिशा मे गोपुर प्रवेश बने हुए हैं। यह भी चालुक्य शृंखला का आरंभिक चिह्न है। वर्गाकार विमान में संधार आदितल है, जिसकी और नीचे के आदितल की भी बाहरी दीवार में हर दिशा में पांच खंड और चार अंतराल हैं। वे अपने कोने के कर्णकूटों, मध्यशाला और उस दिशा के प्रस्तर के ऊपर के हार के मध्यवर्ती पंजरों के अनुरूप विभिन्न चौड़ाई के हैं। मंडप बहुस्तंभी हैं जिनमें भारी शिल्पित खंड हैं। यह तीन ओर से खुला है और इसकी तीन दिशाओं—पूर्व, उत्तर और दक्षिण में प्रक्षिप्त स्तंभों वाली ड्यौढ़ियां हैं। एलोरा के कैलास के समान ही इन तीनों प्रवेशों के ऊपर तक आने वाले मंडप प्रस्तार के ऊपर के हार की शालाएं आकार में शेष हार अंगों की अपेक्षा बड़ी बनाई गई हैं ताकि लघु गोपुर द्वारों के जैसी दिखाई दें। उभार वाले खंडों के भित्तिस्तंभों के बीच बने देवकोष्ठ ताकों में कूट, पंजर या तोरण चौखटों के भीतर विभिन्न शिल्पाकृतियां हैं। अर्धमंडप के भीतर दुर्गा और गणेश के मंदिर हैं। द्वितीय तल के प्रस्तार के ऊपर तीन दिशाओं में चार कर्णकूट और तीन शालाएं हैं। इसी प्रकार कम ऊंचाई की तीसरी मंजिल पर चार कर्णकूट और तीन शालाएं हैं। दोनों तलों के अग्रभाग बहुस्तरीय शुकनासिका के रूप में अंतराल के ऊपर प्रक्षिप्त हैं, जो अपने अभिकल्पन में एक उपयुक्त अग्रभाग सहित बहुमंजिले अर्धवृत्ताकार मंदिर के रूपाकार की है। चौथी मंजिल और भी छोटी है और उसके हार में केवल चार कर्णकूट हैं। इसमें से चार शालाओं का विलोपन कर दिया गया है, जैसा कि तिरुपट्टूर के पांड्य तालिनाथ मंदिर में किया गया है। इससे ग्रीवा शिखर क्षेत्र की चार नासिकाएं पूर्णरूपेण दृष्ट हैं। प्राकार की दीवार के शिखर पर कूटों और शालाओ की एक शृंखला है, जैसी कि पल्लवों के तट मदिर के बड़े

विमान के प्रकार पर है।

विरुपाक्षा के निकट बना मल्लिकार्जुन चार मंजिला छोटा विमान है जिसके सभी तल वर्गाकार हैं। ऊपर ग्रीवा और शिखर वृत्ताकार हैं। इसमें भी इसके ऊपर के तलों से आगे प्रक्षिप्त शुकनासिका है। सबसे ऊपर के तल पर कोई हार नहीं है, जो इस तत्व के पूर्ण विलोप की अवस्था का चिह्न और मुख्य मंदिर के समर्पण के उपयुक्त प्रतीकों या वाहनों के लक्षण के आरंभ की घोषणा है।

ऐहोल का दुर्गा मंदिर मूल रूप से गज पृष्ठ प्रकार का दक्षिणी विमान है जिस पर एक अटपटा, अनगढ़ रूप से लगाया गया शिखर है जो यदि मूल अभिकल्पन का अग है तो अपसरण है और यदि बाद में जोड़ा गया है तो असंगत और अनुपयुक्त है। मंदिर और उसके अक्षीय मंडप अपने अधिष्ठान सहित एक उप आधार पर खड़े हैं जो कि एक ऐसा लक्षण है जो पूर्व विचारित पूर्ववर्ती मंदिरों में सामान्य नहीं है, किंतु चालुक्य और पल्लव पांड्य व्युत्पत्तियों के परवर्ती मंदिरों में सामान्य है। गढ़ा हुआ उपपीठ अर्धवृत्ताकार है और उसके किनारे पर भारी मंडप प्रकार के स्तंभों की एक परिधि पंक्ति है जो गढ़े हुए अधिष्ठान और मुख्य विमान के अर्धवृत्ताकार संधार आदितल की बाहरी दीवार और अग्रिम प्रक्षेप को जो समान चौड़ाई का एक बंद अंतराल मंडप है, और सामने के अग्रमंडप को—जो उसी अधिष्ठान के आगे की ओर विस्तार है और जहां उसका क्षेत्र संकीर्ण हो जाता है, घेरती है। इस प्रकार, उपपीठ के ऊपर का मंच एक बाहरी प्रचलन पथ बन जाता है, जिसकी छत ढलवां है, जो एक ओर विमान की बाहरी दीवार और अक्षीय मंडपों को और दूसरी ओर किनारो पर खड़े स्तभों के बीच के अंतर को जोड़ती है। उपपीठ सामने की ओर एक और अधिक संकीर्ण मंच के रूप में समाप्त हो जाती है जिसके साथ पश्चवर्ती सीढ़ियां और सामने एक जंगला बना हुआ है। सामने के मंडप भाग के इन परिधि स्तंभों और उतार के भीतरी किनारे के दोनों ओर सामने या पूर्वी छोर पर के स्तंभों पर बड़े मूर्ति समूह तराशे हुए हैं, जबकि शेष स्तंभ ऐसे अलंकरण से वंचित हैं। वे सब कक्षासनों से जुड़े हैं, जो कि चालुक्य संरचनाओं में सामान्य हैं। अधिष्ठान भी और उसके ऊपर की बाहरी दीवार भी अंतरालों पर ग्यारह खंडों में बांट दी गई है, प्रत्येक रैखिक पार्श्व दीवारों पर तीन तीन, पिछले अर्धवृत्ताकार छोर पर तीन और दो सामने, जहां प्रवेश के बगली अंतराल मंडप के अगले दरवाजे को घेरने के लिए दीवार मुडती है। इन सभी ग्यारह खडों में देवकोष्ठ बने हैं, जो दक्षिणी शैली विमानों और उत्तरी शैली के प्रासादों के सभी नमूनों के मदिरों के अग्रभागो की चौखट मे स्थित हैं, यथा कूट, शाला, या कोष्ठ, पंजर, उद्गम और तोरण और उनमे देवताओं की स्पष्ट शिल्पाकृतियां हैं। इतना विकसित वैशिष्ट्य बाहरी दीवार के अर्धवृत्ताकार छोर पर उत्तरी दिशा में अधिष्ठान स्तर पर एक स्पष्ट प्रक्षिप्त प्रणाल के साथ जुड़ गया। यह गर्भगृह के फर्श से चलकर भीतरी दीवार

के आधार और संधार प्रचलन पथ से होती हुई आने वाली प्रणाल की निरंतरता में है। यह इस मंदिर के लिए सामान्यतया अनुमानित तिथि की अपेक्षा बाद की तिथि का संकेत देते हैं। अन्य विकसित लक्षणों जैसे विभिन्न टोड़ा रूपाकार, शिल्प शैली, उपपीठ की उपस्थिति आदि भी इस संदर्भ में विचारणीय हैं। यह और प्राकार के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित अवशिष्ट बाहरी गोपुर पर चालुक्य विक्रमादित्य द्वितीय (733-746 ई.) के एक लेख की उपस्थिति आठवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश के आरंभिक वर्षो में किसी तिथि का संकेत देती है। एक विशिष्ट चाप आकार की भीतरी दीवार गर्भगृह को घेरती है। इसकी दो रैखिक पार्श्व दीवारों के साथ आगे की ओर सगति में अंतराल मंडप के भीतर चार चार स्तंभों की दो पंक्तियां हैं जो उस स्थान को एक केंद्रीय नाभि के रूप में विभाजित करती हैं, जिस पर एक सपाट रोशनदानी छत है और नीची ढलवां प्रस्तर पट्ट निर्मित छतों सहित दो पार्श्व वीथिया हैं, जो बाहरी परिक्रमा की और भी नीची ढलवां छत के ऊपर हैं। आदितल की भीतरी दीवार के चाप छोर अंतराल मंडप का आगे का संकीर्ण प्रवेश निर्माण करते हैं। अग्रमंडप में चार स्तंभ हैं जो अधिष्ठान के अगले छोर के किनारे पर खड़े हैं। इन पर एक उठी हुई रोशनदान युक्त छत है। जो उसके पीछे की एक ऐसी ही छत की निरंतरता में है। अंतराल की वीथियां पूजाकक्ष के चारों ओर की दो दीवारों के बीच के आंतरिक प्रदक्षिणा पथ के साथ अवस्थित हैं। पूजाकक्ष एक वृत्ताकार पीठ के लिए रिक्त है। इसका मूल समर्पण अनिश्चित है। मंदिर के लिए दुर्गा नाम भ्रमकारक है क्योंकि यह स्पष्टतया देवी को समर्पित नहीं किया गया था। यह इस तथ्य के कारण भी हो सकता है कि पिछली शताब्दी तक यह मंदिर किसी किलेबंदी (दुर्ग या दुर्गम) का एक भाग था जिसके, शायद मराठों के सैन्य कार्यो का एक मलबा मंदिर के ऊपरी भाग पर पाया गया था। यदि उत्तरी प्रासाद प्रकार की असंगत अधिरचना मौलिक नहीं है, तो मंदिर या तो सपाट छत वाला रहा होगा या फिर टेर और चेजरल अर्धवृत्ताकार मंदिरों की शैली की अर्धवृत्ताकार छतवाला रहा होगा।

आठवी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश के साथ आरंभ होने वाले इस आरंभिक काल के राष्ट्रकूट पक्ष पर आते हुए हमारे पास एक अच्छे उदाहरण के रूप में पट्टदकल के बाहरी भाग में स्थित अवशिष्ट जैन विमान मदिर है। यह मूलभूत रूप से तिमंजिला संधार विमान है, आधार से शिखर तक वर्गाकार, जिसमें से नीचे के दो तल प्रकार्योचित हैं। अधिष्ठान के कपोत पर बने कुदु मॉटिफ के मूल नासिका आकार नष्ट हो गए है और वे सपाट त्रिकोणी उभार मात्र रह गए हैं, जो कि परवर्ती चालुक्य और होयसल मंदिरों के दंतिल उभारों के पूर्वगामी हैं। स्तभो पर उत्कीर्णन भी अपने मूल आकार और पुष्टता को खो चुके हैं और मात्र पारंपरिक आकारों में बदल गए हैं जैसे कि परवर्ती चालुक्य मंदिरों मे मिलते हैं। आदितल के सामने

और उससे एक छोटे अंतराल से जुड़े हुए नवरंग मंडप की दीवारों पर सात खड और छह मध्यवर्ती अंतराल हैं जो बैठे हुए जिनों और अन्य आकृतियों से युक्त नासिकाओं से सज्जित हैं। प्रस्तार मे कूटों, शालाओं और पंजरों का एक हार है। द्वितीय तल पर एक मंदिर है, जो आदितल की भीतरी दीवार के ऊपर की ओर विस्तार से घिरा है। इसके अंतराल के अग्रभाग पर शुकनासिका के आधार अंग का मुखौटा है, जबकि अन्य तीन दिशाओं में प्रस्तार मे चार कर्णकूट और तीन शालाएं हैं क्योंकि शुकनासिका के कारण सामने के भाग में शाला के लिए कोई स्थान ही नही है। कुछ कम चौड़ाई की तीसरी मंजिल सामने या शुकनासिका वाली दिशा को छोड़कर अन्य दिशाओं में उभारी गई है। दीवार के खंडों मे उद्गम मॉटिफ है जैसे कि उत्तरी शैली के मंदिरों में होते हैं। तदनुरूप वर्गाकार शिखर बारह कमानियों वाला है जो परवर्ती चालुक्य मंदिरों में इसी प्रकार के परिष्कारों की पूर्व घोषणा करता है। नवरंग के सामने बहुस्तंभी मुखमंडप है, जिसकी परिधीय पंक्ति में सन्निविष्ट कक्षासन हैं। नवरंग के सामने संसक्त परिधीय शृंखला के दो अंतरंग स्तंभों के अतिरिक्त, शेष सभी, साथ ही चार केंद्रीय स्तंभ, यद्यपि बालुकाश्म के हैं, किंतु आंशिक रूप से खराद पर आकार दिए हुए हैं, जो परवर्ती चालुक्यों और उनके उत्तराधिकारियों के स्तरित चट्टानों या सेलखड़ी के संपूर्णतया खराद पर आकार दिए गए स्तंभो की पूर्व घोषणा है।

बादामी के पूर्ववर्ती चालुक्यों की एक सगोत्री शाखा के वंगी के पूर्वी चालुक्यों ने, फिर भी, बालुकाश्म में बने संरचनात्मक मंदिरों की एक शृंखला छोड़ी है जो अपनी शैली में उनके दक्षिण में तोंडैमंडलम की पल्लव शैली के अधिक समान है। इनमें से 'बिक्कावोलु' (पूर्व गोदावरी जिला) स्थित मंदिर विशिष्ट हैं। बिक्कावोलु शृंखला दो समूहों मे है। पूर्ववर्ती समूह में कंसारगुड़ी, नक्कालीगुड़ी और स्थानीय नाम सहित एक तीसरा मंदिर सम्मिलित है, जो सब, शायद गुणग विजयादित्य (848-891) और उसके उत्तराधिकारियों के काल मे बने। वे सब आयोजन में वर्गाकार, त्रितल नागर विमान हैं, जिनके आदितल और द्वितीय तल प्रस्तारों पर चार अंतस्थ कर्णकूट और शालाएं हैं, ये पंजरों के बिना और शुकनासिका से वंचित हैं। ये लक्षण पल्लव प्रकार के निर्माणो के साथ उनकी साम्यता और सन्निकटता का संकेत देते हैं, तथापि उनकी विशिष्ट क्षेत्रीय और पैतृक चालुक्य विशेषताएं अन्य लक्षणों और विमान रूप के सामान्य महत्व से स्पष्ट है। मकरतोरणों के निर्माण में बारीकियों पर बड़ी कुशलता प्रदर्शित की गई है–विशेष रूप से यह बात मेहराब के शीर्ष पर शिखांत (कलसी) के दोनों ओर मकर मस्तकों की जोड़ी निर्मित कर। भित्तिस्तंभ सभी आरंभिक मंदिरों के समान चार पार्श्वो वाले हैं, 'पद्धति' के पूरे चिह्न है। मुड़े हुए कोर्निस या कपोत में कुदुघोड़े की नाल के आकार के हैं जैसे पल्लव और आरंभिक चालुक्य उदाहरणों में प्राप्त होते हैं। गांव के अंदर

अन्य तीन मंदिर—गोलिंगेश्वर, चंद्रशेखर और राजराजेश्वर दूसरे और परवर्ती समूह (950-1050) में आते हैं और अंतिम शायद राजराजा नरेंद्र (1019-1060) के समय का है। वे भी दो या तीन मंजिले नागर विमान हैं। आयोजना में वर्गाकार हैं किंतु उनकी अधिसंरचनाएं पूरी तरह या आंशिक रूप से परवर्ती काल में पुनर्प्रतिष्ठित की गई हैं और उन पर भारी प्लस्तर चढ़ा दिया गया है, जो अनेक मूलभूत नैदानिक लक्षणों को छिपा देता है। इन मंदिरों में एक विशेष चालुक्य नींव आकार है जिनमें निरंधार या इकहरी दीवार वाला आदितल और सामने और अधिक संकीर्ण अर्धमडप है। ताको में सभी शिल्पाकृतिया शैव संप्रदाय की हैं। शिखर भी वर्गाकार है और ग्रीवा भी। कुछ मामलों में, जैसा कि राजराजेश्वर में तल प्रस्तार के ऊपर हार से वंचित हैं। यह एक ऐसा लक्षण है, जो आंध्रतट के परवर्ती मंदिरों में सामान्य हो गया। पूर्ववर्ती समूह के शिखर का आकार बादामी स्थित उच्च्च शिवालय के शिखर के सदृश्य है।

संरचनात्मक पाषाण मंदिर—मध्यावस्था

चोल साम्राज्य की शक्ति ईसवी सन् 1000 तक अपने चरम बिंदु पर पहुंच गई थी। संपूर्ण तमिल क्षेत्र और केरल, दक्षिण मैसूर के भागों और तटीय आंध्र और समुद्र पार श्रीलंका, अंडमान, लक्षद्वीप और मालदीव तक उसकी चोलसत्ता का विस्तार हो चुका था। दक्षिण में समकालीन प्रतिस्पर्धी शक्ति थे राष्ट्रकूट; परंतु इन्होंने शीघ्र ही पुनः शक्तिशाली हो उठे कल्याणी के चालुक्यों के सामने अपने हथियार डाल दिए थे। ये चालुक्य प्रायः पश्चिमी या परवर्ती चालुक्य भी कहे गए है। पाषाण के निर्माण में प्राप्त अनुभव और जानकारी, तकनीक और अभिकल्पन और वर्गीकृत आगम तथा शिल्प ग्रंथों में केंद्रीभूत रूपाकारों और मानदंडों के साथ अनुवर्ती समय में मंदिर निर्माण में विशेष रूप से दक्षिण भारत और श्रीलंका के महान मंदिरों के निर्माण की बहुत गतिविधि देखी गई। चोल सम्राट महान राजराजा चोल प्रथम (985-1014), उसकी बड़ी बहन, रानियों और सामंत सरदारों द्वारा बहुत अधिक संख्या में नए मंदिरों का निर्माण कराया गया। कुछ और मंदिरों का निर्माण राजराजा प्रथम के भाई के पौत्र, धर्मनिष्ठ गंधारादित्य चोल की विधवा रानी सेबियान महादेवी द्वारा करवाया गया।

चोल और परवर्ती पांड्य श्रृंखला

तंजावुर स्थित बृहदीश्वर मदिर और उसका तत्काल अनुवर्ती गंगैकोंडाचोलपुरम (तिरुचिरापल्ली जिला) स्थित वृहदीश्वर महत्ता, अभिकल्पन की गुणवत्ता तकनीक और अलंकरण मे दक्षिणी विमान के वास्तुशिल्प की पराकाष्ठा का चिह्न है। तंजावुर का महान मंदिर, जिसे बृहदीश्वर कहा जाना उपयुक्त ही है, अपने निर्माता राजराजा प्रथम के नाम पर राजराजेश्वर भी कहलाता है। इसकी परिकल्पना विशाल स्तर पर एक संपूर्ण परिसर के रूप में की गई थी और इसका निर्माण उसके संस्थापक द्वारा ही पूरा करवा लिया गया था। यह तमिल वास्तुशिल्प का महत्वाकांक्षी उद्यम और उपलब्धि है। इसमें वह सब कुछ सन्निहित है, जो मंदिर निर्माण परंपरा में सर्वोत्तम है—वास्तु, शिल्प चित्रांकन और संबद्ध कलाएं। यह एक विशाल परिसर है जिसमें

विमान और उसके समकालीन अक्षीय मडप के सामने एक भारी एकाश्मक वंदी एक ऊंचे पीठ पर लेटी हुई मुद्रा में है, किंतु अब उस पर काफी बाद में निर्मित एक मंडप है। यह अब तक ज्ञात या उपलब्ध सबसे ऊंचा विमान है, जो 66 मीटर ऊंचा है और एक वर्गाकार आधार पर खड़ा है जिसकी एक भुजा की लंबाई 28 मीटर है और जो, उत्तुंगता के सही अनुपात में, एक उपयुक्त चौड़ा, ऊंचा, प्रचुरता से गढ़ा हुआ उपपीठ बनाता है, जिस पर पूर्वाभिमुखी सूचीस्तंभीय (पिरामिडी) विमान का स्पष्टता से गढ़ा गया अधिष्ठान स्थित है। उसी उपपीठ और अधिष्ठान को अक्षीय रूप से बने अर्ध, महा और मुखमडप की आधारभूत संरचना के रूप में आगे की ओर बढ़ा दिया गया है। ये मंडप मुख विमान से अर्धमडप के आरपार एक उत्तर दक्षिण अनुप्रस्थ से जोडे गए है, जिस तक दोनो ओर से उपपीठ और अधिष्ठान की ऊंचाइयों पर बनी सीढ़ियों से पहुंचा जा सकता है। स्तंभों से युक्त महा और मुखमंडप अपने पार्श्वो पर वंद हैं और उनके भीतर स्थित स्तंभ एक केंद्रीय नाभि और पार्श्व वीथियों का गठन करते हैं, जो महामंडप वाले भाग में नाभि द्वारा बनाए गए केंद्रीय गलियारे के दोनों ओर अविच्छिन्न मंच के रूप में उठा हुआ है। स्तंभों और सामने के उतार के ऊपर की छत की संरचना एक खुली ड्योढ़ी या अग्रमंडप बनाती है। ये अधिष्ठान और उपपीठ पर परवर्ती प्रतिस्थापन है जिसके साथ सामने की ओर सीढ़ियों का एक जीना जोड़ दिया गया है, जो पार्श्वो पर बनी दो मूल सीढ़ियों के अतिरिक्त है। जबकि अनुप्रस्थ (आडे) अभिकल्पन से बना मुखमंडप और संयोजक अनुप्रस्थ गलियारा चार मजिलों तक उठा हुआ है, किंतु महामंडप मूल रूप से तिमंजिला था। सवसे ऊपर की मंजिल स्पप्ट रूप से खुली छत थी, जिसकी दीवारों के कंगूरों पर नंदियों की एक पंक्ति वनी हुई है।

गर्भगृह को घेरता हुआ विमान का आधार भाग द्वितल है और संधार प्रणाली में दुहरी दीवार वाला है। दोनों वाहरी और भीतरी दीवारें एक समान मोटाई की और ठोस हैं। पंद्रह मीटर की ऊंचाई तक ऊर्ध्वस्थ उठती हुई वाहरी दीवार बाहर से दो मंजिलो में चिह्नित है, निचली और ऊपरी, जो एक क्षैतिज प्रस्तार रेखा से विभाजित है, जिस पर स्पष्ट रूप से कोर्निस और मध्यवर्ती अतिरिक्त द्वार हर दृष्ट दिशा दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में दरवाजो की चौखट के समस्त उपादानों सहित बने हुए हैं, क्योंकि विमान पूर्वाभिमुखी है। ये दोनों दीवारें दोनों मंजिलों के ऊपर नीचे के स्तर पर भीतरी प्रदक्षिणा पथ को घेरती हैं, क्योकि भीतरी दीवार भी गर्भगृह में स्थापित विशालकाय लिंग और उतनी ही विशाल लिंगपीठ को समायोजित करने के लिए दो मंजिल की उसी ऊंचाई तक ऊर्ध्वस्थ उठती है। नीचे के अधिष्ठान के समान ही, वाहरी दीवार हर दिशा मे बाहर की ओर से पांच खंडों में उभरी हुई है जिनमें से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में मध्य के खंडों में दो स्तरों पर, एक

के ऊपर एक द्वार बने हुए हैं जो दोनों मंजिलों के भीतरी प्रदक्षिणा पथ के लिए हैं। ये और इनके साथ पूर्व में दो अध्यारोपित बड़े या मुख्य द्वार, विमान को चौमुख या चतुर्मुख संरचना बनाते हैं जिसे ग्रंथों में सर्वतोभद्र कहा गया है। पूर्व में सामने मुख्य द्वार के पीछे दीवारों की स्थूलता में वेध गर्भगृह के भीतरी द्वार तक जाने वाले संधार परिपथ के आरपार अंतराल पथ प्रदान करते हैं। इस अंतराल के सामने उत्तर-दक्षिण अनुप्रस्थ पथ बना हुआ है जिसके साथ दोनों उत्तर और दक्षिण पार्श्वों पर, पूर्व वर्णित सीढ़ियां बनी हुई हैं।

बाहरी द्वार पर, बाहरी प्रवेशों के समान ही दो विशालकाय द्वारपाल हैं। बाहरी दीवारों के मध्यवर्ती खंडों के ऊपर, जो कि द्वारों सहित सबसे चौड़े हैं, द्वितीय तल के प्रस्तार के ऊपर उस दिशा के हार की सबसे बडी शाला अवस्थित है। छोर पर स्थित खंड जो कोने बनाते हैं, मध्यम चौड़ाई के हैं और उन पर कर्णकूट हैं। कम चौड़ाई के मध्यवर्ती खंडों पर पंजर हैं, और इस तरह वे द्वितीय तल प्रस्तार के ऊपर॰पूरा हार बनाते हैं। आदितल के ऊपर के हार का विलोप कर दिया गया है। द्वार सहित मध्य खंड के दोनों ओर के खंडों में संपूर्ण देयकोष्ठ हैं जिनमें विभिन्न देवताओं की उत्कृष्ट और बड़ी शिल्पाकृतियां हैं। हर ताक में उत्कीर्ण आकृति के प्रतिमा विज्ञान के साथ जुड़ी पुराण कथाएं संक्षिप्त ढंग से छोटे उत्कीर्णनों द्वारा मुख्य शिल्पाकृतियों के दोनों ओर के द्वार खंभों पर चित्रित की हैं। यह अभिनव प्रयोग पहली बार आरंभिक चोलकाल में देखा गया। चार मध्यवर्ती अंतराल सजावटी भित्तिस्तंभों से युक्त हैं। इस 'मॉटिफ' में एक छोटे भित्तिस्तभ के ऊपर मंदिर का मॉटिफ (नमूना) सामने का पंजर है, जो उस काल की विशेषता है। खंडों के कोने पर स्थित मुख्य भित्तिस्तंभ और दीवारों के साथ उनके कोण खंडों में वर्गाकार हैं और स्तंभ शीर्षों सहित हैं। आरंभिक पल्लव स्तंभ शीर्षो के समान फलक, बड़े स्थूल और वर्गाकार हैं, किंतु पोतिकाएं प्रवणित पृष्ठ पर केंद्रीय त्रिकोणात्मक जोड़ों के साथ प्रवणित हैं।

निचली मंजिल की भीतरी दीवार पर उसकी तीनों दिशाओं में विशाल भित्तिस्तंभों के बीच में और बाहरी दीवार के द्वार के सामने दक्षिण में बैठे हुए शिव, पश्चिम में नृत्यरत शिव और उत्तर में बैठी हुई दुर्गा की मानवाकार से भी बड़ी मूर्तियां हैं। इस निचले प्रदक्षिणा पथ में भीतरी दीवार के शेष भाग पर, और भित्तिस्तंभों, भीतर छतों और बाहरी दीवार के आंतरिक फलक पर भी चोलकाल के विस्तीर्ण भित्ति चित्रांकन हैं, जो सत्रहवीं शताब्दी के नायककाल के परवर्ती चित्रोपरि चित्रित चर्मपत्रों से आच्छादित है। चोल स्तर वहां वहां पर वर्तमान में दिखाई पड़ता है, जहां जहां क्षतिग्रस्त नायक स्तर उतर गया है। भीतरी दीवार पर उपलब्ध स्थान के लगभग समस्त खंड में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय छाए हुए हैं वे हैं, त्रिपुरांतक रूप में शिव का फलक, शिव संत सुंदरमूर्ति नयनार की कहानी

कहने वाला फलक और वह फलक जिस पर चेर राजा को अपनी रानियों और परिजनों सहित चिदम्बरम के नटराज के मंदिर में पूजा करते हुए दिखाया गया है। नर्तकों, संगीतकारों, पक्षियों, पशुओं आदि के अन्य चित्र भी रोचक हैं। अजंता की बौद्ध गुफाओं में विस्तृत प्रकार के आरंभिक चित्रांकनों और सित्तान्नवशाल की जैन गुफा मंदिरों में छोटे से क्षेत्र में चित्रांकन के बाद यही एक उच्चस्तरीय विस्तृत शृंखला है, जो भारतीय भित्ति चित्रांकन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण युगांतरकारी चिह्न है। द्वितीय तल का प्रदक्षिणा पथ भी इतना ही रोचक है, क्योंकि इसकी दीवार के भीतरी फलक पर मध्यम ऊंचाई पर एक सौ आठ वर्गाकार फलक हैं जो कमरबंद के समान चारों ओर बने हुए हैं। अंतिम सत्ताईस को छोड़कर सभी में, शिव, चतुर्भुज, नृत्य के विभिन्न करणों या मुद्राओं को प्रदर्शित करते शिव के उत्कीर्णन हैं जो भरत के नाट्यशास्त्र के निर्देशानुसार हैं।

कदलिका करण या दो दीवारो के दो विपरीत फलकों के आनुक्रमिक भीतरी मार्गों को भीतर से टोडा (सहारा देने के लिए दीवार में से प्रक्षिप्त पाषाण या काष्ठ) लगाने की एक विधि द्वारा, जो दो स्थानों को जोड़ने के लिए मेहराब के विकल्प के रूप मे भारतीय वास्तुशिल्प में सामान्य रूप से अपनाई जाती है, दीवारों को तीसरी मंजिल के शीर्षस्तर पर जोड़ दिया गया है। यहीं से उठती है उस आरोही विमान के क्रमशः और पीछे हटते हुए ग्यारह तलों की शेप पिरामिडीय अधिसंरचना ! उसके उपपीठ से संपूर्ण सोलह चरणों तक चढ़ती हुई; संभवतया परंपरा से यही सर्वोच्च अनुमत सीमा है।

प्रत्येक तल के प्रस्तार के ऊपर कूटों, शालाओं और पंजरों का एक एक हार है। शीर्षस्थ तल पर हार के स्थान पर चार कोनों पर चार नंदी हैं जिनके बीच से अष्टभुजाकार ग्रीवा और शिखर ऊपर उठते हैं। अंतिम अतराल को भरने वाले शीर्षस्थ पाषाणो का अकेले भार उनके आकार के अनुसार 80 टन (81.3 मीट्रिक टन) अनुमानित है। स्तूपी, जैसा कि राजराजा का मूलाशय था, और जैसा कि मंदिर में उसके शिलालेख में कहा गया है, सोने की कलई चढ़े ताम्र की है और 3.82 मीटर ऊंची है। अपने आधार से शिखर तक सूची स्तंभ (पिरामिड) का संपूर्ण अंतर्भाग कदलिका करण पद्धति में चिनाई के आनुक्रमिक मार्ग, द्वारा अंदर ही अंदर क्रमश. खोखला बनाया गया है। सामने का भाग पांचवीं मंजिल के स्तर तक सबसे नीचे दो उर्ध्वगामी तलों पर थोड़ा आगे की ओर बढ़ा हुआ है, जिसका आकार मुखशाला या मुखभद्रा कहा जाता है जिससे कि इन मार्गो को भी विमान की आंगिक योजना में सम्मिलित किया जा सके। यह द्रविड़ पद्धति का सबसे बड़ा मुख्य विमान है।

उत्तरी दिशा के लगभग मध्य में अधिष्ठान के ऊपर से एक विशाल और तराशी हुई पानी की टोंटी प्रक्षिप्त है, जो मंदिर कक्ष से बाहर बहते अभिषेक जल को निकालती है। दोनों दीवारों के आधारों और बीच में बने संधार प्रदक्षिणा पथ

के फर्श में वनी नालियों से पानी बहता है। इस लंबी प्रणाल को उपपीठ के ऊपर शंख फूंकते वैठे हुए भूत का अवलंब मिलता है। इस प्रणाल के सामने थोड़ा पूर्व की ओर शिव मंदिर के भृत्य चंडिकेश्वर के लिए एक समकालीन वर्गाकार विमान है। राजराजा द्वारा अपने महान मंदिर में निर्धारित की गई यह स्थिति बाद के काल के सभी शिवमंदिरों के लिए आदर्श बन गई।

विमान और उसके अक्षीय मंडपों के आसपास के खुले प्रांगण को घेरती हुई एक द्विस्तरीय उसी काल में निर्मित प्राकार की दीवार है। नंदी मंडप भी इस प्राकार के भीतर ही है। स्तरों को वाहरी रूप से मध्यम ऊंचाई पर एक क्षैतिज कपोत रेखा से विभाजित किया गया है। प्राकार के दोनों स्तरों को थोड़ी थोड़ी दूरी पर भित्तिस्तंभ तराश खंडों में बांट दिया गया है। प्राकार में पूर्वी दिशा के मध्यम में एक विशाल गोपुर बनाया गया है जो पूर्णरूपेण पत्थर का है। प्राकार के भीतर उसकी दीवार के साथ एक अविच्छिन्न द्वितल मालिका निर्मित है जिसके ऊपर एक तीसरी खुली छत है और जो चार कोनों और तीन पार्श्वो पर मध्य में अष्टभुजाकार ग्रीवा शिखर युक्त सात वर्गाकार त्रितल विमानों द्वारा बाधित है। ये आठ दिक्पालों—अग्नि, यम, निरुति, वरुण, वायु, सोम और ईशान—को दक्षिण-पूर्व से आरंभ होकर वृत्ताकार में उत्तर-पूर्व तक समर्पित है। आठवें दिग्पाल इंद्र के लिए और एक सूर्य के लिए भी पूर्व में गोपुर के ऊर्ध्वगामी आधार के भीतरी भाग में सन्निहित है। शेष के लिए, मालिका को स्तंभों की एक पंक्ति से विभाजित कर दिया गया है। ये स्तंभ अग्रभाग के स्तंभों के साथ पंक्तिबद्ध होकर सामने एक अविच्छिन्न गलियारा और एक पार्श्ववर्ती छत्तीस मंदिरों की शृखला बनाते हैं जो द्वि या त्रितल विमान हैं। दिग्पालों के मंदिरों के अतिरिक्त सभी मंदिर मंडप प्रकार की सपाट छत वाले हैं। प्राकार के ऊपर नंदियों की एक पंक्ति है। गोपुर के सामने और उससे कुछ दूरी पर एक वाहरी और बड़ा गोपुर है, जो शायद मूल रूप से एक बाहरी प्राकार के साथ था, परंतु अब काफी बाद के समय में बनी सुरक्षात्मक किले की दीवार का अंग है। भीतरी गोपुर के अतिरिक्त प्राकार में तोरण द्वार की श्रेणी के तीन छोटे और अतिरिक्त प्रवेश वने हैं, जो मुख्य विमान के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं के मध्य के सामने बनाए गए हैं। ये शाखायुक्त सादे दरवाजों वाले हैं और इनके ऊपर क्षैतिज शहतीरें रखी हुई हैं।

बृहदीश्वर वास्तव में सभी प्रकार से महान है जैसा कि उसके धर्मपरायण और विजयी राजसी निर्माता ने उसकी कल्पना की थी। वह कला की हर शाखा—वास्तुकला, पाषाण और ताम्र में शिल्पांकन, प्रतिमा विज्ञान, चित्रांकन, नृत्य, संगीत, आभूषण निर्माण, उत्कीर्णन आदि का भंडार है। इस पर उत्कीर्ण अनेक संस्कृत और तमिल पुरालेख उत्कृष्ट सुलेख में हैं। इनमें से कुछ विभिन्न देवताओं की धात्विक मूर्तियों के समर्पण से संबंधित हैं, जिनमें उनके रूपाकार, रूप रंग, उनके आकार-प्रकार और

भार के विवरण दिए गए हैं। इनमें कुछ मूर्तियां अभी विद्यमान हैं। कुछ पुरालेखो में विभिन्न आभूषणो का, उनके स्वर्ण और रत्नो के भार, उनके प्रकार और गुण, उन्हे पहनाने की विधि, उपयोग में लाई गई लाक्षा और धागे के भार आदि का विवरण दिया गया है। धर्मस्व भूमि का नाप इकाई के अशों तक बताया गया है। यह सब केवल इस बात का प्रमाण है कि अपने इस महान मदिर से संबंधित मामलों में सम्राट कितना सतर्क था।

इस मंदिर के प्रांगण के भीतर अन्य संरचनाएं हैं—दक्षिणमुखी अम्मान मंदिर या वृहदीश्वर की पत्नी बृहन्नायकी का देवी मंदिर, जो नंदी के उत्तर मे स्थित है और यह विमानशाला, शिखर और अक्षीय मंडपो से युक्त है। इससे जुड़ा हुआ नटराज का सभामंडप भी दक्षिणमुखी है। दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम मे पूर्वाभिमुखी गणेश और सुब्रह्मण्य मंदिर हैं। यह सब इस परिसर में बाद में जोड़े गए हैं जिसमें से अंतिम नायक काल का है।

चोलों की यह भव्य रचना सन् 1003 में आरंभ हुई थी, और अपनी कुछ सूक्ष्मताओ की दृष्टि ये यह अभी अपूर्ण ही थी कि वीस वर्ष के भीतर ही एक अन्य चोल संरचना का निर्माण आरंभ कर दिया गया और उसे भी वृहदीश्वर नाम दिया गया। इसका निर्माण राजराजा के महान पुत्र और योग्य उत्तराधिकारी—राजेंद्र प्रथम चोल द्वारा उसी आयोजना और प्रतिमान पर करवाया गया। इस महान मंदिर के स्थान के लिए नई बनी राजधानी गंगैकोंडाचोल पुरम (तिरुचिरापल्ली जिला) को चुना गया। राजधानी का यह नाम राजा की उपाधि पर से रखा गया, जो गंगा तक उसकी विजयों और सफल अभियान की सूचक थी। इस मदिर के केवल दो प्रवेश हैं—एक गोपुर (अव खंडहर मात्र) जो पूर्व में है और एक सादा दुमंजिला तोरण द्वार उत्तर दिशा में है। तथापि पिछली शताब्दी में निकट ही नदी पर बन रहे एक बाध के निर्माण में पत्थरों की आपूर्ति के लिए पत्थर के प्राकार का एक वडा भाग, गोपुर, दुमंजिली मालिका, उपमंदिरों और मंडपों को विस्फोट से उड़ा दिया गया था, फिर भी मुख्य विमान और उसके अक्षीय मंडप और प्रांगण में स्थित दो तीन छोटे विमान सौभाग्यवश वच गए और अभी भी लगभग अखंडित हैं। तंजावुर स्थित अपने पूर्ववर्ती प्रतिमान से यह विमान कम ऊंचाई का और आकार-प्रकार में छोटा है, किंतु दीवारों की ताकों में उत्कीर्णन स्पष्ट और लगभग गोलाई मे तराशे हुए और शायद अधिक श्रेष्ठ है। एक ऊंची उपपीठ पर स्थित उभरे हुए अधिष्ठान पर निर्मित विमान इसी तरह अपने दो ऊर्ध्वगामी निम्न तलों में संधार है। 'गंगैकोंडाचोलपुरम' का बृहदीश्वर विमान तंजावुर स्थित अपने इस नाम के पूर्ववर्ती और तथाकथित प्रतिमान एक महत्वपूर्ण पक्ष में भिन्न है। दोनों क्रियाशील निम्नतलों के लिए इसमें केवल एक प्रवेश पूर्व में है और यह तंजावुर के मंदिर के समान चतुर्मुख या सर्वतोभद्र नहीं है। तृतीय तल पर स्थित ऊपर के तलों की

शुंडाकार (क्रमशः पतली होती) अधिरचना कदलिका करण पद्धति से बनाई गई है, जो तंजावुर विमान के कोनों पर की एकदम सरल रेखाओं के विपरीत कोनों की बाहरी रेखाओं को झुका हुआ रूप देती है। यह एक सौंदर्यपरक उपलब्धि है, जो ऊपरी तलों के हार तत्वों में स्थित अष्टभुजाकार कूटों को कोनों पर कर्णकूटों के रूप में सन्निविष्ट करने का परिणाम है। यह कहा जा सकता है कि इस विमान का बाह्य रूप गुण, उत्कृष्टता और स्पष्ट कृति की विविधता में और अधिसंरचना की सौंदर्यपरक डिजाइन में अपने पूर्ववर्ती से श्रेष्ठ है। फिर भी, आंतरिक रूप में यह अन्य अलंकरणों से रहित है, जैसे चित्रांकन और नृत्यों के चित्रण में। मुख्य विमान के दोनों ओर स्थित उत्तर कैलास और दक्षिण कैलास कहलाने वाली छोटी मंदिर इकाइयां भी लगभग उसी काल की हैं।

मद्रास के निकट तिरुवोर्रियुर मंदिर का काले पत्थरों से निर्मित पूर्णरूपेण अर्धवृत्ताकार और बहुमंजिला मुख्य विमान एक अन्य उत्कृष्ट मंदिर है, तथापि यह राजेंद्र प्रथम चोल की एक अपेक्षाकृत छोटी संरचना है। इसका संस्थापना शिलालेख इस अर्थ में रुचिकर है कि यह निर्माण में प्रयुक्त पत्थर को कृष्ण शिला के रूप में परिभाषित करता है तथा विमान के उन अंगों का विवरण देता है, जिससे विमान अलंकृत किया गया है और साथ ही वास्तुशिल्पी अभिकल्पक का नाम भी बताता है। इसके अनुसरण में तमिलनाडु के इस भाग में, जो परवर्ती चोलकाल और उत्तर कालों में तोंडैमंडलम कहलाता था, पूर्ण रूप से अर्धवृत्ताकार मंदिरों या चतुर्भुज आदितल और अर्धवृत्ताकार अधिसंरचना और ग्रीवा शिखर युक्त मंदिरों का निर्माण चलता रहा। ऐसे मंदिर आगे और दक्षिण में चोल और पांडिमंडलम में विरल ही हैं।

चोल राजेंद्र द्वितीय (1146-1173) द्वारा निर्मित् दारासुरम स्थित राजराजेश्वर, अब ऐरावतेश्वर और चोल कुलोत्तुंग तृतीय (1178-1223) द्वारा त्रिभुवनम (दोनों तंजावुर जिले में) स्थित कंपहरेश्वर परवर्ती चोलों के संपूर्णरूपेण पाषाण से निर्मित विमानों वाले अंतिम महान मंदिर हैं। ये तेरहवीं शताब्दी के मध्य में चोलों को पांडयों द्वारा उखाड़ देने के पहले बनाए गए थे। ये दोनों मूलभूत रूप से दोनों बृहदीश्वर विमानों के लघु संस्करण हैं, किंतु उनकी डिजाइन में कुछ विभिन्नताएं और कुछ प्रयोग भी समाविष्ट किए गए जो चालुक्य राष्ट्रकूट प्रभाव के सूचक हैं। ऐरावतेश्वर की पंचतल विमान अधिरचना में तल हारों में कोने के तत्वों का एक बुद्धिमत्तापूर्ण रूपांतरण है, जो वर्गाकार, अष्टभुजाकार और वृत्ताकार कर्णकूट हैं, जो नागर, द्रविड़ और वेसर श्रेणी के अनुरूप हैं। इसके अतिरिक्त अर्धवृत्ताकार वेसर श्रेणी के पंजर एक निम्नतल के कोनों पर तिरछे मोड़ दिए गए हैं। शीर्षस्थ तल पर चार वर्गाकार कर्णकूट हैं जिनके दोनों ओर एक एक लेटा हुआ नंदी है। यह प्रयोग चोल राजेंद्र प्रथम द्वारा उसके परवर्ती मंदिरों में किया गया था। यह लगभग एक शताब्दी तक कुछ मंदिरों में चलता रहा और फिर पहले के समान ही अदृश्य

हो गया जिससे केवल नंदियों के लिए स्थान बचा रहा। परंतु इसके साथ ही राजराजा द्वितीय का यह मंदिर अन्य मंदिरों में कोनों पर नंदी की जोड़ियों या ऐसे ही वाहनों या लांछनों को स्थापित करने के विचार का आरंभ करता है—जो परवर्ती कालों में पीठ से पीठ सटाकर या समाचयी रूप में एक ग्रीवा और मस्तक किंतु साथ साथ खड़े दो शरीरों के साथ बनाए गए। एक अन्य लक्षण जो पल्लवों के बाद के मंदिरों और आरंभिक चोल मंदिरों में छोड़ दिया गया, किंतु चालुक्य शृंखला के समस्त मंदिरों में बना रहा और फिर से इस मंदिर में पाया गया, वह है—आदितल के सामने अनुप्रस्थ मार्ग के आगे तक अक्षीय मंडपों के शीर्षों के ऊपर कूट, शाला और पंजरों के हार का विस्तार। विमान और मंडप का मुख्य अक्षीय परिसर बृहदीश्वर की योजना के समान है। यद्यपि यह आकार-प्रकार में छोटा है, किंतु यह ताकों में स्पष्ट और गोल शिल्पांकनों और लघु फलको द्वारा संगठित पौराणिक दृश्यों के उत्कीर्णनों से अलंकृत है। विमान की दीवारों के आधार के चारों ओर कमरबंद के समान बनी पट्टीप पोटियापुराणम ग्रंथ के अनुसार 63 शैव नयनमारों की जीवन कथा संक्षिप्त रूप से कही गई है। दीवार के ताकों और मालिका गलियारों में निर्मित बड़ी, मुक्त शिल्पाकृतियों में एक नए माध्यम बसाल्ट जैसे एक पालिशदार पत्थर का उपयोग किया गया है, जबकि संरचना ग्रेनाइट की है। वे सारी मूर्तियां उत्कृष्ट स्तर की हैं और उनमें से अधिकांश को हटाकर अब तंजावुर कला दीर्घा में प्रदर्शित किया गया है। इस पूर्वमुखी परिसर के बंद महामंडप के साथ एक खुली ड्यौढ़ी जैसा अग्रमंडप उसके दक्षिण में है, जिसके तराशे गए अलंकृत स्तंभों पर फलक शिल्पांकन हैं। ड्यौढ़ी जैसे मंडप की रचना भी घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथ के सदृश्य की गई है, जबकि आगे पीछे की सीढ़ियों पर हाथियों द्वारा रक्षित जंगले बने हैं।

महामंडप की उत्तर दिशा में, प्रतिष्ठापित देवता की पत्नी, देवी के लिए एक कामचलाऊ अम्मान मंदिर है। यह समस्त भीतर की ओर चारों तरफ बने गलियारे की एक मंजिला मालिका और सामने एक मंजिला गोपुर से घिरा हुआ है। इस गोपुर के बाहर एक अलंकृत किंतु छोटा नंदी मंडप है। इससे भी आगे एक बाहरी गोपुर है, जो अब अवर्तमान एक बाहरी प्राकार का अग्रभाग है।

ऐरावतेश्वर परिसर के उत्तर में अग्रगोपुर युक्त एक अलग अहाते में स्थित दिवानाथ का अम्मान मंदिर भी समकालीन है, और विमान की एक मंजिली संरचना पर देवी मंदिरों के उपयुक्त शाला शिखर हैं, आदितल की दीवारों में बने भित्तिस्तंभ व्याल आधारित हैं, जैसे कि काफी पहले के बने राजसिंह पल्लव मंदिर में हैं।

कम्पट्टरेश्वर ऐरावतेश्वर के सदृश्य है। उसका पट्टियों वाला ड्यौढ़ी मंडप, विमान के आदितल के सामने के अक्षीय मंडपों के ऊपर हार तत्वों का विस्तार भी वैसा ही है। अम्मान या देवी और चंडिकेश्वर विमान एक दूसरे के समकालीन

हैं। यह मंदिर भी विविध प्रतिमा विज्ञान की मूर्तियो का वास्तविक संग्रहालय है जिसमें कुछ उत्कृष्ट नृत्य मुद्राएं भी हैं। समकालीन मुख्य गोपुरों में से सामने का भीतरी और पीछे के गोपुर शीर्ष पर नष्ट हो गए हैं और बाहरी सामने वाला ऊंचा गोपुर उस काल के विशेष गोल मटोल आकार का है।

इस परवर्ती चोल और परवर्ती पांड्य काल के मंदिरों की शृंखला अल्पकालीन मुस्लिम आक्रमण के कारण आई बाधा से टूटी और फिर दक्षिण के विजयनगर साम्राज्य के अंतर्गत पुनरुजीवित हुई। इस शृंखला में प्रायः पाषाण के बने विमानों और गोपुरों पर अधिसंरचनात्मक तलों के निर्माण के लिए ईटों का प्रयोग करने की पद्धति फिर से अपनाई गई, जबकि केवल मंडप पूर्ण रूप से पत्थर के ही बनते रहे। इस और इसके बाद के काल के मंदिरों की मूल आयोजना और मंदिर परिसर की रचना में राजेद्र प्रथम चोल के उत्तर काल में प्रचलित किए गए एक नए और विशिष्ट परिवर्धन को समाविष्ट किया गया। इस परिवर्धन को शैव मदिरों तिरुक्कामकोट्टम या अम्मान मंदिर या वैष्णव मदिरों में तायर सन्नधि कहा जाता है, जो तमिलनाडु और अन्यत्र तमिल निर्मित सभी मंदिरों का विशिष्ट लक्षण बना। उदाहरण के लिए, काशी वाराणसी में भगवान विश्वेश्वर की पत्नी के लिए तमिलों द्वारा निर्मित विशालाक्षी मंदिर है। ये पहले से बने उन मंदिरों के प्रांगण मे या उनके साथ में भी बनाए गए जिनमें मूलरूप से ये नहीं थे, जैसे कि, उदाहरण के लिए तंजावुर बृहदीश्वर। परिसर में इन्हें एक निश्चित स्थान देकर, शाला शिखर युक्त एक अलग विमान बनाया गया जिसमें मुख्य विमान में प्रतिष्ठित देवता की पत्नी के रूप में देवी को स्थापित किया गया और जिसे पूजा अनुष्ठान में और उत्सवों में समान महत्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार, मुख्य देवता के स्थानीय नाम के अनुरूप देवी पत्नी को एक उपयुक्त नाम दिया गया, यथा, बृहदीश्वर बृहन्नायकी, सुंदरेश्वर मीनाक्षी इत्यादि।

मंदिर परिसर के, सामने और पीछे के और कभी कभी एकाधिक प्रकारों के पार्श्ववर्ती गोपुर, अपने वडे आकार-प्रकार के कारण अधिक प्रमुखता पा गए, प्रायः मुख्य विमान से भी ऊंचे होने के कारण पहले से ही अस्तित्वमान मंदिरों मे परवर्ती चोलों, परवर्ती पांड्यों और समकालीन पल्लवराया सरदारों और अन्यों द्वारा जोड़े गए गोपुरों की संख्या बहुत है। परवर्ती चोलों के समय के अंतिम दिनों में जब होयसलो ने तमिलनाडु के एक भाग पर आधिपत्य जमा लिया, तो उन्होंने भी, कुछ विशेष गोपुर छोड़े, जैसे तिरुवन्नमलै स्थित वल्लाल गोपुर। चिदंबरम, वृंदाचलम और अन्य स्थानों पर 'को पेरुंजिगा' के पल्लवारा के गोपुर अपने मूर्तिशिल्प, विशेष रूप से एक सौ आठ नृत्य मुद्राओं के चित्रण के लिए, जिनके साथ लेवल के रूप में नाट्यशास्त्र के उपयुक्त श्लोक उत्कीर्ण हैं, महत्वपूर्ण हैं। सजावटी भित्तिस्तंभ के मॉटिफ, जो मूलभूत रूप से मंदिर मॉटिफ, प्रायः नासिकाग्र से, शीर्ष पर युक्त

भित्तिस्तंभ हैं और जो विमान के आदितलों, मंडपों और गोपुरों की दीवारों के ताकों में सजाए गए हैं, उनके आधार के रूप में पूर्ण घट या पूर्ण कुभ बनाए गए है। जिससे वे भित्तिस्तंभ उन घड़ों से निकलते हुए दिखाई देते हैं जो मुंह पर से बाहर निकलती पत्रावली के रूप मे समृद्धि के प्रतीक है। ये कुंभ पंजर सामान्य लक्षण बन गए है। टोड़े (दीवार में से प्रक्षिप्त पाषाण या काष्ठ खंड) के आकार में भी परिवर्तन हुआ है और आरभिक चोलकाल के सादे प्रवणित टोड़े के केंद्रीय जोड़ ने कमोबेश घंटी के आकार के लटकन का रूप ले लिया है जो धीरे धीरे बेल बूटेदार बन गया है। यह विजयनगर के काल और उसके बाद के समय की पुष्प पोतिका का मुड़ा हुआ वृत्त या आरंभिक 'मदलै' का पूर्ववर्ती हुआ करता था। अब स्तंभों के शीर्ष फलक और भित्तिस्तंभों के शीर्ष पतले, छोटे और बहुकोणीय होते गए जो पल्लव और आरंभिक चोलकाल के, बड़े, मोटे और वर्गाकार रूपों के विपरीत थे। दक्षिणी शैली के अष्टभुजाकार ग्रीवा और शिखर, जो आरंभिक काल में सामान्य थे अब से दक्षिणी मदिरों के सामान्य मानकों के अनुरूप होते गए, यद्यपि वर्गाकार और वृत्ताकार कभी कभी और गजपृष्ठाकार शैली और भी विकल रूप से दिखाई देती है।

घोड़ों या हाथियों या दोनो द्वारा खींचे जाने वाले पहियों वाले रथ के रूप में ऐरावतेश्वर के ड्योढ़ी मंडप जैसे मंडपो का मुखमंडप के सामने या उसके मुख्य प्रवेश बनने वाले किसी पार्श्व पर जोड़ा जाना सामान्य बन गया था। यह कुंभकोणम (तजावुर जिला) स्थित शारंगपाणि और नागेश्वर मंदिरों में पाए गए हैं, जहां नागेश्वर के मामले मे यह नटराज के सभामंडप के सामने है, जो परवर्ती चोलकाल से मंदिरों में जोड़ा गया अन्य लक्षण है। तिरुवरूर, कुडुमियामलै, वृद्धाचलम, चिदंबरम और अन्य अनेक स्थानों मे भी यह प्राप्त है। इससे पूर्वी गंग राजा नरसिंह को उत्तरी तटीय आंध्र मे अपने सिंहाचलम मंदिर में और इससे भी अधिक कोणार्क में उसके महान सूर्य मंदिर मे ऐसा मंडप बनाने की प्रेरणा मिली।

देवी मदिर के परिवर्धन से कल्याण उत्सव या भगवान और देवी वार्षिक विवाहोत्सव का सामान्य प्रचलन आरंभ हुआ, जिसके लिए विशेष कल्याण दोलोत्सव मंडप संलग्न याग मंडप सहित बनाए गए। शिव मंदिरों में सभामंडप या नृत्तमंडप के अंग के रूप में विशेष नटराज मंदिरों के आरंभ का पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है। अन्य प्रकार भिन्न भिन्न समयों पर होने वाले उत्सवों के लिए उत्सव मंडप हैं, जहा उत्सव मूर्तियां सजाई जातीं, पूजी जातीं और जुलूस के रूप में बाहर लाई जातीं। स्नापन या अभिषेक मंडप, व्याकरण मंडप, नृत्य और सगीत के लिए रंग मंडप और नाट्यशालाएं और यहां तक कि आतुर शाला चिकित्सा मंडप में मंदिर परिसरों में जोड़े जाने लगे। इस सबसे तमिल भूमि के मध्यकालीन मंदिर न केवल समुदाय की धार्मिक, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और अन्य सांसारिक गतिविधियों के केंद्र बन गए जो सदैव से मंदिरों के आसपास केंद्रित रही हैं।

परवर्ती (पश्चिमी) चालुक्य होयसल शृंखला

राष्ट्रकूटों का, जिनके दो महत्वपूर्ण मंदिरों, एलोरा स्थित एकाश्मक कैलास और पट्टदकल के बाहरी भाग में स्थित जैन मंदिरों की पहले चर्चा की जा चुकी है, दक्षिण में उनका स्थान पुनरुत्थानशील कल्याण के पश्चिमी चालुक्यों ने ले लिया और वे ग्यारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी के बीच सबसे महत्वपूर्ण शक्ति बन गए। उन्होंने चालुक्य राष्ट्रकूट परंपरा को अविच्छिन्न रखते हुए उसमें धीरे धीरे अपने स्वयं के महत्वपूर्ण परिष्कारों को लागू किया। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में निर्मित गडग (धारवाड़ जिला) के निकट कुण्णानूर स्थित नवलिंग समूह और कल्लेश्वर जैसे उनके आरंभिक मंदिर शायद उन संरचनाओं में अंतिम थे, जो बालुकाश्म से बनाए गए और बालुकाश्म युक्त शैल परंपरा की समाप्ति के सूचक हैं। उन्होने अपने समय के मध्यकाल में क्लोराइटिक शिष्ट जैसे विभिन्न नर्म पत्थरों को अपने मंदिरों के निर्माण में अपनाया।

नवलिंग मंदिर नाम से ज्ञात नौ मंदिरों के एक उत्कृष्ट समूह में नौ दो या तीन मंजिलें वर्गाकार विमानों और इकहरी दीवारों वाले मंदिर तीन मंडपों की रैखिक पंक्ति के पार्श्वों और अंतिम छोरों के आसपास बनाए गए हैं जिनमें लगे बालुकाश्म घटिया स्तर के हैं। सामान्य रूप से देखने, विशिष्ट शुकनासिका को छोड़कर वे पूर्वी चालुक्यों द्वारा निर्मित बिक्कावोशु मंदिरों के सदृश दिखते हैं। शीर्षस्थ तल हार से वंचित हैं, शीर्ष शिखर में विशेष रूप से तिरछे या ढलवां हैं और पार्श्व बारंबार मुड़े हुए हैं। कुंड का आकार मेहराबदार ही बना हुआ है। हार तत्वों के भी अपने विशिष्ट आकार बने हुए हैं। आदितल की दीवार के प्रक्षिप्त खंडों में छोटे भित्तिस्तंभों की जोड़ी या मकर तोरणों पर कूट के अग्रभागों की चौखट में देवकोष्ठ बने हुए हैं। मकर तोरणों पर ललाट बिंब के रूप मे गजलक्ष्मी के शृंग बने हुए हैं। मंडप स्तंभों को अपने शीर्ष के मामले में आंशिक रूप से खराद से आकार दिया गया है। जबकि शहतीर वर्गाकार और इकहरी है और बाद के काल के खराद से आकार दिए गए विशिष्ट स्तंभों के आरंभ के सूचक हैं। इस समूह से थोड़ी ही दूर पर महामाई मंदिर है जिसमें देवी विमान के अनुरूप एक दीर्घ आयताकार मंदिर है। सामने दो मंडप हैं और वे भी आयताकार हैं। एक और आयताकार मंदिर, एक संकीर्ण अग्रमंडप सहित नवलिंग समूह के निकट में ही स्थित है। इसके एक कोने में एक कुंड है। अन्य भग्नावशिष्ट संरचनाएं एक प्राकार से घिरी हुई हैं, जिसमें चार में से दो दिशाओं में दो प्रवेश हैं। संलग्न शिलालेखों में गंगा, कालिका, सरस्वती और महामाई जैसी देवियों का उल्लेख इस केंद्र में एक शक्तिशाली देवी पंथ की उपस्थिति का सूचक है।

कल्लेश्वर में एक वर्गाकार तिमंजिला निरंधार विमान है जिसके सामने एक

अंतराल और एक बंद मंडप अक्षीय रेखा में है जिस पर आदितल स्तर का हार भी विस्तीर्ण है। शीर्षस्थ तल हार से रहित है; एक शुकनासिका ऊपरी तल से अंतराल पर प्रक्षिप्त है। फिर भी, पूर्ववर्ती प्रकारों के समान मंजिलें स्पष्टरूपेण चिह्नित नहीं हैं और मुड़े हुए पार्श्वों सहित वर्गाकार शिखर के किनारे खूब ढलवां हैं। कोर्निसों पर कुदुओं का घोड़े की नाल जैसा आकार बदलने लगा था और वे सपाट पहलुओं वाले हो गए। आदितल की दीवारों के उभरे हुए खंडों के बीच दक्षिणी विमान के प्रतिमानों या उत्तरी प्रासाद प्रतिमानों की अधिरचना युक्त मंदिर के अग्रभाग उत्कीर्ण हैं। मंडपों के वर्गाकार आधार युक्त स्तंभ आंशिक रूप से खराद पर तराशे गए हैं, विशेष रूप से उनके फलक के नीचे के शीर्ष, जो नवलिंग उदाहरणों पर इस मामले में थोड़ी प्रगति के सूचक हैं। मंडप के चार केंद्रीय स्तंभों की ओर मुंह किए हुए दो आयताकार मंदिर हैं, जो शायद मूल रूप से गणपति और दुर्गा के लिए थे। मंडप की दीवारों के अंतरालों में छिद्रित खिड़कियां हैं ! किंतु संरचनात्मक दृष्टि से यह तथ्य अधिक रोचक है कि सामान्य मोटाई की होने पर भी दीवारें छोटे पाषाण खंडों से निर्मित हैं, जो ईंटों के काम के सदृश्य प्रवृत्ति है, जबकि चालुक्यों और राष्ट्रकूटो के आरंभिक विशाल या लगभग विशाल निर्माणों में बड़े आकार के खंड उपयोग में लाए गए थे।

गडग के निकट ही, लक्कुंडी के मंदिरों को देखें, तो ऐसे मंदिर प्राप्त होते हैं, जिनके निर्माण में तब तक सामान्यरूपेण पाया जानेवाला बालुकाश्म का उपयोग पूरी तरह से छोड़ दिया गया और उसके साथ बढ़िया तंतु रचनावाला, नर्म, क्लोराइटिक शिष्ट पत्थर उपयोग में लाया गया जिसे स्वाभाविक रूप से कम मोटाई में खदान से निकाला जा सकता था। नई सामग्री ने अपनी खदान से निकली कम मोटाई के आकार और इसे काटने में अधिक सरलता से कारीगरी को प्रभावित किया, जिससे चिनाई की प्रक्रिया में आकार घटा और इस प्रकार के आकर्षण नर्म और सपाट सामग्री पर उत्कृष्ट और सूक्ष्म शिल्पांकन की मात्रा बढ़ी। इस स्थान में ऐसी सामग्री के अनेक रुचिकर मंदिरों में जैन मंदिर सबसे बड़ा और प्रमुख है, जो ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बनाया गया होगा। इसमें एक वर्गाकार पांच मंजिला निरंधार विमान है, जिस पर वर्गाकार ग्रीवा और शिखर हैं। यह अग्रभाग में मूलरूप से एक बंद नवरंग मंडप है, जबकि एक खुला मंडप बाद में जोड़ा गया। नवरंग का केंद्रीय जो चार केंद्रीय स्तंभों के बीच अवस्थित है, वर्गाकार है और आसपास के आठ परिधीय खंडों से बड़ा है। इकहरी आदितल दीवार मोटी और विशाल है, ताकि वह हार और ऊपर एक मंदिर सहित कर्मोपचारार्थ तल को अपने ऊपर संभाल सके (जैसा कि पट्टदकल स्थित जैन मंदिर में है, तथापि वह संधार है) और इसके पार्श्वो में बाहर की तरफ, बार बार मुड़े हुए प्रक्षेप दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त गर्भगृह के चार भीतरी कोनों पर चार अवलंब स्तंभ हैं। सामान्य

रूपेण आदितल हार अंतराल और वड़े नवरंग तक विस्तीर्ण हैं। पर्याप्त रूप से कम ऊंचाई और क्रमिक रूप से घटती हुई चौड़ाई के ऊपरी तलों के ऊपर, शीर्षस्थ तल को छोडकर हार हैं। ग्रीवा भी बहुत छोटी है और विशिष्ट गोल मटोल शिखर के उत्कृष्ट ढलवां किनारे हैं। कोर्निस पर कुदुओं का आकार सपाट होने के बावजूद मेहराबदार है और उन पर सिंह मुख शिखर है। दीवारों पर भित्तिस्तंभ इकहरे हैं जिनके शीर्ष अपना संतुलित आकार खो चुके हैं। उनके घटकों के आनुपातिक आकार नष्ट हो गए हैं और फलक छोटे और पतले हैं। दीवारों पर जोड़ीदार भित्तिस्तंभों के बीच के स्थान पर नासिकाग्र मॉटिफ बने हुए हैं। दीवार के खंडों के बीच के अंतराल सजावटी भित्तिस्तंभों तंजावुर और गंगैकोंडाचोलपुरम स्थित ग्यारहवीं शताब्दी के चोल मंदिरों में प्राप्त शीर्ष पर मंदिरों के अग्रभाग या मंडप युक्त भित्तिस्तंभों से बनते हैं। सजावटी भित्तिस्तंभ छोटे भित्तिस्तंभ अवलंबों पर बने तोरण के चौखट के भीतर हैं। ऊंचा कमौपचारार्थ द्वितीय तल और पांच मंजिला उत्थान इस उत्कृष्ट विमान को महत्ता प्रदान करता है।

गडग के समीप ही लक्कुंडी स्थित काशी विश्वेश्वर मंदिर और इट्टागी स्थित महादेव मंदिर अन्य मंदिरों के बीच पश्चिमी चालुक्यों के अंतर्गत इस क्षेत्र में वास्तुशिल्प और कला की पराकाष्ठा के सूचक हैं। महादेव मंदिर के निर्माण का समय उसके शिलालेख में 1112 ईसवी सन् दिया गया है। मुख्य विमान, जो केवल ग्रीवा तक ही वर्तमान है और शिखर और स्तूपी नष्ट हो चुके हैं, वर्गाकार पांच मंजिला निर्माण है, जो एक विस्तृत अधिष्ठान पर खड़ा है जिसके अंतराल की छत के ऊपर चौथे तल के स्तर पर एक शुकनासिका प्रक्षिप्त है। संपूर्ण विमान अपनी हर दिशा में पांच खंडों में बंटा हुआ है जिनमें से मध्यवर्ती खंड सर्वाधिक प्रक्षिप्त हैं। बीच के चारों अंतराल बार बार मुड़े हुए हैं, जिससे योजना शंवूक आकार के समान बन जाती है। तलों की प्रत्येक दिशा पर हार, खडों की चौड़ाई के अनुरूप दोनों छोरों पर एक एक दो कर्णकूटों, केंद्रीय शाला और दो अंतर्वर्ती पंजरों से बने हैं। शाला अधिरचना युक्त आदितल के प्रत्येक पार्श्व के सर्वाधिक प्रक्षिप्त मध्यवर्ती खंड में लघु मंदिरों के समान गहरे और चौड़े बने हैं जिससे वह सब स्तंभों, प्रस्तर और अधिरचना सहित छोटे विमानों जैसे दिखते हैं, जबकि कोने के खडों के कर्णकूटों के अनुरूप संकीर्ण और उथले अग्रभाग हैं। नवरंग सामने एक बड़ा वर्ग बनाता है और उसकी बाहरी दीवारें और अधिष्ठान उसी प्रकार उभार और अंतराल और वैसे ही बाह्य अलंकरण युक्त है। इससे भी अधिक रोचक है उसकी अत्यधिक अलकृत और उठी हुई मध्यवर्ती भीतरी छत और उसके पाषाण खंडों पर उत्कृष्ट उत्कीर्णन, विशेष रूप से उन खंडों पर जो वर्गाकार खंड की भीतरी छत के कोनों को काटती है। मंडप में स्तंभयुक्त ड्यौढ़ियों वाले तीन प्रवेश, पूर्व, दक्षिण और उत्तर में हैं जिसमें से सामने वाला सामने के खुले बहुस्तंभी अग्रमंडप को जोड़ता है, जिसमें

उसकी तीन दिशाओ में तीन ड्यौढ़ियां हैं। इस मंदिर के प्रचुर सजावटी तत्व और उसकी योजना और लक्षण भी होयसलों और उनके बाद इस क्षेत्र में बारहवी शती के उत्तरार्ध और तेरहवीं शती के आरंभ मे सत्ता में आए काकतियों के विशिष्ट मदिरों के समय के आसपास इसके निर्माण का संकेत देते हैं।

दक्षिणी दक्कन और मैसूर में होयसलों द्वारा या उनके संरक्षण के अंतर्गत निर्मित मंदिर अत्यधिक सरल, घनीभूत और उत्कृष्ट तंतुओं वाले नर्म क्लोराइटिक शिष्ट या सिलखड़ी के हैं जिन पर उत्कृष्ट और सूक्ष्म उत्कीर्णन किया जा सकता है। सामान्य रूप से मंदिर इकाई में एक विमान होता है जो एक छोटे अंतराल से एक बंद नवरंग से जुड़ा होता है, जिसके आगे कभी कभी एक अन्य मंडप होता है। एक मंदिर इकाई में एक साझा नवरंग के तीन पार्श्वों पर तीन मुख्य विमान होना भी असामान्य नहीं है। यह नवरंग अतरालों द्वारा विमानों से जुड़ा होता है, जबकि इसकी चौथी दिशा में मुख्य प्रवेश या ड्योढी होती है। इसे त्रिकुटाचल कहा जाता है। समस्त परिसर एक सांझे, चौड़े उपपीठ पर स्थित होता है जिसके ऊपरी मंच पर संपूर्ण इकाई के चारों ओर एक खुला प्रदक्षिणा पथ होता है। न केवल पार्श्वों पर, बल्कि कोणों पर भी अनेक मोड़ों के कारण योजना ताराकृति बन जाती है। यह वैसी ही आयोजना है जैसी किसी वर्ग को उसकी कील पर इस तरह घुमाया जाए कि उसके कोने या उसके विकर्ण अपने छोरों पर उसके चारों ओर एक वृत्ताकार परिधि में सोलह या बत्तीस या और अधिक बिंदुओं पर स्पर्श करने पर जैसी आकृति बने। यह ताराकृति बाह्य विन्यास उपपीठ से विमान की अधिरचना के शिखर तक विस्तीर्ण है। संयोगवश, इससे परितृप्ति कारक बहुकृतिक शिल्प और उत्कीर्णन के लिए बड़ा सतह क्षेत्र मिल जाता है जिसके लिए होयसल मंदिर प्रसिद्ध हैं। अधिष्ठान प्रतिमान उत्तरी शैली के अधिक निकट है क्योंकि हाथियों, योद्धाओं, अश्वों, हंसों, मकरों आदि के अध्यारोपित स्तर बने होते हैं जिसमें से पट्टिका जैसा चौड़ा शीर्षस्थ स्तर वर्णनात्मक चित्रों की शृंखला में पौराणिक दृश्य चित्रित किए गए हैं। दीवारें ताकों से अलंकृत हैं जो पिरामिडीय बहुस्तरीय अधिरचनाओं और विभिन्न प्रकार के प्रतिष्ठापित आकृति शिल्प से अभिषिक्त होते हैं। अंतर्वर्ती भाग भित्तिस्तंभों से सज्जित होते हैं जिनके शीर्ष पर पिरामिडी बहुस्तरी अधिरचनात्मक मॉटिफ बने होते हैं। पस्तर में ओलती जैसे स्पष्ट कोर्निस होते हैं। अधिरचना सघन हार तत्वो, मूलभूत रूप से कूटों का आयोजन है, जो एक के पीछे एक उठते हैं, प्रत्येक एक मंजिल को चिह्नित करता है और शीर्पस्थ कूट पर एक छोटी ग्रीवा और अष्टभुजाकार शिखर होता है जो एक स्तूपी में समाप्त होता है। ऊपरी तलों के सामने के भाग के मध्य नीचे के अंतराल के ऊपर शुकनासिका के रूप में बाहर प्रक्षिप्त होते हैं। मंडप के भीतर के स्तंभों के आधार वर्गाकार हैं। शहतीर और चौड़े वर्गाकार शीर्प तक का शीर्ष भाग चिकना गोल किया हुआ, तथा खराद से आकार

देकर पालिश किया हुआ है, जिससे उभारों, मुड़ी हुई ग्रीवाएं, मनके आदि की एक शृंखला बनती है जिसे उत्कृष्ट चुने हुए अलंकरणों से बाद में सजाया गया है। कभी कभी मंदिर इकाई की अक्षीय शृंखला प्राकार के भीतर एक खुले प्रांगण और स्तंभयुक्त विहार से घिरी होती है जिसके केवल एक ओर, सामने की ओर एक महाद्वार होता है।

न्यूनाधिक महत्व के सैकड़ों होयसल मंदिर हैं; इनमें से हलेबिड के स्थित अनेक मंदिरों में होयसलेश्वर एवं बेलूर स्थित चन्नकेशव मंदिर दोनों हासन जिले में हैं, (दोनों शहर होयसलों की पूर्ववर्ती और परवर्ती राजधानी थे) और सोमनाथ पुर (मैसूर जिले में) स्थित केशव मंदिर सर्वाधिक ज्ञात और विशिष्ट हैं।

बेलूर स्थित चन्नकेशव मंदिर इकाई का निर्माण होयसल विष्णुवर्धन द्वारा 1117 में करवाया गया और विजय नारायण नाम से विष्णु को समर्पित किया गया। अब यह बाद के बने मंदिरों के परिसर की मुख्य इकाई है, जो एक विहार और मुख्य इकाई की अक्ष रेखा पर पूर्व में एक गोपुर युक्त प्राकार से घिरा हुआ है। उसी पार्श्व में दक्षिण की ओर एक सादा पार्श्व प्रवेश बना हुआ है। गोपुर की वर्तमान ईटों का बना अधिनिर्माण काफी बाद में किया गया जीर्णोद्धार है। विष्णुवर्धन द्वारा अभिकल्पित और पूर्ण किए गए इस मंदिर में एक सुंदर ताराकृति योजना का विमान और एक अलंकृत मंदिर द्वार है जिसके साथ एक बढ़िया उत्कीर्णित ऊपरी द्वार और वैसे ही अलंकृत द्वार वाला एक अंतराल है। अलंकृत द्वार के पहले एक बड़ा नवरंग है, जिसकी तीन दिशाओं में विस्तीर्ण पथ या बंद ड्यौढ़ियां हैं, पूर्व, दक्षिण और उत्तर,—ये ड्यौढ़ियां बाहर की ओर द्वार सहित विस्तारपूर्वक उत्कीर्णित प्रवेशों पर समाप्त होती हैं। यह समस्त एक उपपीठ पर, जो 1.5 मीटर ऊंची है, स्थापित है। इसी में विमान और उसके अक्षीय मंडपों की ताराकृति योजना उसके प्रदक्षिणा पथ की योजना भी शामिल है। मंडपों के तीन बाह्य द्वारों के सामने क्रमशः अधिष्ठान और उपपीठ की ऊंचाई से नीचे की ओर सीढ़ियों के दो जीने हैं जिनके साथ भूमि के स्तर पर दोनों ओर और जीने के ऊपर उपपीठ के मंच पर दो लघु विमान प्रतिमान बने हैं। नवरंग के परिधीय स्तंभों के आधार और उसकी तीन ड्यौढ़ियां कक्षासन मंचों द्वारा अंतर्संबंधित हैं जिन पर कुछ पीढ़ियों बाद (बल्लाल द्वितीय के समय में, जिसने उत्तर-पूर्व कोने पर कुंड और प्रकार का निर्माण कराया) स्तंभों के बीच जालीदार परदे जैसी छिद्रित आवरण दीवारें बनवाई गई, जिससे मंडप एक बंद मंडप में परिवर्तित हो गया। विमान अंतराल और मंडप के अधिष्ठान स्तर पशुओं, मनुष्यों और वर्णनात्मक दृश्यों की चित्रवल्लरियों की लंबी पंक्तियों में प्रचुरता से उत्कीर्णित हैं। दीवारों पर मूर्तिविद्या संबंधी रोचक शिल्पाकृतियां हैं। विमान आदितल के तीन पार्श्वों पर उभरे खंडों पर, जो लघु विमानों को लगभग पुश्ता देते हैं, भीतर की ओर गहरे कक्ष बने हुए हैं

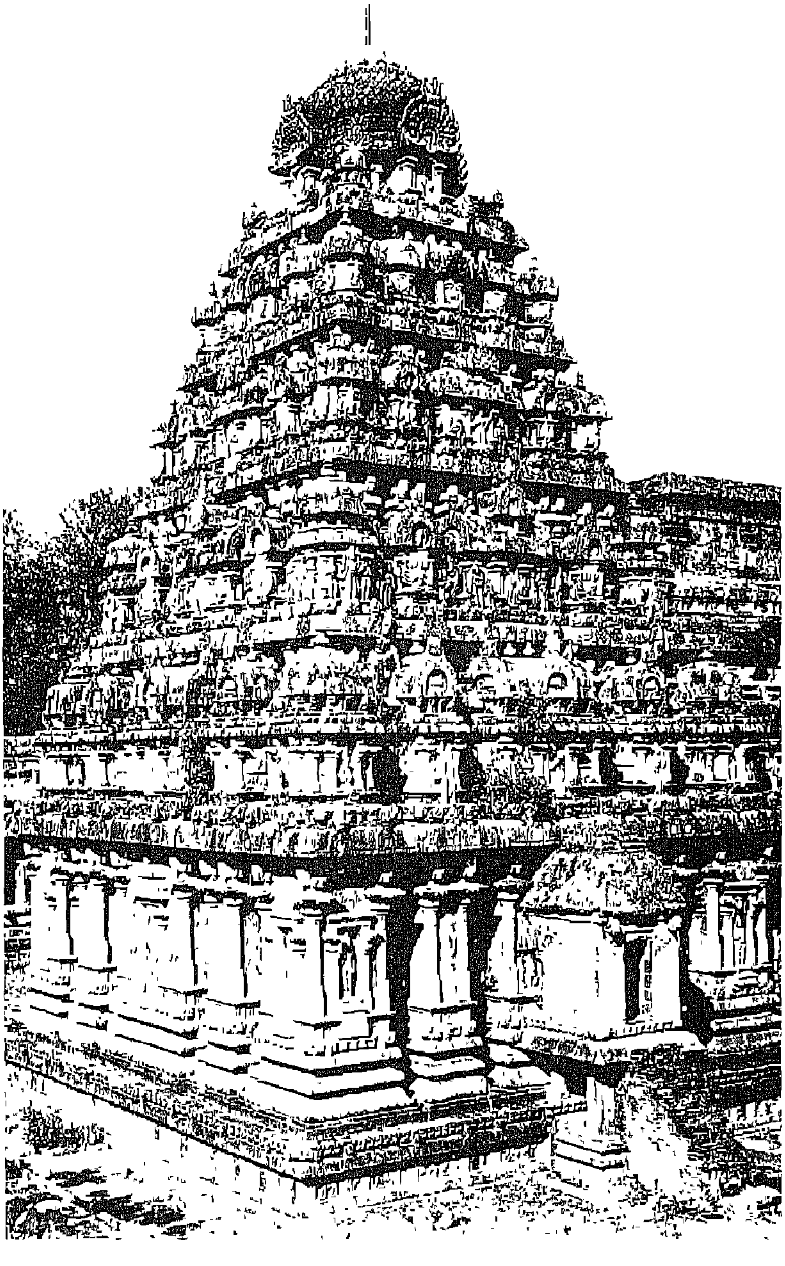
जो देवताओं की मूर्तियों के लिए हैं। मंडप के लटकते हुए कपोतों को अनेक लालित्यपूर्ण मुद्राओं में बढ़िया तराशी हुई नारी आकृतियों से, जिन्हें मदनिका कहा जाता है, सहारा दिया गया है। मुख्य विमान की अधिरचना अब नष्ट हो गई है। मंडप के भीतर के स्तंभ उत्कृष्ट रूप से खराद पर तराशे गए हैं या जटिल रूप से उत्कीर्णित हैं और उनमें से कुछ पर बढ़िया स्पष्ट आकृति शिल्प बने हैं। मंडप की उठी हुई बक्से जैसी केंद्रीय छत, जो सफलतापूर्वक कोनों को काटते हुए ऊंचे उठाए गए त्रिकोणीय पट्टों द्वारा आठ स्तरों में उठती है, एक प्रकार का अष्टभुजाकार खोखला गुंबद बनाती है जिसके सभी स्तर जटिल उत्कीर्णनों से युक्त हैं। शीर्षस्थ आच्छादक पत्थर केंद्र से नीचे की ओर एक बड़ी, सूक्ष्मता से उत्कीर्णित लालटेन जैसी लटकन के या कर्णिका के रूप में लटका हुआ है। छत का निम्नतम स्तर भी मदनिकाओं के अवलंब पर टिका है, जो बाहर की मदनिकाओं से भी सुंदर है। ये खराद से आकार दिए गए स्तंभों के वर्गाकार शीर्ष से निकलती हैं। इस प्रकार मंदिर छोटी बडी मूर्तियों और जटिल वानस्पतिक, पुष्पविषयक और पशु विषयक उत्कीर्णनों का वास्तविक संग्रहालय है।

हलेबिड में उस काल में बने अनेक अन्य मंदिरों में से लगभग ईसवी सन् 1150 में निर्मित होयसलेश्वर को समान विमान ईकाइयों का समुच्चय है। शिव को समर्पित दोनों विमान सांझे मंच पर खड़े हैं, जो दो ताराकृति उपपीठों का संयोजन है। हर इकाई में ताराकार योजना का एक विमान सामने अंतराल और नवरंग सहित पूर्वाभिमुख खड़ा है। प्रत्येक नवरंग के साथ तीन प्रक्षिप्त प्रवेश स्वस्तिक के आकार में हैं, जिसमें दक्षिणी नवरंग की उत्तरी भुजा, उत्तरी नवरग की दक्षिणी भुजा से जुड़ती हैं जिससे दोनो के बीच एक सांझा मार्ग बनता है। दोनों इकाइयों के अधिष्ठान विस्तृत पशु विषयक या कथात्मक चित्रवल्लरी से सज्जित हैं, जो उनके अपने अपने स्तरों का गठन करते हैं। बाहर प्रक्षिप्त ड्यौढ़ियों के स्तंभों के अंतर्वर्ती स्थान स्तंभों के आधारों को एक साथ जोड़ने वाले कक्षासनों के मंचों के स्तर के ऊपर जालीदार खिड़कियों से आच्छादित हैं। विमान की दीवारें, भीतर से जोड़ने वाले अनुप्रस्थ मार्ग और मंडपों की दीवारें बाहर से असाधारण उत्कृष्टता के बड़े शैल्पिक उत्कीर्णनों से आवृत्त हैं। ड्यौढ़ियों के, अंतराल के और मंदिर कक्षों के प्रवेश पर विशद रूप से उत्कीर्णित द्वार चौखटें है, जो शीर्ष पर मकर तोरण शहतीर युक्त हैं। दोनों विमानों की अधिरचनाएं नष्ट हो गई हैं। उपपीठ मंच दोनों इकाइयों के लिए एक चौड़ा, खुला परिक्रमा पथ प्रदान करता है। मंदिर इकाइयों के सामने कुछ दूरी पर दो खुले स्तंभयुक्त नंदी मंडप हैं। दोनो विषम हैं और पश्चातकालीन परिवर्धन मंडप मे पीछे की ओर एक मंदिर है। यद्यपि इसका वर्तमान रूप अपूर्ण है, होयसलेश्वर होयसल कला और वास्तुशिल्प की पराकाष्ठा का सूचक है।

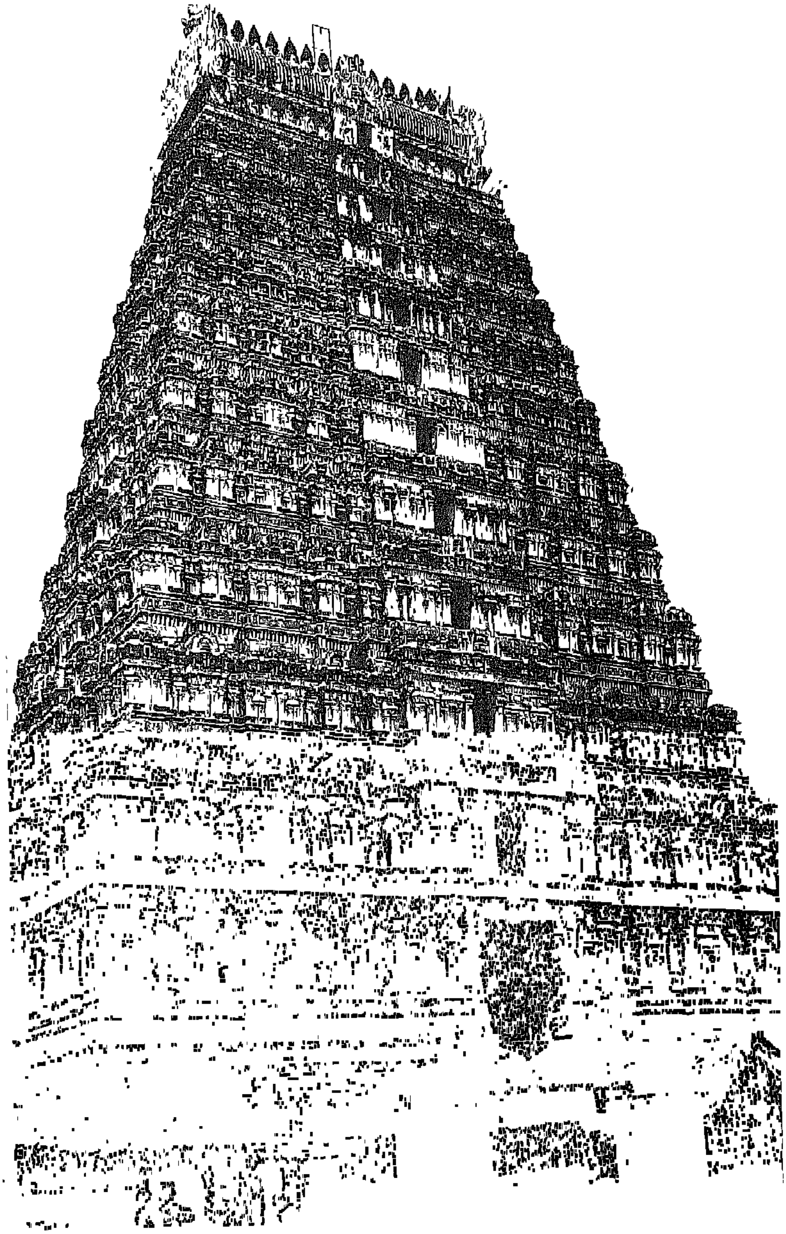
सोमनाथपुर स्थित केशव मंदिर होयसल सृजन की शृंखला में से पश्चातकालीन

मंदिरों में एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह होयसल राजा के एक सेनापति सोमनाथ द्वारा 1268 में बनवाया गया था। यह छोटे आकार के प्रचुर रूप से उत्कीर्णित मंदिरों में से एक है जो एक रत्नमंजूषा के समान है। यह एक त्रिकूट मंदिर है जिसमें क्रमशः उत्तर, पूर्व और दक्षिण में मुंह किए समान आकार-प्रकार के तीन प्रमुख विमान हैं जो उत्तर, पश्चिम और दक्षिण दिशाओं में एक बडे और बद सांझे मंडप में खुलते हैं। इसके पूर्व मे एक बडा नवरग मडप जोड़ दिया गया है जिसे कक्षासन स्तर के ऊपर छिद्रित आच्छादक दीवारों से बंद कर दिया गया है। तीनों मदिर विष्णु के विभिन्न रूपों को समर्पित हैं। यह समस्त ताराकृति योजना के उपपीठ पर अवस्थित है। तीनो विमान और मंडप भी आधार से शिखर तक इसी प्रकार के हैं। मच पर एक चौड़ा परिक्रमा पथ है। यह अक्षीय *शृंखला* प्राकार के भीतर परिधि पर चौंसठ मंदिरों के समूह युक्त एक खुले प्रांगण से घिरी हुई है। मंदिर प्राकार के निकट समूह के पिछले अर्ध भाग में स्थित है जवकि अगले अर्धभाग में स्तंभ युक्त अग्रभाग युक्त गलियारा है। आगे स्तंभों से युक्त एक प्रवेश मंडप है, जिस पर शायद गोपुर के ढंग की एक अधिरचना थी। अधिष्ठान की सज्जा मे मनुष्यों, योद्धाओं, हाथियों, अश्वों, हंसों और मकरों की चित्रवल्लरियां प्रचुरता से उत्कीर्णित हैं। शीर्षस्थ स्तर पर रामायण और भागवद् के प्रसंगों को चित्रित करते हुए कथात्मक फलको की एक शृंखला है। दीवार के ताकों में स्पष्टता से गढ़े हुए देवी देवताओं के आकृति शिल्प हैं। मंडप के भीतर के स्तंभो को खराद से आकार दिया गया है जिन पर अलंकृतियां लालित्यपूर्ण उत्कीर्ण हैं। फिर भी, नवरंग की संदूक जैसी भीतरी छत, और भीतरी मंडप और बाहरी ड्यौढ़ी की छतें भी अधिक सुदर हैं जो उल्टी डलिया जैसी दिखती हैं जिसमें विभिन्न प्रतिमाओ के पुष्प विषयक, वानस्पतिक, सर्पीले आदि उत्कीर्णन और दिग्पालों की छोटी मूर्तियां हैं। छत के कोई भी दो खंड एक जैसे नहीं दिखते। बीच का बड़ा खंड सर्वाधिक विशिष्ट रूप से आकृति मंडित खंड है।

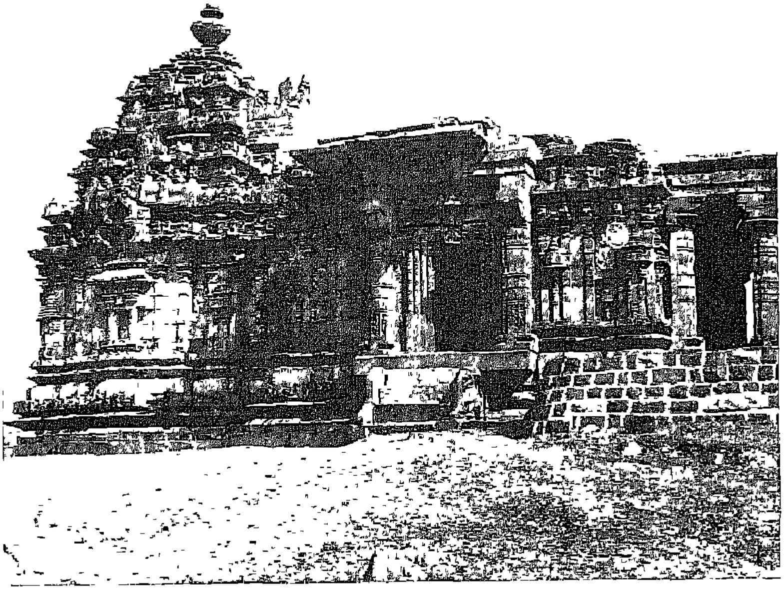
ओरंगलु या वारंगल के काकतीयों के मंदिरों में से हनमकोंडा और पालमपेट स्थित मंदिर सबसे अधिक विख्यात और अपने वास्तुशिल्प और कला के लिए प्रतिनिधिक हैं। हनमकोडा (जिला वारंगल) स्थित तथाकथित 'सहस्र स्तंभ मंदिर', जो प्रतापरुद्र द्वारा 1162 में बनवाया गया था, परवर्ती पश्चिमी चालुक्यों की शैली से काकतीय शैली में सक्रमण को भलीभाति प्रदर्शित करता है। मुख्य भाग में एक त्रिकूट या तिहरा मंदिर है जो यथेष्ट आकार-प्रकार का है और शिव, विष्णु और सूर्य को समर्पित है। ये तीनों इसकी क्रमशः पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशा में एक सांझे मंडप में खुलते है और ये सब एक सांझे मच पर अवस्थित हैं। तीनों मदिरों के बीच मंडप के कोने खुले हुए हैं, और इसकी दो भुजाओं पर और इसके भीतर के स्तंभ खराद से आकार दिए हुए हैं। अधिष्ठान, भित्तिस्तंभों से युक्त दीवारें और



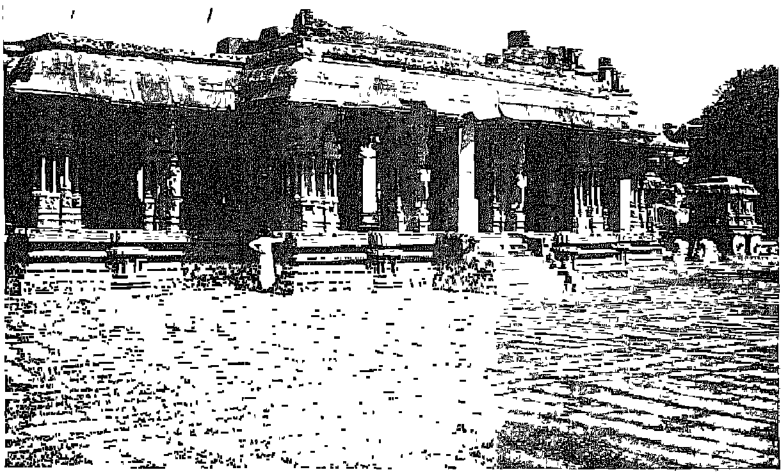
15. चिदवरम–नटराज मदिर–गोपुरम



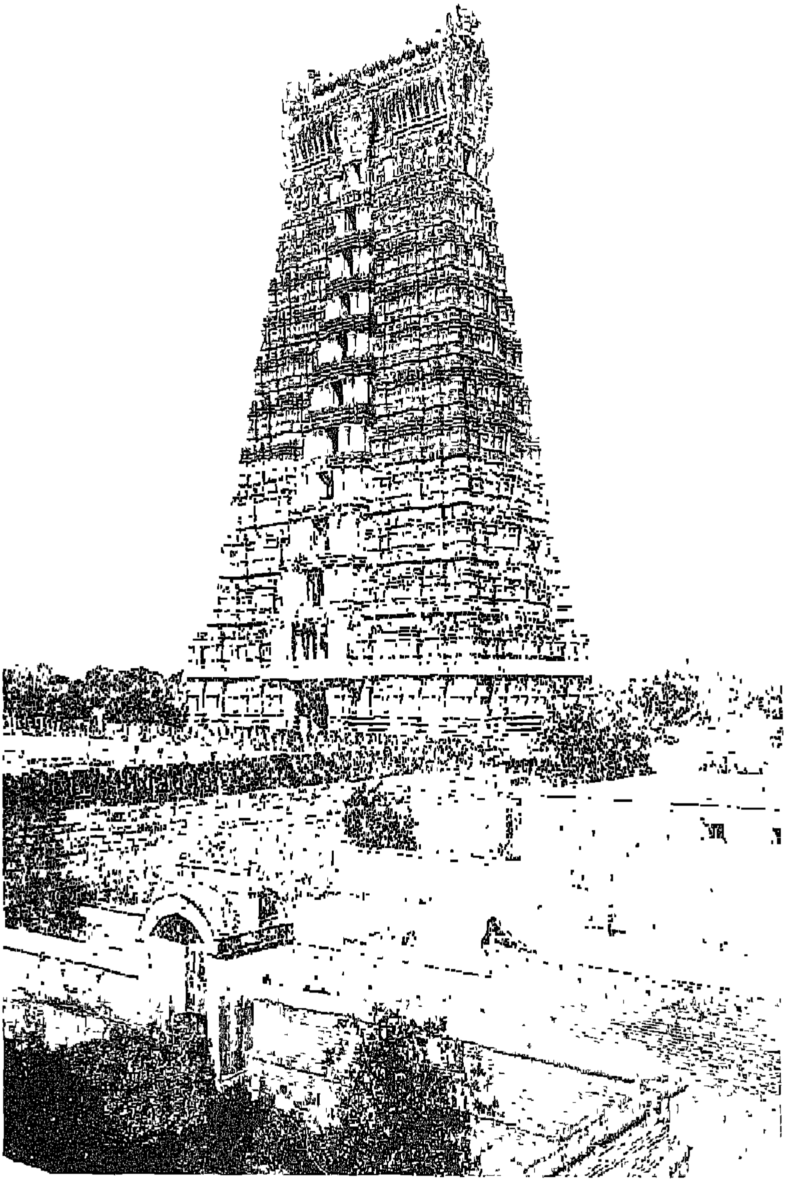
16. लक्कुंडी–काशी विश्वेश्वर मंदिर



17. तिरुवन्नमलै—अरुणाचलेश्वर मंदिर—गोपुरम



18. हम्पी—विट्ठल मंदिर—मंडप



19. वेल्लोर–जलकंठेश्वर मंदिर–कल्याण मंडप

प्रस्तर अनेक स्थानों पर मुड़े हुए हैं, जिनमें प्रक्षिप्त खंड है। इनमें से हर भुजा में केंद्रीय खंड सर्वाधिक प्रक्षिप्त हैं और एक गर्भगृह युक्त छोटे विमान की रचना करते हैं। तीनों विमानो की अधिरचनाएं नष्ट हो गई हैं। वर्तमान में शेष बचा सर्वाधिक रोचक भाग लगभग तीन सौ स्तंभों वाला मंडप है। सारे स्तंभ प्रचुरता से उत्कीर्णित हैं। यह इकाई के सम्मुख एक अंतर्वर्ती नंदी मंडप से जुड़ा हुआ है। गढ़ के भीतर इस भग्नावशेष मंदिर की एक अन्य रोचक विशेषता मुक्त रूप से खड़े अलंकृत तोरण हैं, जो प्रवेश स्थलों के सूचक हैं।

पालमपेट (जिला वारंगल) स्थित मंदिर एक अन्य विशिष्ट समूह के हैं। इस समूह का मुख्य मंदिर एक ऊंचे मंच पर सन् 1215 में बनाया गया, जिसके सामने एक नंदी मंडप है। यह एक विशाल दीवार से घिरा हुआ है। मूलरूप से वर्गाकार योजना वाले विमान की तीन भुजाएं प्रमुख रूप से पांच पांच खंडों में विभाजित की गई हैं। इनमें से हर भुजा के केंद्रीय खंड को और आगे बढ़ा दिया गया है जिससे एक छोटे परिमाप की मुख्य विमान की त्रिस्तरी प्रतिकृति बन जाती है। अन्य खंडों में निकटस्थ ऊंचे भित्तिस्तंभो की जोड़ियां हैं, जिनके शीर्ष पर मंदिर मॉटिफ बने हुए हैं। ये मॉटिफ वैकल्पिक रूप से दक्षिणी शैली के विमानों और उत्तरी शैली के प्रासादों की प्रतिकृतियां हैं। तलों के हार अस्पष्ट हैं किंतु कूट तत्व स्पष्ट हैं। ग्रीवा भी संक्षिप्त कर दी गई है और कम स्पष्ट है और लगभग उसी चौड़ाई की है जैसे गुबददार शिखर की। संपूर्ण अधिरचना ईंटों की बनी है। अक्षीय रूप से, एक बंद अंतराल या अर्धमंडप विमान को सामने स्थित एक बड़े नवरंग से जोड़ता है, जो एक परिधीय मंच से घिरा हुआ है, जिसमें बत्तीस स्तभों की एक बाहरी शृंखला और परिक्रमा पथ है। इसमें सर्वाधिक ध्यान देने योग्य है नारी आकृतियों के रूप में दीवारगीरो (ब्रेकेट्स) का व्यूह, जो स्तंभों के शीर्षों पर से उठकर शहतीरों और कोर्निसों को टिका देता है। इनमें से बारह लगभग मनुष्याकार, कमनीय काया और लालित्य पूर्ण मुद्राओं में हैं। शेष व्यालो को साधे हुए हैं जिनके पांव हाथियों के मस्तकों पर हैं। मंडप के परिधीय स्तंभों के आधार भी एक वेदी और एक जंगले से जुडे हुए हैं, जो कक्षासन की पीठ बन जाता है। मंडप का भीतरी भाग भी मूर्तियों से भरा हुआ है और खंडों की भीतरी छतें अलंकृत हैं। विमान के आदितल का हार भी मंडप के ऊपर की छत तक विस्तृत है। भीतर मंच पर चार जोड़ियों में आठ मंदिर नवरंग के चार कोनों के साथ संलग्न हैं। मुख्य निर्माण लाल पत्थर से किया गया है किंतु अलंकरण बसाल्ट या हॉर्नब्लैंड पत्थरों से किया गया है जो कठोर प्रकार के पत्थर हैं।

पिल्लालमारी (जिला नलगोंडा) के तीन मंदिरों में से इरकेश्वर, जो अब सोमेश्वर कहलाता है और 1208 में स्थापित किया गया था, पालमपेट के महान मंदिर के समान ही काकतीय प्रतिमान की एक संपूर्ण इकाई है। इसमें एक विमान

है जिसके सामने एक मुखमंडप है जिसमें तीन प्रक्षिप्त ड्योढ़ी प्रवेश हैं। इनके साथ उत्तर, पूर्व और दक्षिण में सीढ़ियां बनी हुई हैं, जबकि गर्भगृह पश्चिम में संलग्न है जिसके साथ एक अंतराल जुड़ा हुआ है। यह सब एक स्पष्ट और सुगठित उपपीठ पर अवस्थित है। अधिष्ठान के ऊपर गर्भगृह की दीवार पर हर दिशा में पांच स्पष्ट उभरे हुए भित्तिस्तंभ हैं जिनमें से केंद्रीय भित्तिस्तंभ पार्श्ववर्ती जोड़ियों से चौड़ा है, और ऊपर प्रस्तर में एक ढलवां सपाट, अनलंकृत कोर्निस है। भित्तिस्तंभों के बीच के अंतरालों में सामान्य छोटे और पतले भित्तिस्तंभ मॉटिफ हैं जिसके शीर्ष पर एक मंदिर की अधिरचना बनी हुई है। मुख्य विमान की अधिरचना जो अब नष्ट हो गई है, चार मंजिल की रही होगी, जिसमें सामने की ओर एक स्पष्ट प्रक्षिप्त शुकनासिका अंतराल के ऊपर रही होगी जिसके ऊपर एक नंदी रखा गया होगा। ऊपर शिखर भी वर्गाकार रहा होगा। मुड़े हुए पार्श्वों वाले मंडप में चार उत्कीर्ण स्तंभ हैं जो उसके केंद्रीय घेरे में उठे हुए फर्श और छत के साथ स्थित हैं, जो नौ वर्गों की जाली है और हर जाली में एक कमल बना हुआ है।

गांव के ही अन्य भाग में लगभग 1202 में नामी रेड्डी द्वारा बनवाया गया नामेश्वर मंदिर एक अधिक भव्य रचना है जो बड़े इरकेश्वर की अपेक्षा उत्कीर्णन और मूर्तिशिल्प में अधिक समृद्ध है। इसमें एक पूर्वमुखी विमान है और खुला मुखमंडप एक अंतराल द्वारा जुड़ा हुआ है। उपपीठ नहीं है। मुखमंडप में आगे एक ड्योढ़ी है। मंडप नवरंग प्रतिमान का है जिसमें फर्श के केंद्रीय भाग में चार केंद्रीय स्तंभ और परिधि पर बारह स्तंभ और हैं। नामेश्वर के साथ लगी हुई तीन मंदिरों की एक इकाई है, जिसके तीन मंदिर एक सांझे मुखमंडप के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में खुलते हैं। एक समान बने ये तीनों मंदिर अपेक्षाकृत सादे निर्माण हैं जो पत्थरों के बड़े बड़े खंडों से बनाए गए हैं और जिसके बाहरी भाग पर कोई अलंकरण नही है। नामेश्वर, कामेश्वर और कचेश्वर (अब मुक्कांति शिव मंदिर) नाम के ये मंदिर तेरहवीं शती के आरंभ में नामी रेड्डी द्वारा बनवाए गए थे। इनके ईटों की बनी अधिरचनाओं के नष्ट हो जाने से इनकी अपनी अनेक विशिष्टताए नष्ट हो गई हैं।

घानापुर (जिला वारंगल) में गांव के बीच मिट्टी से बने किले के भीतर बना मंदिर परिसर काकतीय मंदिर परिसर का एक और उदाहरण है। केंद्रीय निर्माण शिव को समर्पित है और उसके सामने एक मंडप है। चारों ओर विभिन्न आकार-प्रकार के अनेक कम स्वतंत्र मंदिर हैं जिनमें से कुछ मंडप युक्त हैं और अन्य ऐसे संलग्न उपांग रहित हैं। मुख्य निर्माण आकार, योजना और उत्थान में पालमपेट के महान मंदिर के समान है। यह पूर्वाभिमुखी है। आधार पर 16.3 मीटर चौड़ा विमान एक बड़े मुखमंडप की पश्चिमी बाजू से अंतराल के द्वारा जुड़ा हुआ है। मुखमंडप की तीन दिशाओं, पूर्व, दक्षिण और उत्तर में प्रवेश ड्योढ़ियां हैं। समस्त निर्माण दुहरी

नींव पर, नीचे चौड़े उपपीठ मंच, और ऊपर निर्माण के वास्तविक आधार अधिष्ठान पर, सामान्य की भांति, स्थित है, जिससे चारों ओर एक खुली परिक्रमा बन जाती है। दुर्भाग्य से विमान की अधिरचना नष्ट हो चुकी है। मंडप के अधिष्ठान के ऊपर सामान्य की भांति बौनी दीवार या वेदी प्राकार से कक्षासन बने हुए हैं और यह दीवार छोटे परिधीय स्तंभों को कोनों पर और दोनों ओर प्रत्येक ड्यौढ़ी प्रवेश पर अवलंब देती है। जैसा कि पालमपेट में है, इन स्तंभों पर नारीस्तंभ दीवारगीर हैं, जो स्तंभ के शीर्षस्थ कक्षीय भाग से निकल कर टोडे और कोर्निस तक ऊपर पहुंचते हैं। दीवारगीर आकृतियां लालित्यपूर्ण मुद्राओं में मदनिकाओं की प्रतीक हैं और हाथियों पर व्याल आरूढ़ हैं, जिनमे से प्रत्येक मानव शरीर है जो उसके बीच खाली स्थान में से निकलता है। अंतराल और मंदिर की दीवारें वैकल्पिक रूप से सपाट भित्तिस्तंभों द्वारा उभारी गई हैं जिससे बीच में अंतर बनते हैं, जैसा कि इस प्रकार के अन्य मंदिरों में है। अंतरों में एक एक भित्तिस्तंभ मॉटिफ है जो पत्रलता मेहराब या तोरण के नीचे एक मंदिर अधिरचना से सज्जित है। यह काकतीय मंदिरों का सामान्य मॉटिफ है। मुख्य भित्तिस्तंभों के आधारों पर देवताओं और नर्तकों के उभरे हुए शिल्पांकन हैं। मंडप के भीतर परिधि पर छोटे छोटे मंदिर हैं, जैसे पालमपेट मंदिर में हैं। इनमें से अब केवल पांच बचे हैं। मंडप की छत नष्ट हो गई है। पूर्वी ड्यौढ़ी के सामने अक्षीय रूप से एक मंडप के भग्नावशेष हैं। आसपास के परिवार मंदिर विभिन्न प्रकार के हैं जिनमें कुछ सामने के मंडप युक्त और कुछ मंडप रहित हैं। उनमें से कुछ में स्तर युक्त अधिरचनाएं जो अभी भी प्रक्षिप्त शुकनासिका सहित विद्यमान हैं। इनमें से कुछ में दक्षिणी विमान शैली की कूट शाला स्पष्ट है। इनमें से अनेक के शिखर वर्गाकार हैं। कम से कम एक मामले में किरीट भाग आमलक प्रकार का है।

वारंगल के किले के भीतर लगभग दर्जन भर मंदिर हैं, किंतु कोई भी बहुत उत्कृष्ट नहीं है। उनमें से अनेक तो केवल छोटे निर्माण हैं, यथा—वीरभद्र, मंडलम्मा, राम, विष्णु, वैंकटेश, स्वयंभू, नीलशंभू, जंगमेश्वर और देवी मंदिर। इसी जिले में कटाचपुर (कटाक्षपुरा) में छोटे मंदिर हैं, जिनकी अधिरचनाएं नष्ट हो गई है।

काकतीय मंदिर, यद्यपि अधिकांश में पश्चिमी चालुक्य समूह से व्युत्पन्न हैं, फिर भी एक विशिष्ट वर्ग में आते हैं। इनमें इकहरी विमान इकाइयां और त्रिकूट इकाइयां सम्मिलित हैं। अनेक मामलों में, विशेष रूप से बड़े मंदिरों में पाषाण के निर्माण के ऊपर अधिरचना ईंट और गारे की बनी है। पानागल के मंदिरों के बीच भी त्रिकूट इकाइयां प्राप्त हैं। हनमकोंडा स्थित 'रुद्रेश्वर वासुदेव' सूर्य परिसर इस प्रकार का बढ़िया उदाहरण है। इस प्रकार की एक इकाई पिल्लालमारी में है। यह और पालमपेट में मुख्य मंदिर के पश्चिम में स्थित मंदिर भी त्रिकूट है। इकहरी विमान इकाइयां, जिसका विशिष्ट उदाहरण पालमपेट स्थित महान मंदिर है, योजना,

उठाव और अलंकरणों में विविधता दिखलाती है। विशेष रूप से विमान एक अंतराल के द्वारा अग्रमंडप से जुडा होता है जिसकी तीन अन्य दिशाओं में ड्यौढ़ियों वाले प्रवेश होते हैं। नवरंग प्रतिमान के अनुरूप मंडप में चार केंद्रीय स्तंभ होते हैं जो बहुत अधिक परिष्कृत और अलंकृत, खराद से आकार दिए हुए होते हैं जिनके आधार और शीर्ष के स्तभ पर कक्षीय खंड सहित शिल्पांकित फलक और मध्यवर्ती बहुकोणीय पट्ट (कमरबंद के समान) युक्त होते हैं। कलश या लसुन, वक्र की अपेक्षा अधिकतर सरल रेखा युक्त और कभी कभी खंडों में बहुभुजाकार होते हैं और कुंभ वृत्ताकार या मसूराकार तश्तरी के रूप में चपटे होते हैं जिनके किनारे लगभग तीखे या संकीर्ण होते हैं। फलक बड़े, वर्गाकार और खंडों में पतले होते हैं। यह सब पश्चिमी चालुक्य मंदिरों में प्राप्त प्रवृत्तियों के विस्तार का सूचक है। पालमपेट स्थित महान मंदिर के स्तभ काले ग्रेनाइट के, खराद पर आकार दिए और बहुत अधिक पालिश किए हुए हैं, जबकि अन्य मंदिरों में वे बालुकाश्म (सैंडस्टोन) के हैं। मंडपों की वेदी के ऊपर ऐसे छोटे परिधीय स्तंभों पर प्रायः मदनिकाओं या पौराणिक पशुओं की असाधारण दीवारगीर (ब्रैकेट) आकृतियां हैं। मंदिर और उनके अक्षीय मंडप प्रायः अपने अधिष्ठान के ऊपर उठे हुए हैं जबकि अधिष्ठान एक, सांझी और बडी उपपीठ पर स्थित है। यह उपपीठ सपूर्ण निर्माण के चारों ओर एक प्रदक्षिणा पथ भी प्रदान करता है और भूमि के स्तर से ऊपर अधिष्ठान पर बनी प्रवेश ड्यौढ़ी तक जाने के लिए सीढ़ियो के जीनों से भी युक्त है। तीन प्रवेश ड्यौढ़ियो से युक्त विमान, अंतराल और मंडप की योजना पालमपेट स्थित महान मंदिर में, साथ ही घानापुर, रेड्डीगुडी और इसी स्थान पर कुछ अन्य मंदिरों में, पालमपेट तालाव के पुश्ते पर भग्नावशेष मंदिर में, और पिल्लालमारी के इरकेश्वर में भी मिलती है। वह योजना, जिसमें मंदिर और अंतराल के पहले स्थित मंडप में एक ही ड्यौढ़ी मिलती है, पिल्लालमारी के बामेश्वर में, घानापुर के एक छोटे मंदिर में और पालमपेट के मंदिर क्रमांक चार में प्राप्त है। केवल एक मंदिर और एक अंतराल वाले भी कुछ मंदिर हैं, जो घानापुर और पालमपेट के लघु मंदिरों में प्राप्त हैं, कुछ में अंतराल नहीं है। वेदिका मंडप के ठीक पीछे स्थित है और इसलिए केवल मदिर ही है। कभी कभी गर्भगृह की दीवारें सादी हैं जैसे कि पालमपेट में तालाब के पुश्ते पर स्थित मंदिर में है। पार्श्वों के मोड़ सामान्यतया अधिक स्पष्ट नहीं है। जब एकांतर रूप से प्रक्षिप्त और अंतरित हों, तो खंड चौड़े, सपाट भित्तिस्तंभ प्रतिमानों से युक्त होते हैं, कभी कभी जिनके आधारों पर मंदिर या वेदिका मॉटिफ बने होते हैं। अंतरों में इकहरे भित्तिस्तंभ हैं जिनके ऊपर एक वेदिका शीर्ष और अध्यारोपित पत्र लता तोरण हैं। प्रस्तर का कपोत खडो में वक्र नहीं होता जैसा कि पल्लवों और चालुक्यों के आरंभिक उदाहरणों में प्राप्त है। बल्कि यह एक ढलवां, सीधा प्रक्षिप्त कगार है, जो कभी बड़ा भी होता है। अंतराल और

अग्रमंडप के ऊपर प्रस्तर, विमान की अधिरचना के निचले तल के समान ही, कूट प्रकार की लघु वेदिकाओं के हार से युक्त हैं, जो प्रायः ईट और गारे से निर्मित है। यह अनुवर्ती विजय नगर मंडप प्रस्तरों के विशिष्ट मेहरावदार ताकों जैसी वेदिका शृंखला चंचु का अग्रदूत है। विमान की अधिरचना के अग्रभाग मे प्रक्षिप्त शुकनासिका एक अपरिवर्तनीय विशिष्टता है, जो मंदिरों की चालुक्य व्युत्पत्ति की सूचक है। अंतराल और मंदिर के प्रवेश अधिद्वार प्रतिमान से बने हैं, जिसमें शाखा की रचना में, एक ऊर्ध्व छिद्रित 'जालक' खिड़की का प्रतिमान समाविष्ट है। सरदल में गजलक्ष्मी या अन्य देवताओं का ललाट बिंव है, जो कभी कभी द्वार के बाजू की चौखट के ऊपर बने मकर मस्तकों से निकले लहरदार तोरण की मध्य कुंडली में बना होता है। आरंभिक चालुक्य नमूनों के समान द्वार की चौखट के ऊपर प्रस्तर में लघु वेदिका शीर्षो की एक शृंखला है। वेदिका मंदिर की दीवारों के प्रक्षिप्त खंडों पर उभरे हुए भित्तिस्तंभों में भित्तिस्तंभों की जोड़ी के बीच उथले देवकोष्ठ हैं जिनके ऊपर प्रस्तर वेदिका की अधिरच्रनाएं एकल या पंक्ति में हैं। वड़े विमानों के कुछ मामलों में मध्यवर्ती खंड सर्वाधिक प्रक्षिप्त हैं। जिस पर उसका देवकोष्ठ और मुख्य निर्माण से संलग्न पार्श्व विमान के सदृश्य अधिरचना है। यहां और अन्यत्र भी ये लघु वेदिका शीर्ष एक वर्गाकार या वृत्ताकार शिखर युक्त विमान श्रेणी या शीर्ष पर आमलक युक्त प्रासाद श्रेणी के है। एक अन्य विशिष्ट सजावटी मॉटिफ स्वस्तिक आकार का पाटलक (गुलाबवत) या क्रॉस के आकार में चार पंखुरियों वाले कमल को देखा गया है। यह प्रतिमान पश्चातकालीन विजयनगर साम्राज्य के इक्केरी क्षेत्र और वहां केलादि नायकों के मंदिरों तक आगे उपयोग किया गया।

काकतीयों के लगभग पचास मंदिर ज्ञात हैं, परंतु उनमें से अधिकतर ध्वंस की विभिन्न अवस्थाओं में हैं। फिर भी इनमें से कुछ कदंब चालुक्य विमान प्रतिमान के हैं, जिन पर अलग से विचार किया गया है।

संरचनात्मक पाषाण मंदिर–अंतिम चरण

विजयनगर मंदिर

दक्षिण में आरंभिक मुस्लिम आक्रमणों के बाद, जिससे अब तक अविच्छिन्न मंदिर निर्माण गतिविधि मंद पड़ गई थी, लगभग आधी शताब्दी तक अस्थाई सन्नाटा बना रहा। चौदहवीं शताब्दी के मध्य में मुस्लिम विजय अभियान को रोकने के युयुत्सु विजयनगर साम्राज्य के उदय ने (जिसने इस प्रक्रिया में जल्दी ही पूरे प्रायद्वीप को घेर लिया) विद्यमान निर्माणों के जीर्णोद्धार या परिवर्धन और नयों के निर्माण के द्वारा मंदिर वास्तुशिल्प को एक नई और जोरदार गति दी। विजयनगर या हम्पी में अपनी राजधानी सहित अपने साम्राज्य के उत्तरी भाग में उन्होंने परवर्ती चालुक्यों, काकतीयों और होयसलों द्वारा उनके समय तक वहन की गई वास्तुशिल्पीय परंपरा और उनके दक्षिणी प्रांतों में परवर्ती पांड्यों तक विकसित हुई परंपरा को उत्तराधिकार में पाया था। इसलिए, दक्षिण में उनके उत्तरी अधिकार क्षेत्र, आंध्र और कर्नाटक क्षेत्रों में उनके मंदिरों ने चालुक्यों, होयसलों, काकतीयों से प्रेरित बहुत कुछ बचा रखा, जबकि तमिलनाडु और दक्षिणी केरल में उनके अधिकतर दक्षिणी निर्माणों ने पल्लव चोल पाड्य वास्तुशिल्प की विशेषताओं को अविच्छिन्न रखा। परंतु जैसा कि बताया जा चुका है, जहां तक उत्तरी क्षेत्रों का संबंध है, उन्होंने एक विशेष परिवर्तन किया–अपने विशाल साम्राज्य में सभी स्थानों पर कठोर पत्थर से निर्माण की परंपरा और तकनीक को अपनाया और अब तक प्रचलित नर्म पत्थर से निर्माण के प्रचलन का वहिष्कार किया। हम्पी की अपनी विशाल राजधानी में, जो अब भग्नावशेष है, अनेकानेक मंदिर हैं, सब के सब कठोर पत्थर के, जो दो, चालुक्य–राष्ट्रकूट–होयसल–काकतीय शृंखला और पल्लव–चोल–पांड्य शृंखला में से एक की विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं। पेनुकोंडा (अनंतपुर जिला), चंद्रगिरि (चित्तूर जिला) और वेल्लोर (उत्तरी अर्काट) जैसी उनकी अनुवर्ती राजधानियों और उनके पड़ोस और उनकी प्रांतीय राजधानियों या उनके प्रतिनिधि नायकों की राजधानियों वेल्लोर (उत्तरी अर्काट) जिंजी (दक्षिणी अर्काट) तंजावुर, मदुरै, और इक्केरी (जिला शिमोगा) में भी उनके काल के मंदिर हैं। वास्तव में,

विजयनगर के शासक अपने शासन में चोलों के काल से भी अधिक मंदिर निर्माण गतिविधियों के साक्षी रहे। उनके कुछ मंदिर अपने अवयव संरचनाओं, जैसे—मंडपों और गोपुरों के विशाल आकार-प्रकार के लिए असाधारण हैं।

तत्कालीन नर्म पाषाण वाली परंपरा के विपरीत, विजयनगर साम्राज्य के घरेलू प्रांतों या उत्तरी भागों में मंदिर वास्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प सहित निर्माण गतिविधियों में निर्माण के ढांचे में कठोर पाषाण का चयन एक पर्याप्त विशिष्ट कदम था। यह एक निश्चित विचलन का सूचक था और इसने अभिकल्पकों और वास्तु और मूर्तिशिल्पकारों को नई सामग्री के संदर्भ में विचार करने के लिए विवश कर दिया और उन्हें संख्या और गुण की दृष्टि से अपनी ऐसी श्रेष्ठतम कृति को प्रस्तुत करने के लिए उन्हें विवश किया, जो विजयनगर युग के लक्ष्यों और प्रतिभा को प्रतिबिंबित करे। नए राजधानी नगर की विशाल राजगिरी के अनेक दीवारों वाली और व्यापक किलेबंदी, विशाल फाटकों और अन्य सुरक्षा कार्य, जो अब तुंगभद्रा के तट पर श्री विरुपाक्ष या पंपावती के पूर्ववर्ती विद्यमान मंदिर के आसपास प्रसिद्ध हम्पी भग्नावशेष के रूप में, विशाल ग्रेनाइट पहाड़ियों की शृंखला के बीच मौजूद हैं और तब से नगर के भीतर और बाहर बने अनेक मंदिर जो सबके सब स्थानीय पहाडियों से खोदे गए कठोर पत्थरों से बने थे, ध्यान देने योग्य हैं। यह नई राजधानी नदी के पार दाहिने तट पर स्थित है, जबकि पुरानी राजधानी अनेगुडी बाएं किनारे पर स्थित है। नई राजधानी विजयनगर कहलाई जिस पर से इस राजवंश का भी नाम पड़ा।[1]

---

1 वैकल्पिक रूप से, महान संत और गुरु विद्यारण्य के सम्मान मे इसे विद्यानगर भी कहा गया। वे शृंगेरी शंकराचार्य परंपरा के संन्यासी थे जिन्हें महान धर्म गुरु विद्याशंकर या विद्यातीर्थ द्वारा स्वयं दीक्षा दी गई थी और वे उनके बाद स्वयं धर्मगुरु बने। हम्पी क्षेत्र मे विद्यारण्य के संन्यासी के रूप में निवास के समय (जब विद्याशंकर शृंगेरी) मठ मे धर्माध्यक्ष थे। उन्होने दोनों राज बंधु, राजवंश के संस्थापक हरिहर प्रथम और बुक्का को अपनी प्रोत्साहक आध्यात्मिक देखभाल के अंतर्गत लिया और निरंतर उनके गुरु, मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में तत्कालीन घटनाओं मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो विजयनगर के नए हिंदू साम्राज्य के रूप में पराकाष्ठा पर पहुंची। संत के संरक्षण में विरुपाक्ष प्रथम ने नई राजधानी मे 18 अप्रैल, 1336 को अपने राज्याभिषेक का उत्सव मनाया और भगवान विरुपाक्ष की साक्षी मे उनके प्रतिनिधि के रूप मे राज्य पर शासन करने की प्रतिज्ञा ली, जिसके प्रतीक के रूप में श्री विरुपाक्ष की हस्त्य मुद्रा अगीकार की जो उसी रूप में जारी रही। समस्त राजचिह्न अपने गुरु विद्यारण्य के चरणो मे कृतज्ञता और आदर के साथ समर्पित करते हुए उसने कर्नाटक सिंहासन प्रतिष्ठापनाचार्य के रूप में उनका अभिवादन किया। यह एक ऐसी उपाधि है जिसे आज तक उत्तरोत्तर शृंगेरी मठ के समस्त धर्माचार्यो ने धारण किया। इसके साथ ही उस समय सम्राट द्वारा संत को दिए गए सारे राज सम्मान भी शृंगेरी मठ के धर्माचार्य धारण करते है। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उस उत्साह और प्रेरणा के उचित मूल्यांकन में सहायता करेगी जिससे विजयनगर के सस्थापको और उनके उत्तराधिकारियों ने, देश की भग्न राज व्यवस्था

→

नई राजधानी में और उसके आसपास पाषाण निर्माणों की अत्यावश्यक मांग और कठोर, दुर्भेद्य पत्थरों पर काम करने की तकनीक की जानकारी की आवश्यकताएं, कि जिस (पाषाण) सामग्री में हम्पी और आसपास का भूभाग समृद्ध था, शायद और आगे दक्षिण से पूरी हुई, जहां कई शताब्दियों से कारीगर कठोर पाषाण परंपरा में दीक्षित हो चुके थे और शायद उत्तर मे काकतीय क्षेत्र से भी पूरी हुई जहां कठोर पाषाण में मूर्तिशिल्प तब तक प्रचलन में आ चुका था।[1] इससे विजयनगर के शिल्पी निकायों को अपनी आरंभिक उपलब्धियों में भी सहायता मिली होगी जो आक्रमणो और उथल-पुथल के कारण आ गए ठहराव के बाद यथेष्ट थी।

कठोर पाषाण में विमान मदिर के विकास की अविच्छिन्नता के व्यतिक्रम की समस्या उस क्षेत्र में इतनी तीक्ष्ण नहीं थी क्योंकि कठोर पाषाण सारे समय दूरस्थ दक्षिण का चयन और लक्षण बना रहा, जहां तक कि जल्दी ही हरिहर के समकालीन और उत्तराधिकारी के शासन में विजयनगर का आधिपत्य फैल गया था। विजय-नगर साम्राज्य में सम्मिलित हो गए तमिलनाडु के भागों और केरल में यह केवल विमान मंदिर रूपाकारों की तव तक अविच्छिन्न शृंखला को, विजयनगर मुहावरे के अनुरूप तत्कालीन प्रतिभा द्वारा प्रवर्तित अधिमिश्रणों (मॉडयूलेशंस) और नवाचारों से युक्त नए विजयनगर सूत्रों को गढ़कर, बनाए रखने का कार्य था। इस प्रकार दक्षिणी विमान पद्धति की यह विकासशील शृंखला साम्राज्य के अंत पर उत्तराधिकारी नायक शासकों को हस्तांतरित की जा सकी जिन्होंने विरासत छोड़ने

→ और धर्म के पुनर्निर्माण का, उस समय विद्यमान मदिरो और सस्थानों को पहुचाई गई क्षति के पुनरुद्धार का और इसके अतिरिक्त अनेक नए मंदिरों के निर्माण, स्थापना और उनके रख रखाव के लिए सुविधाएं प्रदान करने का, उत्तरदायित्व सभाला था।

1. एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे शिल्पी निकायो के ऐसे प्रवास या आव्रजन अज्ञात नहीं है। एकाश्मक रथों के समकालीन, सातवीं शती की लिपि मे महाबलिपुरम के एक शिलालेख में ऐसे कारीगरो के दल की एक सूची दी गई है—*एक मुख्य वास्तुशिल्पी निर्माता (परमूलाच्छन्न)* एक स्थान [केवड (?)] से, *कल्याणी का एक लुहार* (कठोर पत्थर काटने के लिए छेनी या टॉकी पर 'पानी चढ़ाने' के लिए, जिसका नाम 'कोलन सेमकन' था इत्यादि। (देखिए के. आर. श्रीनिवासन, *द धर्मराज रथ एड इट्स स्कल्पचर्स*, नई दिल्ली, 1975, पृष्ठ 45)। इसी प्रकार "विक्रमादित्य द्वितीय की रानी द्वारा बनवाए गए विरुपाक्ष मंदिर (पट्टदकल) की अत्यधिक उन्नत डिजाइन और निष्पादन, कांचीपुरम से लाए गए कारीगरों और उनके द्वारा कैलासनाथ मंदिर की, जो कुछ दशक पूर्व पल्लव राजधानी में *अस्तित्व मे आ चुका था, सीधी अनुकृति के कारण ही संभव हो पाया।"* (के. ए एन. शास्त्री, *अ हिस्ट्री ऑव साउथ इडिया*, तीसरा संस्करण, मद्रास, 1966, पृष्ठ 452)। यह दिखाने के लिए लिखित प्रमाण उपलब्ध है कि द्राविड (तमिल) कारीगरो का एक निकाय चालुक्यो के प्रदेश मे काम करने के लिए आया था क्योकि शिलालेख में स्थानीय शिल्पी निकायो की तुलना में अप्रवासियो की तुलनात्मक स्थिति से संबंधित मामलो के निपटारे का संदर्भ दिया गया है।

के पूर्व उसमें परिवर्धन करके उसे नायकोत्तर काल से आज तक अविच्छिन्न बनाए रखने योग्य बना दिया।

किंतु इधर निकट में साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्रों में व्यतिक्रम अधिक स्पष्ट रूप से देखा गया, जो न केवल विदेशी आस्था वाले मूर्तिभंजक शासकों द्वारा राजनीतिक आधिपत्य पर बल्कि अन्य स्थानीय और जटिल कारणों पर भी निर्भर था। अब तक प्रचलित नर्म पत्थर से काफी नए और अल्पवश्य कठोर पाषाण में परिवर्तन और इसके अतिरिक्त, निकट पूर्ववर्तियों, होयसलों और उनसे पहले पश्चिमी चालुक्यों द्वारा छोड़े गए सैकड़ों प्रतिमानो के कारण जो वास्तुशिल्प के इतिहास में विशद प्रदर्शन और युगांतरकारी रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है, माग की यथेष्ट पूर्ति नहीं हो सकी। उनकी योजना और उत्थान की यही विलक्षणता विजयनगर शृंखला के लिए प्रारंभिक बिंदु को झेल नहीं सकी। जैसा कि कहा जाता है, वे दोनों बंद गली बन गए, जिसने, उनके पूर्वगामियों, राष्ट्रकूटों और उनके पूर्व आरंभिक चालुक्यों द्वारा बनाए गए विकास के मुख्य मार्ग से,[1] विचलित कर दूर कर दिया। ये मार्ग वास्तुशिल्पी सिद्धांतों में संहिताबद्ध हैं, आरंभिक विजयनगर मदिर निर्माता और मूर्तिकार आरंभिक चालुक्य क्षेत्र के मंदिर वास्तुशिल्प के उस पालने में सुलभ पूर्व विकसित रूपाकारों और प्रकारो पर ध्यान देने के लिए विवश हो गए। इस आरंभिक चालुक्य क्षेत्र ने भारत के उत्तर को दक्षिण से जोड़ा और आरंभिक रूपाकारों तथा उनके उत्परिवर्तनों के मिश्रण, जिसने उत्तराधिकारी राजवशों के तत्वावधान में विकसित भूदृश्य को भर दिया था, में से मूलभूत और लाक्षणिक रूप से दो दक्षिणी प्रवृत्तियों को चुना।

इन दो चुने गए प्रकारों में से एक शुकनासा युक्त दक्षिणी विमान रूपाकार था, जो आरंभिक चालुक्य राष्ट्रकूट काल से व्युत्पन्न था। क्षेत्र में प्राचीनता और

---

1. पश्चिमी चालुक्य शैली द्वारा विशेषरूपेण प्रतिपादित अधिरचना के क्षैतिज विभाजन की परिव्याप्त दृढता के विपरीत नींव से ऊपर, उत्तरी रेखा प्रासादों के भद्रा या रथ प्रक्षेपों का स्मरण दिलाने वाले सर्वोच्च तत्वो के नीचे, शिखर तक ऊर्ध्व मोड़ों या लहरदार आकार पर अत्यधिक बल इच्छित प्रतिमान अच्छे प्रकार से प्रदान नहीं कर सका। क्योंकि, क्षैतिज विभाजन पर बल के परिणामस्वरूप अधिरचना की वहुस्तरीय प्रकृति मान्य दक्षिणी विमान पद्धति की अनिवार्यता थी। क्षैतिज विभाजन और स्तर विन्यास के वास्तविक अभिलोपन की लगभग सीमा तक दमन के ऐसे परिप्रेक्ष्य मे होयसल शैली समाधान नहीं कर सकी। इसी के समान किंतु आधार से लगभग शिखर तक विस्तृत ताराकृति उर्ध्व लहरदार निर्माण में, जिस पर होयसल शैली में अधिक बल दिया गया, आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकी। पाषाण की लभ्य नमनीयता और साथ मे उत्कीर्णन के लिए बड़े स्थान की उपलब्धता, जो ऊर्ध्वगामी मोड़ों का परिणाम थी, ने मूर्तिशिल्प और अलंकरण के ऐसे प्राचुर्य को प्रोत्साहित किया, जो विजयनगर के कारीगरो द्वारा अपने काम के लिए अपनाई गई कठोर पाषाण सामग्री में उतनी सरलता से नही किया जा सकता था। असाधारण कार्य और परितृप्तिदायक प्राचुर्य, दोनों ही दृष्टियों से होयसल पद्धति इस प्रयत्न में लगभग चुक गई।

सर्वव्यापकता में समान अन्य चयन कदंब नागर, एक कदंब चालुक्य रूपाकार (अगले अध्याय नवम में कालक्रम शृंखला में वर्णित) अधिरचना थी जो उत्तरोत्तर घटते हुए, एक के ऊपर एक अध्यारोपित स्तरों से बनती थी। इसमें प्रत्येक स्तर क्षैतिज या ढलवां (अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में) या वक्र ओलती कपोत अंग होते हैं और सबसे छोटे शीर्षस्थ स्तर पर ग्रीवा शिखर स्तूपी का समुच्चय होता है। यह रूपाकार उत्तर पूर्व में उड़ीसा की विरासत के पिदादेऊल मंदिरों, गुजरात में प्राप्त फनसनाकार शिखर और दक्कन के उत्तर-पश्चिम में पश्चिमी भारत में मिले रूपाकारों के समान है।[1] हम्पी और उसके आसपास मिले मंदिर, जो विजयनगर प्रसिद्धि के अधिकतम संचय का गठन करते हैं, बड़ी स्पष्टता से इस द्विभाजन को, अपने इन दो मूल भंडारों में से एक या दूसरे के साथ अनुरूपता के द्वारा, प्रदर्शित करते हैं। दोनों वर्गों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मंदिरों पर आगे और अगले (नवम) अध्याय में विचार किया गया है।

विजयनगर के मंदिर निर्माताओं ने जल्दी ही उपरोक्त दो चुनी हुई प्रवृत्तियों को अपना लिया और लाक्षणिक रूप से विजयनगर मंदिर के विकास में छलांगें भरने लगे। इनमें से अनेक मंदिर अंततः अत्यंत प्रवीणता और उन्नायक स्पष्टता के विशाल और गौरवशाली संरचनात्मक नमूनों के रूप में सामने आए। किंतु उदीयमान साम्राज्य के आरंभिक वर्षो में जहां भी विशालाकार निर्माण की चुनौती सामने आई, जो उदीयमान साम्राज्य की आकांक्षा और गर्व के अनुरूप थी, विजयनगर के वास्तुशिल्पियों ने कुछ प्रभावशाली और साहसी प्रयोग करके उसका उत्तर दिया और ऐसे निर्माण प्रस्तुत किए जो भौगोलिक और सांस्कृतिक संदर्भ में असामान्य लग सकते हैं किंतु फिर भी योग्यता और उत्कृष्ट रचना प्रदर्शित करते हैं। ऐसा एक उदाहरण, जो अनेक प्रकार से विशिष्ट है, पश्चिमी घाट पर मलंद के अधिकतम वर्षा वाले क्षेत्र में बहुत ऊंचाई पर शृंगेरी (जिला कदूर चिकमगलूर) में विद्याशंकर मंदिर है। यह विजयनगर साम्राज्य के इक्केरी प्रांत में था—और शंकर द्वारा स्थापित आमनय मठों की प्रमुख पीठों में से एक रहा है। मंदिर का निर्माण संत विद्यारण्य की प्रेरणा से हरिहर और बुक्का राजसी संरक्षण के अंतर्गत पूर्ववर्ती और विख्यात धर्माचार्य विद्याशंकर, जिन्हें विद्यातीर्थ भी कहा जाता है, की स्मृति में उनके अदृश्य होने के स्थान पर करवाया।[1] यह मंदिर पारंपरिक विवरणों के अनुसार सन् 1338 में स्थापित किया गया था, किंतु शृंगेरी के एक लेख के अनुसार यह 1356 में स्थापित किया गया। जबकि पहली तिथि इस स्थान पर बनाए गए एक आरंभिक

1 अधिरचनात्मक स्तरों में ग्रीवा शिखर स्तूपी शीर्ष मे पराकाष्ठा पर पहुंचते कदंब नागर ढंग के साथ दक्षिणी विमान के ढंग का संयोजन सर्वाधिक सामान्य संयोजन था। शुकनासा उपस्थित हो या न हो और दूसरा रूपाकार धर्म निरपेक्ष निर्माणों में भी अपनाया गया, जैसे हम्पी में जनाना अहाते मे कमल महल मे और जिजी (जिला दक्षिण अर्काट) में राजगिरि के निचले किले के कल्याण महल में।

केंद्रीय मंदिर का संकेत देती होगी, दूसरी तिथि यह इंगित देती होगी कि इस स्थान पर वर्तमान में खड़ा संपूर्ण रूपेण पत्थर का बड़ा मंदिर इस वर्ष तक पूर्णावस्था में आ गया होगा। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि मंदिर की स्थापना विजयनगर की, नगर और साम्राज्य दोनों की स्थापना के कुछ ही वर्षों के भीतर हो गई थी।

स्थानीय लाल ग्रेनाइट से निर्मित मंदिर विजयनगर मंदिरों में सबसे बड़ा कहा जा सकता है। इसमें मंदिर और अक्षीय मंडप एक इकाई में जुड़े हुए हैं। आयोजना पर, नींव से आदितल और मंडप प्रस्तर तक, यह दुहरी चापवाला है, जिसमें दो बड़ी चापें एक-दूसरे अपने खुले छोरों पर मिलती हैं, जिसका परिणाम है एक दीर्घ वृत्ताकार (अंडाकार) जो अपेक्षाकृत दीर्घीकृत है। बाहरी वक्र अर्धवृत्त छोर क्रमशः पूर्वाभिमुखी और पश्चिमाभिमुखी हैं। इस समुच्चय (दीर्घवृत्त) पश्चिमी अर्धभाग में मंदिर है, जो विमान के आधे भाग को आकार देता है। पूर्वी अर्धभाग में एक बड़ा स्तंभयुक्त मंडप है। दोनों के बीच एक संकीर्ण उत्तर-दक्षिणी अनुप्रस्थ मार्ग है। यह सब एक अधिष्ठान पर स्थित है जो एक उपपीठ द्वारा ऊंचा कर दिया गया है और दोनों एक ही दीर्घवृत्ताकार आयोजना पर स्थित हैं। निचला उपपीठ कुल लंबाई चौड़ाई में थोड़ा बड़ा है, जिससे उसके ऊपर अधिष्ठान के चारों ओर एक संकीर्ण खुली परिक्रमा बन जाती है। एक उपपीठ या उप आधार का प्रावधान एक वैकल्पिक अवयव है जिसका एकमात्र लक्ष्य, ग्रंथों के अनुसार निर्माण की ऊंचाई और महत्व बढ़ाना है और यह चालुक्य और उनके वंशजों के निर्माणों की एक अपरिवर्तनीय विशिष्टता है। इसके स्तरों और गढ़नों में अस्पष्ट कुदु अलंकरणों से युक्त एक कपोत सहित दक्षिणी मानदंडों का अनुसरण किया गया है। अधिष्ठान के स्तरों में परवर्ती चालुक्यों और होयसलों के प्रतिमानों का, रूपाकार और उसके छह प्रक्षिप्त स्तरों और एकांतर रूप से बने पांच उत्कीर्णित अंतरालों में अनुसरण

1. यह कहा जाता है कि विद्याशंकर एक भूमिगत समाधि में एक खोदे गए गढे में चले गए थे। जिसे उनके प्रवेश के बाद बंद कर दिया गया था, संत द्वारा निश्चित किए बारह वर्षो की समाप्ति के पूर्व ही उत्सुकतावश तीन वर्ष बाद ही समाधि को किसी अविवेकी शिष्ट द्वारा प्रवास पर गए उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में खोल लिया गया तो वहां संत के समस्त भौतिक चिह्न अवश्य पाए गए। विदेह मुक्ति के इस स्थान पर एक शिवलिंग स्थापित करके उसे पवित्र किया गया जिस पर जल्दी ही एक मदिर बना दिया गया। विश्वास किया जाता है कि ये आचार्य और संत अपनी आध्यात्मिक दीप्ति में, इस स्थान के संबंध में विचक्षण आध्यात्मिक प्रभाव को फैलाते हुए स्वयं को प्रकट करते रहते हैं और आज भी शृंगेरी के कामकाज मे प्रेरणा और मार्गदर्शन देते हैं। इन्हें जो महत्व और आदर विजयनगर के राजवंश और पीठ के उत्तराधिकारी धर्माचार्यो द्वारा दिया गया, उसे इस तथ्य से समझा जा सकता है कि पीठ के हस्ताक्षर और मुद्रा, अधिकारी धर्माचार्य का व्यक्तिगत नाम चाहे जो हो, अभी भी 'श्री विद्याशंकर' है, जबकि सारे विजयनगर राजाओं के राजसी हस्ताक्षर 'श्री विरुपाक्ष' थे जो कि हम्पी के संरक्षक देवता थे। यह समकालीन शिलालेखों और ताम्रपत्रों मे भी प्रचलित रहा है।

हुआ है। जैसा कि होयसल रूपाकारों में है, वे अश्वों, हाथियों, कमलों की चित्र वल्लरियां और शीर्ष फलकों पर पुराण के प्रसंगों का शृंखला में और किसी स्थानीय घटना का शिल्पांकन में ऐतिहासिक वर्णन है।

ऊपर की दीवार, संरचना के पिछले या पश्चिमी भाग की बाह्य भित्ति है जो अंतरभित्ति को घेरे हुए है जिसमें गर्भगृह स्थित है और इस प्रकार विमान संधान प्रकार का है, जबकि संरचना के पूर्वी भाग पर यह एकदम बाहर की दीवार के भीतर बारह स्तंभों से युक्त रंगमंडप पर स्थित है। पश्चिमी चालुक्यो के प्रतिमानों की नकल पर अगली और पिछली चापों के उन्नतोदर भागों में अंतराल से सात मुख्य ऊर्ध्वगामी भद्राएं बनी हुई हैं, जो और आगे मोड़ दी गई हैं। ये उड़ीसा के मंदिरो के सप्त रथ या उत्तरी प्रासादों के समान दिखाई पड़ती हैं। छह मुख्य खंडों में छह द्वार हैं, एक एक अगले या पूर्वी छोर पर और पिछले या पश्चिमी छोर पर, दो दो, दोनों बगलो दक्षिण और उत्तर में। छहों दरवाजे इस तरह व्यवस्थित हैं कि प्रत्येक अर्धवृत्ताकार अर्धभाग में तीन, एक केंद्रीय और दो पार्श्ववर्ती द्वार हैं।

बड़े भद्रा प्रक्षेपों में से एक के भीतर प्रत्येक द्वार पर एक अलंकृत द्वार चौखट प्रदान की गई जिनमें अनेक सखा अवयव हैं जैसी कि चालुक्य मंदिरों और उनकी व्युत्पत्तियों और उत्तरी मंदिरों में प्रथा थी। सरदल पर एक गजलक्षी उत्कीर्ण है और हर द्वार प्रवेश पर एक चौड़े प्रक्षिप्त कोर्निस का अस्तित्व काकतीय पद्धति का स्मरण दिलाता है। प्रत्येक बाजू (द्वार के पार्श्व में लगने वाले पाषाण या काष्ठ पट्ट) के आधार पर सामान्य नदी देवी का पटल है। हरेक दरवाजे की देहरी तक अधिष्ठान के ऊपर बने सात सीढ़ियों के जीने द्वारा पहुंचा जाता है जबकि नीचे उपपीठ की ऊंचाई पर तदनुरूप छह सीढ़ियों वाले सोपान बने हैं। हरेक के बगल में एक गज युगल का जंगला बना हुआ है जैसा कि होयसल उदाहरणों में प्राप्त है। पूर्वी द्वार मुख्य प्रवेश द्वार है।

बाह्य भित्ति के दाए घुमाव पर संपूर्ण शीर्षो युक्त भित्तिस्तंभों की एक शृंखला है और भित्तिस्तंभों की जोड़ियों के बीच के खाली स्थानों पर देवकोष्ठ या तोरण प्रकार के ताक हैं। इनमें विविध प्रतिमा की साठ से अधिक मूर्तिया या मूर्ति समूह की विशिष्ट मंडली प्रतिष्ठापित है, जो दीवार को मूर्तियों और प्रतिमा विज्ञान का एक वास्तविक संग्रहालय का रूप देती है। यह कठोर पाषाण में उसकी नकल है जो पूर्वज होयसलों ने अपने नर्म पाषाण की सामग्री में किया था। मूर्तियों में शैव, वैष्णव और शाक्त के अतिरिक्त बुद्ध और जिन मूर्तियां भी हैं, जो योजना को यथेष्ट उदार बनाती हैं। छह मे से हर द्वार एक जोड़ी द्वारपालों द्वारा रक्षित है। छह में से दो जोड़ियां शैव और दो जोड़ियां वैष्णव हैं, जबकि शेष दो जोड़ियां शाक्त द्वारपालिकाओं की हैं जो कि उनकी वेशभूषा और उनके लक्षणों से पहचाना जा सकता है। दीवार के ऊपर प्रस्तर है जिसमें सामान्य प्रस्तर अवयव हैं परंतु अंतर

यह है कि सभी पूर्व युगों मे देखे गए अनलंकृत एकल झुके हुए कपोत के स्थान पर कपोत या मुड़े हुए कोर्निस या ओलतियां दुहरे मोड़ युक्त हैं। यह विशिष्ट विजयनगर नवाचार है। यही नहीं, इसके भीतरी ओर वक्र तीलियां और जोड़ने वाली अर्गलाएं शिल्पांकित हैं, जो प्राचीन कपोतों के मूल काष्ठ ढांचे की नकल है, जो तीलियों वाले ढांचे पर वक्रित धातु चादर के होते थे और ओलती के रूप में काम करने के लिए शहतीरों के ऊपर प्रक्षिप्त किए जाते थे। यह उत्कृष्ट अनुकृति अनेक विजयनगर संरचनाओं में देखने को मिलती है जैसे उदाहरण के लिए कांचीपुरम में वरदराजा मदिर के विख्यात कल्याण मंडप में। एक अन्य विशिष्ट विजयनगर नवाचार, जो शायद उनके कारीगरो द्वारा कठोर पाषाण पर काम करने में प्राप्त किए गए कौशल को प्रदर्शित करने के लिए किया गया, पाषाण शृंखला के लटकनदार मोजक हैं, जो उसी कोर्निस या कपोत के कोने के पाषाण से तराशे गए जो मंदिर के पूर्वी कोने के घुमाव पर मिलता है। यह चमत्कार बाद में सर्वव्यापक हो गया।

पिछले अर्धवृत्त की भीतरी दीवार के अंदर गर्भगृह है जिसमें प्रमुख विद्याशंकर लिंग प्रतिष्ठित है और उसके साथ सामने एक संकीर्ण अंतराल स्थित है। अतराल के दोनो पार्श्वों पर और पूर्व में खुलते द्वारों के साथ अंतराल की रेखा में दोनों तरफ एक एक कक्ष है। दक्षिण वाले कक्ष में गणपति और उत्तर वाले कक्ष में दुर्गा प्रतिष्ठापित हैं, जैसा कि चालुक्य काल से ही मानदंड बन गया था।[1] मंदिर भाग के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर मे तीन समृद्ध उपमंदिर हैं जैसे कि कुछ पश्चिमी चालुक्यों के मदिरों में पाए जाते हैं, जो क्रमानुसार दिशाओ में मुंह किए हुए हैं। दक्षिण में स्थित मंदिर में ब्रह्मा अपनी पत्नी सरस्वती के साथ प्रतिष्ठित हैं। पश्चिम में पिछली ओर विष्णु अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ और उत्तर में स्थित मंदिर में महेश्वर या शिव अपनी पत्नी उमा के साथ विराजित है। इस तरह से मुख्य मदिर के आसपास पांच उपमदिरो का एक पचायतन परिसर बन जाता है, जो गर्भगृह को घेरे हुए है। पिछले अर्धवृत्त की बाहरी दीवार में तीन द्वार प्रत्येक, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में स्थित क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव के उपमंदिरों के सामने पडते है। परिसर के सामने वाले भाग मे उत्तर-दक्षिण अनुप्रस्थ मार्ग की सामने की दीवार में तीन प्रवेश हैं। मध्य का प्रवेश अंतराल के सामने है और पार्श्व के दोनों मे से एक एक शिव, गणपति और दुर्गा मदिरों के सामने हैं, जबकि भीतर, अनुप्रस्थ मार्ग जिसके पश्चवर्ती पश्चिम के दोनों छोरों पर एक एक प्रवेश द्वार की

1 चालुक्य मदिरों और उनसे व्युत्पन्न मंदिरो मे प्राय दुर्गा और गणपति के छोटे छोटे मदिर महामडप में अंतराल के सामने थोड़ी दूरी पर एक-दूसरे की ओर मुह किए हुए होते है। पल्लव पांड्यों और उनके व्युत्पन्न मदिरो मे वे अर्धमडप की बाहरी दीवारों पर उत्तरी और दक्षिणी देवकोष्ठ ताकों में स्थान पाने लगे।

सुविधा है, पूरे परिसर के चारों ओर स्थित प्रदक्षिणा पथ से अविच्छिन्न है। यह प्रदक्षिणा पथ मुख्य बाहरी और भीतरी दीवारों के बीच संधारा मार्ग से जुड़ता है। अंतराल के अग्रभाग में दो द्वारपाल हैं, विस्मय की बात है कि उनमें से एक हनुमान है जबकि दूसरा संत भृंगी है।

संरचना के पूर्वी अर्धवृत्त या अर्धभाग के भीतर एक बड़े स्तंभोंवाला मंडप है जिसमें परिधि पर बारह स्तंभ हैं, जिसमें से प्रत्येक मिश्रित विशिष्टताओं का एक विशाल एकात्मक है, जो आगामी समय में विजयनगर मंदिरों की विशेषता बन गया। प्रत्येक स्तंभ में एक मोटा, भारी केंद्रीय दंड है, जिसके अग्रभाग पर उत्कीर्णित एक झुके हुए हाथी पर दहाड़ता हुआ व्याल आरूढ़ है। दोनों की सूंडें आपस में गुंथी हुई हैं। व्याल के मस्तक पर ऊपरी अवयव या टोड़ा या प्रक्षिप्त दीवारगीर हैं। सर्वोच्च और सर्वाधिक प्रक्षिप्त एक विशिष्ट पुष्प पोतिका है जैसी कि परवर्ती पांड्य प्रकारों से निसृत हुई और विजयनगर काल में विकसित हुई। ऐसे प्रत्येक नारी आकृति वाले स्तभ बाहरी पृष्ठ पर 'पिल्लईक्कल' या पतली स्तंभिका तराशी हुई है जो मुख्य भाग से केवल आधार और शीर्ष पर जुड़ी हुई है और इसमें विशिष्ट स्तंभ के सारे लक्षण उपस्थित हैं, जबकि शीर्ष पर स्थित पोतिका पुष्प पोतिका है। बारह स्तंभ एक विशिष्ट नवरंग की बाहरी श्रृंखला गठित करते हैं, जिसके साथ हमेशा की तरह उपस्थित चार स्तंभ नहीं हैं। फिर भी नवरंग डिजाइन शीर्ष पर नौ दिल्लेदार छत खंडों युक्त उठी हुई भीतरी छत से प्रकट होती है। इनमें से आठ खंड बीच के बड़े खंड के आसपास हैं। प्रत्येक व्याल के खुले अंतरों के भीतर पाषाण खंड को बड़ी निपुणता से एक गोल गेंद के रूप में काटा गया है जो अंदर तो घूम सकता है लेकिन बाहर निकाला नहीं जा सकता। यह कारीगरों द्वारा किया गया ऐसा कमाल है, जो विजयनगर व्याल स्तंभों में सामान्य है। बारह स्तंभों में से प्रत्येक आयताकार क्रम में बारह राशियों से चिह्नित हैं और इसलिए वे राशिस्तंभ कहलाते हैं। इन स्तंभों को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि सौर मास के क्रम में उत्तरोत्तर प्रत्येक स्तंभ पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं। मंडप के फर्श पर बारह स्तंभों से घिरा हुआ एक बड़ा वृत्त तराशा हुआ है जिसके साथ एक दूसरे की ओर अभिसरित होती और किन्हीं निश्चित बिंदुओं पर मिलती रेखाएं हैं, जो उत्तर, पूर्व और दक्षिण में स्थित तीन द्वारों में से एक द्वार से होकर स्तंभों पर पड़ती सूर्य की किरणों से पड़ने वाली छाया की दिशा का संकेत देती हैं। यह खगोल विज्ञान और वास्तुशिल्प का एक विरल सम्मिश्रण है। रंगमंडप स्तंभों के घेरे के बाहर, उनके और बाहरी दीवार के बीच एक छत है जो दो उठे हुए चरणों में बनी है और प्रत्येक चरण में बाहर की ओर ढलवां है, जबकि केंद्रीय रंगमंडप के ऊपर की छत ऊपर की ओर एक रोशनदान की तरह बनी हुई है। इस अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्र में छत इस प्रकार डिजाइन की गई है कि बाहर की ओर ढलवां लंबे नालीयुक्त पाषाण

ऊपर लगाकर साथ में जोड़ दिए गए हैं, हर दो नालियों के संलग्न समानांतर किनारों को एक उल्टे प्रणाली पाषाण से ढक दिया गया है जो बरसाती जैसा है। यह प्रतिमान इस क्षेत्र के और घाट के दूसरी ओर पश्चिम मध्य पट्टी के अनेक अन्य मंदिरों में अनुसरित पाया जाता है। रंगमंडप की भीतरी छत पर बड़े मध्य खंड में, भीतर, इस प्रकार और अधिक गहराई आ जाती है—जैसे यह एक 'नाभिच्छंद वितान' हो, जिस पर एक स्पष्ट उल्टा खिला हुआ कमल है जिसमें अनेक पंक्तिवद्ध पंखुरियां और एक बड़ा लटकता हुआ केंद्रीय पुष्पासन है। जिसमें उल्टे लटके हुए चार तोते चंचुप्रहार करते केंद्रीय पुष्पासन से संलग्न पंखुरियों पर अड्डा जमाए हुए हैं यह नया किंतु महत्वपूर्ण प्रतिमान है जो केंद्रीय वितान में, आधिपत्य किए हुए है, जबकि इस चालुक्य क्षेत्र में मंदिरों की पूर्ववर्ती शृंखला में सामान्यतः इस केंद्रीय वितान पर मंदिर के रक्षक आठ दिक्पालों से घिरे हुए प्रतिष्ठापित मुख्य देवता की प्रतिमा से युक्त उत्कीर्णित पटल होता था। राशिस्तंभ व्यवस्था के सहयोजन में, राशियां वे भाव हैं, जिन्हें माना जाता है कि बारह महीनों के क्रम में उन्हें सूर्य देखता है, केंद्रीय कमल सूर्य के प्रतीक के रूप में समझा जाता है।

शृंगेरी के विद्याशंकर मंदिर में, रंगमंडप के वितान में खिले हुए कमल के पुष्पासन के आसपास उल्टे लटके बैठे हुए शुक संयोगवश इस प्रकार का पहला उदाहरण हैं। उनकी मुद्रा भी प्राकृतिक है, जो प्राकृतिक वस्तुओं के मूर्तिकार के ज्ञान का प्रमाण है। पक्षी विज्ञानी जानते हैं कि भारतीय तोतों की एक प्रजाति जो सामान्यतया लोरीकीट (सिटक्यूला) कहलाती है, चमगादड़ के समान उल्टे लटककर बसेरा लेने की अपनी आदत के कारण भारतीय पक्षियों में विशिष्ट है। किसी तपस्वी योगी के लिए यह साधना या तपस्या का एक रूप हो सकता है।

विमान या गर्भगृह भाग की अधिरचना अंतर्भित्ति ऊर्ध्व विस्तार है। यह एक बेलनाकार ऊंची मीनार है जिसमें क्रमशः घटते हुए व्यास के तीन ऊपरी तल हैं। गर्भगृह के ऊपर उठकर यह ग्रीवा तक पहुंचते हैं जिस पर शीर्षस्थ स्तूपी सरित शिखर है, जबकि अंतराल के ऊपर की छत पर विमान की अधिरचना के सामने से एक बड़ी शुकनासा प्रक्षिप्त है। इस प्रकार यह संधार आदितल युक्त एक चतुश्तल विमान है। आदितल की बाहरी और भीतरी दीवार के बीच संधार मार्ग का शीर्ष नाली और बरसाती पाषाण की पद्धति से बनाया गया है। इसी प्रकार मंडप का सामने का अग्रभाग भी बना है। द्वितीय तल के आधार से प्रसारित लंबे पाषाण खंड उचित ढलान सहित हैं, जो एक ढलवां अलिंद बनाते है। लघु मंदिर आकृतियों से बनी, सामान्य हार योजना, जो दक्षिणी विमानों की विशिष्टता है, इस भाग में, दूसरे और तीसरे तल पर और बाहरी मंडप के ऊपर संपूर्ण रूप से विलुप्त कर दी गई है। अधिरचना का प्रतिमान भी स्थानी होयसल शैली का अनुसरण नहीं करता। छत या आदितलाच्छाद्य द्वितीय तल के आधार की संक्षिप्त अधिष्ठान

गढ़तद्वारा बाह्य रूप से चिह्नित है, जिसका हर्म्य ऊंचा उठा दिया गया है, जो ऊर्ध्वगामी भद्र प्रक्षेपों से युक्त है। मोड़ों के कोने उसी पद्धति के भित्तिस्तंभों से युक्त हैं जैसे दक्षिणी विमान के तल हर्म्य के मामलों में हैं। तीन मूलभूत दिशाओं—दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की मुख्य भद्राओं में तीन ताक दिए गए हैं, जबकि पूर्व में प्रमुख शुकनासा है। इस द्वितीय तल हर्म्य का प्रस्तर या उपरिच्छाद्य वक्र कोर्निसों या कपोतों के सात स्तरों से रचा गया है। थोड़े कम उत्थान वाले तृतीय तल पर भी यही प्रतिमान अपनाया गया है जो पांच कपोतों के उपरिच्छाद्य में समाप्त होता है और जो एक के ऊपर एक अध्यारोपित हैं। और भी कम ऊंचाई के चौथे तल पर फिर से वही प्रतिमान दुहराया गया है जिस पर तीन कपोतों का उपरिच्छाद्य है। यह योजना उपरिच्छाद्य की पद्धति का रूपांतर है, जो उत्तरोत्तर तलाच्छाद्य के ऊपर आते है और किन्हीं भी दो तलों के बीच एक स्पष्ट किंतु छोटी अंतराल ग्रीवा मध्य में होती है, जैसी कि पूर्वी गंगों और कलंग परंपरा में मिलती है, किंतु उसमें यह संशोधन किया गया है कि कोर्निसो के क्रमिक समूह ऊंचे अंतरालों द्वारा अलग किए गए हैं जो यहां तल हर्म्यो का निर्माण करते हैं। तीसरे तल के शीर्ष पर गृहपिंडी या ग्रीवा का आधार है, जिस पर चार कोनों या विदिकों पर चार नदी है। वृत्ताकार ग्रीवा का प्रतिमान नीचे के तलों के मोड़ के कारण तीली युक्त है और गुंबदी गोलाकार शिखर भी, तीलियों के वैसे ही प्रतिमान का प्रदर्शन करता है। ग्रीवा शिखर समुच्चय में पूर्व दिशा सहित चार मूलभूत दिशाओं में प्रक्षिप्त चार महानासिकाएं हैं जबकि विमान का तीसरा तल सामने की शुकनासा के शीर्ष से भी ऊपर तक स्पष्ट रूप से उठा हुआ है। सामने की ओर महानासिकाएं एक अलंकृत मुखपत्ती से चौखट के समान आवृत्त है, जिसके शिखर पर एक कलश या स्तूपी, बड़ी और मुख्य स्तूपी के आधार तक ऊंची है। मुख्य स्तूपी शिखर के मस्तक के ऊपर स्थित है। पांचों स्तूपियां धातु की हैं और वे पंचकलश योजना का गठन करती हैं, जो प्राचीन बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दिव्य विमान की विशिष्टता है। सामने शुकनासा अंतराल के ऊपर दो चरणों में उठती है जिसमें से निचला चरण एक आयताकार हर्म्य बनाता है, जिसमें एक प्रकोष्ठ है जो खोखले अधिरचना तलो के भीतर ले जाता है। यह मंदिर के ऊपर दूसरे तल या हर्म्य तक ऊपर उठता है। प्रकोष्ठ के ऊपर शाला प्रकार की छत या छाद्य अगले विमान तक की ऊंचाई तक उठती है जो पुनः अध्यारोपित कोर्निसों वाली पद्धति है। अपनी पूर्व पश्चिम लंबी भुजा युक्त शुकनासा में एक तोरण मुखापत्ती है, जो उसके अग्रभाग को आवृत्त करती है जिसमें एक चौखट युक्त द्वार है जो निम्न आयताकार पृष्ठ में स्थित प्रकोष्ठ में ले जाता है। शुकनासा के छत वाले या ऊपरी भाग के सामने मेहराब के भीतर नृत्यरत शिव का शिल्पांकन है जो चालुक्यों और उत्तरी क्षेत्रों के मंदिरों में एक सामान्य लक्षण है। खोखले अंतर्भागयुक्त विमान की अधिचना पर बाहर

की ओर तराशे गए पाषाण का आवरण है जो भीतर की ओर निर्मित पाषाण मचान (स्कैफ फोल्डिंग) है, जो पत्थर के टेकों और शहतीरों के अनगढ़ रूप से काटे गए खड़े और आड़े टुकड़ों से बना है। यह ऐसी विशेषता है जो दक्षिण में कहीं ओर देखी नहीं गई।

इस प्रकार, यह विशिष्ट मंदिर, जो एक साहसिक प्रयोग है, जिसमें दूर और पास से ली गई वास्तुशिल्पीय विशिष्टताएं सम्मिश्रित की गईं और उनमें चतुराई के साथ "ंगति बैठाई गई है और जो एक विशिष्ट समस्तरीय (पड़ा) और ऊर्ध्वाधर (खड़ा) अभिकल्पन से युक्त है, महान कौशल युक्त एक रोचक आरंभिक विजयनगर निर्माण है। लक्ष्य यही था कि इसे, इस आध्यात्मिक आचार्य गुरु के महत्व की दृष्टि से, जिसका राजवंश और धार्मिक पीठों के धर्माचार्य दोनों एक-सा आदर करते थे, इसके मूर्तिशिल्प सहित विभिन्न क्षेत्रीय वास्तुशिल्पी शैलियों का एक प्रकार का वैश्विक सम्मिश्रण बनाया जाए।

दक्षिणी समूह की प्रवृत्तियो का काफी अनुसरण करते हम्पी के मंदिरो में विट्ठल मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है, जो वहां सबसे बडा है। यह वास्तव में एक बड़ा परिसर है जो एक समय में योजित और निर्मित किया गया जिसमें विमान, अक्षीय मंडप, गरुड मंडप, अन्य मंडप, कल्याण मंडप, समूह प्राकार और गोपुर सम्मिलित हैं। इसका निर्माण कृष्णदेव राय द्वारा 1513 में आरंभ किया गया और यह शायद तब भी अपूर्ण ही था, जबकि 1565 मे साम्राज्य का पतन हुआ, जिसके बाद राजधानी पेनुकोंडा ले जाई गई।

समस्त विजयनगर मंदिरों के समान मंडप और गोपुर अपने विशाल आकार के लिए असाधारण हैं। अनेक मंडप सहस्र स्तंभ श्रेणी के हैं। स्तंभों और भित्तिस्तंभों में भव्य धुरे है। शीर्ष फलक का निचला भाग या पालि, जो पल्लवों और आरंभिक चोलों के मंदिरों में अनलकृत था और परवर्ती चोलो के समय में पंखुरियों में परिवर्तित होकर तवे जैसे आकार का हो गया था, अब पुष्प पोतिका के रूप में विकसित हो गया, जो विजयनगर शैली की विशिष्टता है और जिसकी दुहरी मुड़ी हुई भुजा बढ़कर मुख्य खंड से प्रक्षिप्त होती है और छोर पर ऊपर की ओर मुड़ी हुई पखुरियों के समान मुड़कर तवे के आकार मे आ जाती है जिसके केंद्र में एक प्रारंभिक शंकु आकार की कली है। नीचे की ओर मुड़ी भुजा मे उसके नीचे एक क्षैतिज सयोजक शलाका है, जो मुक्त छोर के मुख्य खंड से जोड़ती है। विमानों, गोपुरो और मंडपों की दीवारों के अंतरालों में कुभ पंजर मॉटिफ अधिक अलंकृत और विशद बनाए गए हैं। कोर्निस, जो अभी तक मोटे और नीचे झुके हुए थे, बड़े, अधिक पतले और दुहरे मोड़ युक्त हो गए और काफी आगे तक बढ़ गए और प्रायः उसे अवलंब देने वाले ढांचे की काठ की तीलियों की पाषाण अनुकृति से प्रतीत होते हैं। मंडपों में, जैसा कि कांचीपुरम स्थित वरदराज मंदिर के कल्याण

मंडप में, जो अपने प्रकार का उत्कृष्ट उदाहरण है, कपोलों के कोने पर बड़ी पाषाण शृंखलाएं नीचे लटकती हैं, सारे संयोजक, जिसमें कोर्निस का वह पाषाण खंड भी है जिससे वह लटकती है, एक ही पाषाण मे से काटे गए हैं। ये मंडप, कल्याण या उत्सव मंडप कठोर पाषाण में अपनी उत्कृष्ट और सूक्ष्मता से किए गए काम वाली स्तंभावली के लिए प्रसिद्ध हैं। छोटे स्तंभों की एक शृंखला सहित कुछ स्तंभ मुख्य केंद्रीय धुरे के चारों ओर तराशे गए हैं, या उन पर बड़े पशु शिल्पांकन या मूर्तियां एकाश्मक पद्धति से तराशे हुए हैं। ये अनियोत्तिक्कल कहलाते हैं और विजयनगर शैली की विशेषता हैं। पाषाण निर्मित विमानों या गोपुरों की अधिरचनाएं ईंट और गारे से बनी हैं और वे यदि कदलिका करण शैली से नही बनाई गई हैं तो उनके भीतर लकड़ी भी लगी है। ऐसे विशाल गोपुर पूर्व विद्यमान महत्वपूर्ण मंदिर परिसरों के सबसे बाहर के प्राकार में जोड़े गए। इन्हें रायगोपुर कहा जाता है और कहीं कहीं ये ग्यारह मंजिल ऊंचे हैं, जैसे कि कांची स्थित एकाम्रनाथ, तिरुवन्नमलै (उत्तरी अर्काट जिला) स्थित अरुणाचल और कालहस्ती (चित्तूर जिला) स्थित बड़े शिव मंदिर में। इन सबका निर्माण महान सम्राट कृष्णदेव राय (1502-1529) द्वारा करवाया गया।

विट्ठल मंदिर परिसर एक ऊंची दीवार से घिरे प्रशस्त अहाते में स्थित है, जिसमे पूर्व, दक्षिण और उत्तर में तीन गोपुर प्रवेश हैं। वहां अक्षीय और सहायक मंडप भी है और आनुषंगिक मंदिर भी। अक्षीय शृंखला में अग्रमंडपों सहित विमान हैं, जो एक अलंकृत मंच पर स्थित हैं जिस पर मनुष्यों, अश्वों, हंसों और लघु मंदिर नमूनो की चित्रवल्लरी है। अग्रमंडप को ले जाने वाले सोपान के अगल-बगल बड़े पाषाण गज है। स्वयं अग्रमंडप में विशाल एकाश्मक स्तंभ, उत्कीर्णित स्तंभिकाओं सहित हैं या फिर बड़े व्याल हैं, जिनकी पीठों पर आरोही सवार हैं। सभागार सामने और पार्श्वो पर स्वास्तिक आकार में विस्तृत किया गया है। शहतीरों पर रामायण से उत्कीर्णन हैं। विमान की अधिरचना ईंटों की है। आदितल का हार अग्रमंडपों के ऊपर तक आगे बढ़ा हुआ है। अग्रमंडप के सामने की ओर गरुड़ मंडप है, जो पत्थर के पहियों पर मंदिर रथ के आकर मे है। सामने के प्रांगण के उत्तरी पार्श्व पर अम्मान मंदिर है, जबकि दक्षिण में सुंदर किंतु छोटा कल्याण मंडप है। प्रागण में अन्य सेवक देवताओं के लिए भी मंदिर हैं। कृष्णदेव राय द्वारा 1513 मे निर्मित कृष्ण मंदिर एक अन्य सुंदर मंदिर परिसर है जो सेवक मंदिरों, मंडपों और स्तंभ मालिकाओं और गोपुरों से युक्त है।

हम्पी स्थित पट्टाभिराम मंदिर भी इसी प्रकार एक अन्य बड़ा मंदिर परिसर है। अच्युत राय (1530-1542) द्वारा निर्मित यह मंदिर अपने बड़े आकार और विशाल अनुपातों के लिए ख्यात है। अच्युत राम मंदिर, जो 1539 में बना, दुहरे प्राकार के भीतर एक और बड़ी संरचना है, जिसमें गोपुर हैं, अम्मान मंदिर, मंडप

और विहार हैं। यह प्रसिद्ध विट्ठल मंदिर जैसे डिजाइन पर ही बना है, तथापि उस उत्कृष्ट रचना के साथ इसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी, इसके स्तंभ सुंदर हैं और उन पर कुछ उत्कृष्ट मूर्तिशिल्प हैं।

हम्पी के मार्ग पर होस्पेट के निकट अनंतशयनगुडी स्थित अनंतशयन मंदिर एक बड़े दीर्घायत विमान का उदाहरण है, जिसमें ईटों से निर्मित अधिरचना पर एक विशाल शाला शिखर है। यह एक बड़े स्तंभयुक्त मंडप द्वारा अक्षीय रूप विस्तृत है और अन्य परिधीय मंडपों और एक अम्मान मंदिर से घिरा हुआ है। समस्त परिसर एक बडे गोपुर युक्त प्राकार से घिरा है। यह सबसे बड़ा शाला श्रेणी का ज्ञात विमान है। मंदिर अनंतशायी विष्णु को समर्पित था किंतु अब देवता की मूर्ति गायब है। मंदिर के अग्रभाग में तीन दरवाजे हैं शयन मुद्रा में देवता के मस्तक, शरीर और चरणों के अंतराल से दर्शन करने के लिए हैं।

चालुक्य मूल की एक प्रवृत्ति, मंडपों के ऊपर हार के विस्तार के अतिरिक्त अन्य चालुक्य विशिष्टताएं भी हम्पी, दक्कन, आंध्र और उत्तरी मैसूर क्षेत्र के अन्य मंदिरों में बनाए रखी गई हैं। उनमें से विमान अधिरचना के अग्रभाग में शुकनासिका की उपस्थिति, द्वार पार्श्वों पर नंदी देवी मूर्तियों की प्राप्ति और सादी, ग्रेनाइट की बनी द्वार की चौखटों के ऊपर, नर्म पत्थर में सूक्ष्मता से तराशी गई अलंकृत बड़ी द्वार चौखटें हैं, जैसी कि ताड़पत्री (अनंतपुर जिला) स्थित मंदिरों में हैं। फिर धुर दक्षिण के रैखिक बहुस्तंभी श्रेणी के मंडपों के विपरीत नवरंग प्रतिमान के मंडप और मुक्त रूप से खड़े हुए तोरण हैं, जैसे कि चितलदुर्ग (मैसूर राज्य) स्थित पहाड़ी के ऊपर मंदिरों में हैं।

हजारा राम मंदिर शायद पहले आरंभ हुआ और कृष्णदेव राय द्वारा पूरा किया गया। यह मंदिर विशिष्ट गोपुर से रहित है, किंतु प्राकार की दीवारें चित्रवल्लरियों से सज्जित हैं। बाहरी ओर ये चित्रवल्लरियां, नृत्य, संगीत और लोकोत्सवों का चित्रण करती हैं। मुख्य विमान के सामने महामंडप चालुक्य नवरग प्रतिमान का है, और इसके चार केंद्रीय स्तंभ, शेप संपूर्ण निर्माण के स्लेटी ग्रेनाइट पत्थरों के विपरीत, काले चमकती पालिश किए हुए हैं, यद्यपि वे वर्गाकार खंड के है और मूर्तियों और उत्कीर्णनों के फलकों से अलंकृत हैं। विमान की ईट की अधिरचना में एक प्रमुख शुकनासिका है। इसके उत्तर में एक अम्मान मंदिर विमान है जो उसी श्रेणी का ही है। अग्रमंडप, विमान और प्राकार की भी दीवारों के भीतरी पृष्ठों पर, इसके उत्तर-पूर्व कोने के आसपास फलक शिल्पांकन हैं जो वर्णनात्मक हैं और रामायण तथा कृष्णलीला के प्रसंगों का चित्रण करते हैं।

हम्पी मे, पूजा में सबसे प्रमुख मंदिर पंपापति या विरुपाक्ष मंदिर एक बड़ा परिसर है, जो एक परवर्ती चालुक्य मंदिर केंद्र के आसपास फैला हुआ है। विजयनगर काल का इसका अग्रमंडप अपने शिल्पांकित खंभों और समकालीन

वितान चित्रों के लिए ख्यात है। सर्वाधिक रुचिकर चित्र एक पैनल है जिसमें, शंकराचार्य के एक उत्तराधिकारी और शृंगेरी मठ के धर्माचार्य संत विद्यारण्य को राज सम्मान और साज सामान सहित पालकी में बैठाकर जुलूस में विरुपाक्ष मंदिर ले जाते हुए दिखाया गया है। ईंटों से वना, खोखला, ऊचा पूर्व गोपुर विशाल विजय नगर गोपुरों में से एक है और आगे दक्षिण में विजयनगर विमानों में शुकनासिका नही है। वे पल्लव चोल परंपरा के अधिक अनुरूप हैं और पूर्ववर्ती युगों के मदिरो का सिलसिला कायम रखनेवाली कड़िया हैं।

विजयनगर के बाद के मंदिर

सन् 1564 में तालिकोट्टा के विनाशकारी युद्ध के फलस्वरूप केंद्रीय सत्ता के पतन और विजयनगर शहर के विध्वंस के बाद, साम्राज्य की राजधानी क्रमानुसार पेनुकोंडा, चंद्रगिरि और अंततः वेल्लोर ले जाई गई। केंद्रीय सत्ता वहुत निर्वल हो गई थी। दक्षिणी क्षेत्रों में विजयनगर साम्राज्य प्रतिनिधि शासक, नायकों ने धीरे धीरे स्वतंत्र सत्ता धारण कर ली। उनमें से कुछ ने मंदिर वास्तुशिल्प को प्रश्रय दिया और कुछ उल्लेखनीय मंदिर बनवाए। ये नायक वेल्लोर (उत्तरी अरकॉट जिला), जिंजी (दक्षिणी अरकॉट जिला), तंजावुर और मदुरै तमिलनाडु में, और उत्तर-पश्चिमी मैसूर में इक्केरी के थे। नायक काल में तमिलनाडु में शतस्तंभ श्रेणी के विशद मंडप, और बड़े गोपुर जिन पर अनेक रूपंकर गचकारी की आकृतिया वनी हैं, देखे गए। इसके उदाहरण हैं वेल्लोर और मदुरै और उनकी सर्वाधिक ऊंची गोपुर अधिरचना श्री विल्लिपुत्तूर (जिला रामनाथपुरम) मे वात्पत्रशायी मंदिर के सामने है। आच्छादित बंद मार्ग का निर्माण नायकों और उनके बाद के समय में रामेश्वरम के विख्यात गलियारों के सदृश्य किया गया। इनके दोनों बगलों में अविच्छिन्न मंच वने हुए है। वे निचले प्रदक्षिणा पथ के दोनों ओर किनारों पर विशाल स्तंभों से युक्त हैं। उनके शीर्ष पर ऊपर के खाली स्थान को भरते हुए और लगभग एक दूसरे से मिलते हुए विस्तृत रूप से प्रक्षिप्त दीवारगीर हैं, वेल्लोर स्थित जलकंठेश्वर के कल्याण मंडप, और श्रीरंगम स्थित प्रसिद्ध रंगनाथ मंदिर के पूर्वी प्राकार में स्थित ऐसा ही मंडप कांची स्थित वरदराज मंदिर में पूर्ववर्ती विजयनगर संरचना के समान उस काल की दो श्रेष्ठ कृतियां हैं। वे बहुस्तभ प्रकार के है जिसके अग्रभाग में असाधारण रूप से शिल्पांकित खंभों की एक प्रदर्शनकारी पंक्ति है जिसमे लगभग पूरे आकार के आरोही योद्धाओं और परिजनो और शिकार के अन्य पशुओं की आकृतियों सहित अश्वो की मूर्तियां हैं।

विशाल मंडपों और चारों दिशाओं मे उत्तुंग गोपुरों सहित, मदुरै स्थित विशाल मंदिर परिसर के केंद्रीय मंदिर की चारों दिशाओं में अधिकतर घटक नायक मूल

के हैं और उनमे से अधिकांश का निर्माण तिरुमलै नायक (1623-1659) के काल में हुआ है। विशाल स्तंभों पर पत्नी, परिजनों सहित राजपुरुषों या दानदाता सरदारों की आदमकद प्रतिकृतियां है। ये मूर्तियां इस प्रकार काटी गई हैं कि वे मुख्य धुरे के साथ शीर्ष को भी साझा अवलंब प्रदान करती हैं। स्तंभों पर अन्य मूर्तिया देवताओं, ललित मुद्राओं में स्त्रियों और 'कुरव और कुरत्ती'—शिकारी और शिकारिन—की भी है। मदुरै स्थित मीनाक्षी सुंदरेश्वर मंदिर में पुदु मंडप और कृष्णपुरम स्थित मंदिर में अग्रमंडप अन्य सैकड़ों में उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

वृहदीश्वर मंदिर परिसर के उत्तर-पश्चिमी प्रांगण मे स्थित अर्ध और मुखमंडप सहित विमान युक्त सुब्रह्मण्य मंदिर इकाई अलंकृत प्रकार के नायक मंदिर का एक विशिष्ट उदाहरण है और अपने प्रकार का एक वास्तविक रत्न है। उत्तम तंतु रचना युक्त ग्रेनाइट से निर्मित इसके अधिष्ठान और इसकी दीवारों के भितिस्तंभ कुछ उत्कृष्ट और जटिल उत्कीर्णों का प्रदर्शन करते हैं। भित्तिस्तंभों के बीच दीवार के अंतरालों में विशिष्ट कुंभ पंजर अत्यधिक अलंकृत बनाए गए हैं। इसी प्रकार स्तंभों और बहुभुज भितिस्तंभों के ऊपर शीर्ष की पुष्प पोतिका भी है, जो वक्र भुजा के छोर पर एक पूर्ण कमल कलिका का रूप लेती लटकती कली से युक्त है। दुहरा मुड़ा हुआ कपोत पतला और भव्य है जिसके भीतर के पृष्ठ पर तीलियों युक्त टेका देने वाला ढांचा दिखाई देता है। वर्गाकार विमान के ग्रीवा शिखर षड्भुज हैं, जो मदिर में प्रतिष्ठित सुब्रह्मण्य के षड्मुख रूप के अनुरूप हैं। इस बहुमंजिले विमान के तल हारों के कर्णकूट भी षड्भुज हैं। इस प्रकार यह और अन्य मंदिर दक्षिण भारत के आधुनिक स्थपति या मदिर निर्माता की जीवित कला के लिए सरलता से प्रतिमान प्रस्तुत करते है।

अन्य विशेषता, जो मदुरै के नायकों द्वारा आरंभ की गई और उनके बाद भी जारी रही, वह है पालिश किए ग्रेनाइट का उपयोग। सादे तराशे हुए या आकार दिए गए पत्थरो के बाहरी पृष्ठ काली चमकती पालिश की गई और छोटे विमानों और उनके अर्धमंडपों के निर्माण में उनका उपयोग किया गया। ऐसा काम तिरुचिरापल्ली स्थित शैल दुर्ग मंदिर मदुरै और अन्य स्थानों पर देखा जा सकता है।

कल्याण मंडप और गोपुर सहित वेल्लोर के किले के भीतर संपूर्ण मंदिर परिसर और वेल्लोर के निकट विरिंचीपुरम मंदिर का अधिकांश भी, वेल्लोर के बोम्मी नायकों का काम है। फिर भी जिंजी के विस्तृत किले के भीतर और उसके आसपास मंदिरों या उनके भग्नावशेषो का जो भी कुछ हम देखते है, वह जिंजी नायकों का निर्माण है। इसी प्रकार चंद्रगिरि दुर्ग के भीतर अनेक छोटे नायक मंदिर हैं।

जिसे विजयनगर वास्तुशिल्प और मूर्तिकला का युक्तिसंगत रूप से सार तत्व

माना जा सकता है, जैसा कि विजयनगर साम्राज्य के दक्षिणी अर्धांश में विकसित हुआ, उसका विशिष्ट उदाहरण श्रीरंगम में स्थित बड़े रंगनाथ मंदिर में यथेष्ट आकार की मंदिर इकाई है। इसे तंजावुर बृहदीश्वर मदिर परिसर के भीतर नायककाल की उत्कृष्ट रूप से डिजाइन की हुई और आलंकारिक रूप से तराशी हुई सुब्रह्मण्य मंदिर इकाई का अग्रगामी या उसके लिए प्रतिमान माना जा सकता है। अन्यत्र प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर, पुरालेखशास्त्री की रिपोर्ट (ए. आर. ई., 1937) की रिपोर्ट के अनुसार कुछ विद्वानों द्वारा यह विश्वास किया जाता है कि वैष्णव आचार्य कुरुहुरुपुरा ने, जो होयसल रानी उमादेवी द्वारा प्रतिष्ठापित हलेबिड स्थित तिरुक्कलाल उदिना पिल्लै (वेणुगोपाल कृष्ण) मंदिर के प्रभारी थे, श्रीरंगम में अपने प्रवास काल में उस मदिर परिसर में वेणुगोपाल के लिए एक मंदिर की स्थापना में भी थे।

बहुत बढ़िया बना हुआ वेणुगोपाल का एक मंदिर परिसर में वर्तमान है जिसकी दीवारें उत्कृष्ट मूर्तियां और वास्तुशिल्पीय विशेपताओं से युक्त हैं। इसके अग्रमंडप के वितान पर लेपाक्षी शैली में चित्रांकन किया गया है। यह उत्सव मंडपम, स्थानीय नाम, रंगमंडपम के पश्चिम में पांचवें दक्षिण प्राकार के भीतर स्थित है। यह पूर्वाभिमुखी है और अपने आप में एक मदिर इकाई है। इसमें एक द्वितल विमान है जिसका आदितल उत्कृष्ट तंतु रचना वाले श्वेत ग्रेनाइट से वना है जिसके ऊपर ईंटों से निर्मित अधिरचना और विमान के पूर्व क्रमशः, अर्ध, महा और अग्रमंडप हैं। उपपीठ और अधिष्ठान उत्कृष्ट रूप से तराशे गए खंडों से वने है जिन पर लघु मंदिर मॉटिफ बने हैं जैसे दारासुरम मंडपम में हैं। विमान और मंडपों की दीवारों पर केंद्रीय भद्रा उभार हैं जिन पर शाला शिखर धारण किए हुए देवकोष्ठ हैं। ताकों में देवी प्रतीत होने वाली ललनाओं की विभिन्न मुद्राओ में विस्तृत प्रभावी शोभा और लावण्यपूर्ण नर्म तराश है। दीवार के अंतराल वाले स्थानों में पूर्ण विकसित कुंभ पंजर मॉटिफ विमान वाले भाग में बने हैं, जबकि मंडपों पर वैसी ही अवस्थाओं में उत्कृष्ट रूप से उत्कीर्णित तथाकथित 'सजावटी भित्तिस्तंभ' या वृत्त स्फटिक–पंजर शृंगधारी भित्तिस्तंभ हैं किंतु वे आधार कुंभ या पूर्ण घटविहीन हैं। पुष्प पोतिकाएं विशिष्ट विजयनगर शैली की हैं। ये और उन्नत वास्तुशिल्पी लक्षण और अग्रमंडप के वितान पर चित्रांकन की शैली केवल एक परवर्ती विजयनगर काल का (उत्तराधिकारी नायकों के समय के निकट काल) संकेत देती है। यह शायद, जैसा कि पुरालेखशास्त्रियों के मत की पृष्ठभूमि में कुछ विद्वानों का कथन है, कोई स्थायी होयसल उदाहरण नहीं बल्कि होयसल अंतराल के पूर्ववर्ती संस्थान का विजयनगर काल में किया गया पुनरुद्धार हो सकता है। होयसल काल के कुछ ग्रेनाइट पाषाण निर्मित मंदिर हैं, जो उस समय बनाए गए थे, जब इस राजवंश की किसी सगोत्री शाखा का तमिलनाडु के कुछ भागों पर शासन था

जिसकी राजधानी श्रीरंगम और जम्बुकेश्वरम के निकट कण्णानूर में थी। वे सब के सब स्थानीय क्षेत्रीय शैली में निर्मित हैं, जो तमिलनाडु के पांड्य परवर्ती मदिरों की तर्कसंगत परंपरा में हैं और जिसके फलस्वरूप बाद में बनने वाले तमिलनाडु के विजयनगर मंदिरों की विशेषताएं आरंभ हुई।

होयसल काल के ऐसे मंदिर श्रीरंगम (पोसलेश्वर, स्थानीय नाम भोजेश्वर) से लगभग 6 किलोमीटर दूर कण्णानूर में, और जम्बुकेश्वरम में (श्रीरंगम द्वीप के पूर्वी भाग में) प्राप्त हैं। होयसल सेनापतियों और प्रशासकों द्वारा कुछ और भी मंदिर बनवाए गए जो तिरुचिरापल्ली और पुदुक्कोटै जिलों में हैं, जैसे सेम्बातुर (पुदुक्कोटै) स्थित मदिर इकाई। होयसल अंतराल के दौरान बने ये मंदिर अपने वास्तुशिल्प और मूर्तिकला में केवल स्थानीय क्षेत्रीय विधियों को ही उद्घाटित करते है, न कि उन होयसल प्रतिमानों को जो उनके गृह प्रदेश (कर्नाटक) में नर्म सिलखड़ी पत्थर से बनाए गए थे। श्रीरंगम वेणुगोपाल मदिर उल्लेखनीय रूप से स्थानीय क्षेत्रीय शैली की बहुत उन्नत वास्तुशिल्पी और मूर्तिकलागत विशेषताएं प्रदर्शित करता है। ऊंची, इकहरी, लावण्यवती स्त्रियों की मूर्तियां, जिनमें से अनेक शायद शाल भजिकाओं के अतिरिक्त गोपिया भी हैं, विभिन्न अंग विन्यास और मुद्राओं में तराशी गई हैं, बेलूर, हलेविड और होयसल कला के विभिन्न केंद्रों में ठिंगनी और स्थूल मदनिकाओं और ऐसी नारी मूतिर्यो के ठीक विपरीत हैं। वेणुगोपाल मंदिर की मूर्तियों की तुलना, यदि आवश्यक ही हो, तो काकतीयों, और निकट में कृष्णापुरम और तेनकाशी (जिला तिरुनेलवेली) और पुदुमंडपम और मदुरै मीनाक्षी सुंदरेश्वर मदिर के अन्य भागों में कठोर पाषाण की मदनिका मूर्तियों से की जा सकती है।

इक्केरी नायकों ने चालुक्य संबद्धता के मंदिर अपने राजधानी नगरों, इक्केरी, केलाडि और उनके क्षेत्र के अन्य स्थानों पर छोडे हैं। इक्केरी (जिला शिमोगा) स्थित अघोरेश्वर मदिर इक्केरी शैली के मंदिरो में सबसे बडा और उत्कृष्टतम है। ग्रेनाइट से निर्मित यह मंदिर भली भाति रचित उपपीठ मंच पर स्थित है। इसका पांच मंजिला विमान दुहरी दीवार युक्त संधार संरचना है, और तल अधिरचना में विशिष्ट शुकनासिका प्रक्षेप है। ग्रीवा और शिखर अष्ट भुजाकार हैं। वर्गाकार बंद अग्रमंडप में तीन प्रक्षिप्त प्रवेश हैं–एक सामने और दो पीछे, जो अलंकृत दरवाजों से युक्त हैं। ऐसा ही भीतर अंतराल और मंदिर द्वारों के साथ है। अलंकृत जगलों वाले सोपानो से उन तक पहुंच जाता है। एक क्षैतिज पट्टी बाहरी दीवार के पृष्ठ को ऊपरी और निचले अर्धभागों में बांटती है। ऊपरी अर्धभाग में जालीदार खिड़कियों को घेरती नोकदार मेहराबें दिखती हैं जो पुष्प चाप स्कंधयुक्त अलंकरणों पाटल सम चतुर्भुजों से युक्त हैं। यह भारतीय इस्लामी मॉटिफ के तत्वों का सन्निवेष है। निचले अर्धभाग में भित्तिस्तंभ जोड़ियों के भीतर मंदिर के अग्रभागों की एक शृंखला दिखती है। भीतर, मंडप अलंकृत स्तंभों से युक्त नवरंग प्रतिमान का है, जिनमें से

कुछ पर विजयनगर और विजयनगरोत्तर स्तभों की विशिष्ट पशु प्रतिमाएं हैं।

राजवंश की पूर्ववर्ती पीठ, केलाडि में रामेश्वर और वीरभद्र के जुड़वां मंदिर स्लेटी हरित ग्रेनाइट से बने हैं। दोनों पृथक विमानों के अपने अपने अग्रमंडप हैं जो जुड़े हुए हैं। रामेश्वर का निर्माण 1499 और 1513 के बीच और वीरभद्र का 1530 और 1540 के बीच हुआ। दोनों संधार विमान हैं जिनकी दीवारें बड़े खंडों को लंब स्तरो में रख कर बनाई गई हैं और छिटपुट रूप से तराशी गई हैं, जैसा कि हम्पी मे और उत्तरी क्षेत्र मे अनेक छोटे मंदिरों मे सामान्य रूप से पाया जाता है। मंडप के भीतर स्तंभ विशिष्ट विजयनगर प्रतिमान के हैं और वितान के पाषाण खंडों पर डिजाइन और मॉटिफ तराशे गए हैं, जिनमें से कुछ भारतीय इस्लामी डिजाइनों की याद दिलाते हैं।

अन्य मंदिर प्रकार

कदंब चालुक्य शैली के मंदिर

जबकि पूर्ववर्ती चालुक्यों ने विमान वास्तुशिल्प के पूर्ववर्ती मानदंडों को अपनाया, उन्हें अपने क्षेत्रीय मुहावरे के अनुसार विकसित किया और ऐसे प्रकारों के आरंभिक रूपों को तैयार किया, उन्होंने बनवासी के कदंबों द्वारा पूर्व में प्रभावित क्षेत्रों में अधिक प्रचलित रूपाकारों की ओर भी बराबर ध्यान दिया। उन्होंने और आगे उत्तर में जो विकसित हो रहा था, उस पर भी ध्यान दिया। उनकी भौगोलिक स्थिति दक्कन के आरपार क्षेत्र में फैली हुई थी, जो प्रायः द्वीप को उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग से अलग करता है। इसने उन्हें एकाधिक प्रभावों के प्रति अधिक ग्रहणशील बनाया। परिणाम यह हुआ कि पूर्ववर्ती चालुक्य वास्तुशिल्प और कला के उद्गम, यथा महाकूटेश्वर, ऐहोल, पट्टदकल और बादामी, और नीचे आंध्र कर्नाटक क्षेत्र में कुर्नूल के आसपास सत्यावोलु और महानंदी—जो पूर्वी चालुक्यों की वेंगी शाखा की सीमा पर थे—ने मंदिरों के एक मिश्रित प्रकार, उत्तरी दक्षिणी और स्थानीय रूप से ख्यात कदंब प्रकार को जन्म दिया।

कदव चालुक्य या कदंब नागर प्रकार में उसके एकदम सादे रूपाकार में एक वर्गाकार विमान नीची अधिरचना से युक्त होता है, जो कि उत्तरोत्तर घटते हुए स्तरों के एक पिरामिड के रूप में ऊपर उठता है। यह मूलभूत रूप से ओलती जैसा या कपोत जैसा रूपाकार लिए होता है, और प्रायः तलों को निर्देशित करने वाली लघु अंतराल युक्त ग्रीवा द्वारा पृथक होते हैं। कपोत स्तर उभारदार कुदु मॉटिफ से, विशेषकर हर दिशा के मध्य में अलकृत होते हैं। ये अपनी ऊर्ध्वगामी संगति में उत्तरी शैली के प्रासाद शिखर की रेखा के सदृश्य दिखते हैं। पृथक करनेवाली ग्रीवा या गले पूरी तरह से नहीं भी हो सकते हैं या इतने छोटे भी कि दिखाई न पड़ें। सर्वोच्च स्तर पर एक छोटी ग्रीवा एक विशिष्ट आमलशिला या आमलक युक्त होती है, जो धारियों से युक्त गोलाकार या मसूर के आकार का होता है, और जो उत्तरी प्रासाद अधिरचना का विशिष्ट शीर्पस्थ अवयव होता है या वैकल्पिक रूप से ग्रीवा पर स्तूपी सहित शिखर भी हो सकता है जैसे दक्षिणी विमान रूपाकारों

में होता है। पूर्वोल्लिखित का सादृश्य उड़ीसा के वास्तुशिल्प के तथाकथित पिदादेऊलों या गुजरात क्षेत्रों के फणसनकर भवनों के साथ है। अधिक विकसित रूपाकारों में आमलक शिखर सहित स्तरों के कोनों पर थोड़ी थोड़ी दूरी पर वैसे ही छोटे आमलक या कर्णामलक दिए गए हैं जैसे कि उत्तरी शैली के मंदिरों में होते हैं। यह स्पष्ट है कि ढलवां छत खंडों या एक के ऊपर दूसरे कोर्निस को मोड़ने की स्तर प्रबंध की यह पद्धति अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी, जैसी कि पश्चिमी तट पर कदंबों के मूल क्षेत्र में थी। इसमें तटीय कोंकण क्षेत्रों में आगे और विकास हुआ और आगामी शताब्दियों में यह पूर्व में भी कृष्णा और तुंगभद्रा के निचले क्षेत्रों तक भी पहुंच गया। पाषाण के कुछ पूर्ववर्ती निर्माणों में, जैसे ऐहोल में कुछ उदाहरणों में यद्यपि आमलक शीर्ष और कर्णामलक है किंतु शुकनासिका का अभाव है, यह उत्तरभारतीय मंदिर रूपाकारों की अपरिवर्तनीय विशिष्टता है। यह कहा जा सकता है कि यह रूपाकार, दोनों में से एक प्रकार के शीर्षस्थ अवयव और शुकनासिका रहित या सहित कमोवेश विशिष्ट उत्तरी प्रासाद अधिरचना और दक्षिणी विमान रूपाकार के बीच संकरण है। यह प्रकार ऐहोल[1] स्थित गलगनाथ मंदिर के निकट (आठवीं शताब्दी) मल्लिकार्जुन समूह बादामी घाटी में भूतनाथ समूह के मार्ग पर लकुलिश मंदिर और महाकूटेश्वर मंदिर के उदाहरणों से स्पष्ट है, जो सभी बादामी चालुक्य राष्ट्रकूट मूल के हैं। महानंदी स्थित (जिला कुर्नूल) महानंदीश्वर मंदिर के पीछे छोटे मंदिरों का समूह, और आलमपुर में पापनाशम समूह के मंदिर भी पूर्वी चालुक्य प्रदेश में इसी प्रकार के हैं। डोड्डागड्डवल्ली (जिला हासन, मैसूर)[2] मे लक्ष्मी देवी मंदिर समूह के नौ में से आठ निर्माण, जो 1113 में बने थे इसी प्रकार के हैं और होयसल काल के हैं। सन् 1385 में निर्मित गणिगित्ति जैन मंदिर, चिपगिरि (जिला बेल्लारी) स्थित वैसा ही एक अन्य जैन मंदिर, हंपी में पंपापति मंदिर से संलग्न हेमकूटम पहाड़ी पर त्रिकूट मंदिर समूह, उसके गोपुर के निकट स्थित दो और मंदिर और हम्पी से एक मील उत्तर-पूर्व में स्थित एक अन्य मंदिर इस प्रकार के विजयनगर काल में बने मंदिरों के उदाहरण हैं। क्योंकि गणिगित्ति और चिप्पगिरि मंदिर जैन समुदाय के मंदिर थे, शायद इसीलिए लांगहर्स्ट ने हेमकूटम पहाड़ी स्थित मंदिरों को भी जैन बताया, तथापि उन पर प्राप्त प्रमाणों से वे ब्राह्मण मंदिर हैं।[3]

1. कजिंस चालुक्यन आर्किटेक्चर ऑव द कनारीज़ डिस्ट्रिक्टस, आर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑव इंडिया, वाल्यूम XLII, न्यू इम्पिरीयल सीरीज, 1926 प्लेट XXV पर अकित है "गलगनाथ का मदिर और मंदिर संख्या 37 और 38 की पीठ" ये गंडरगुडी और गलगनाथ भी कहलाते हैं।
2. नरसिंहाचार, आर; द लक्ष्मीदेवी टेपल ऑन डोड्डागड्डवल्ली, मैसूर आर्कियालॉजिकल सीरीज, आर्किटेक्चर एंड स्कल्पचर इन मैसूर, संख्या III, 1919
3. लांगहर्स्ट, ए. एच.; हम्पी रूइंस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया पब्लिकेशंस, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1933

इसी रूपाकार का एक प्रकार, जो दक्षिणी विमानों के स्तर वाले तलों और उत्तरी प्रासाद की योजनाबद्ध और समरूप भूमियों के बीच एक संकरण के समान है, और प्रायः कोनों पर आमलक युक्त होती हैं, वह भी उसी क्षेत्र में विभिन्न कालों में निर्मित किया हुआ, प्राप्त है। इस प्रकार में, हर भूमि सादे, छोटे भित्तिस्तंभों और ताकों से युक्त दीवारों के द्वारा विभक्त की जाती है, जो संपूर्ण पिरामिडी अधिरचना को वर्गाकार खंडों वाले स्तरों में विभाजित कर देती है। शीर्ष पर ग्रीवा, अमल शिला और स्तूपी होती है, जैसी उत्तरी प्रासादों में सामान्य है। यह ऐहोल स्थित गलगनाथ के उदाहरण से स्पष्ट है। यह कर्णामलकों सहित सादी और ऊंची उठाई गई अधिरचना युक्त है। (कजिस का मंदिर क्रमांक 10)[1] ऐहोल स्थित मल्लिकार्जुन मंदिर कर्णामलक रहित इस प्रकार का उदाहरण है। दक्षिणी विमान प्रकार के महाकूटेश्वर और मल्लिकार्जुन तथा उत्तरी प्रासाद प्रकार के सगमेश्वर के अतिरिक्त महाकूटेश्वर मंदिर परिसर के अहाते के भीतर अन्य संरचनाएं चालुक्य कदंब शैली के रूपभेद हैं। ऐसे ही मंदिर नागार्जुनकोंडा (जिला गुंटुर) के निकट तेरला में भी मिलते हैं। कदंब प्रदेश में भी, जैसे हंगल, बेलगामी और अन्य स्थानों पर यह प्रकार एक ऐसा रूप धारण कर लेता है। जिसमें क्षैतिज पट्टियों जैसे अवयव उनके ऊपरी किनारों के साथ साथ दांते या ऊर्ध्वाधर कमल कली जैसे आकार के प्रक्षेपों की एक शृंखला के अतिरिक्त केंद्र में कुदु जैसे अलंकार, एक वर्गाकार विमान प्रकार का शीर्षस्थ शिखर और सामने की ओर एक शुकनासिका होती है। यह प्रकार हम्पी जैसे विजयनगर साम्राज्य के उत्तरी प्रदेशों में अधिक सामान्य हो गया।

चालुक्यों और राष्ट्रकूटों के उत्तरी शैली के प्रासाद मंदिर

वर्गाकार धड़ और आनुपातिक रूप से विशाल वक्ररेखीय अधिरचनाओं से युक्त प्रासाद प्रकार की संरचनाएं भी, पूर्वोक्त अन्य प्रकारों के साथ साथ ऐहोल और पट्टदकल में पूर्ववर्ती चालुक्यों द्वारा बनवाई गई। ये अपने रूपाकार और रचना में विमान के हारों से युक्त स्तरित तलों वाली अधिरचना से बिल्कुल भिन्न थीं। ये कर्नाटक और आंध्र के अन्य भागों में भी बनवाई गई। इन मंदिरों में शिखर, मंदिर को घेरने वाले भाग के ऊपर की संपूर्ण अधिरचना का संकेत देता है जो एक अकेली इकाई बनाती है जिसे 'अंड' कहा जाता है, जो कोनों पर गूजबेरी (काकवदरी) आकार के कर्णामलकों द्वारा स्पष्ट कटान हिंदुओं में विभक्त होता है और यह सब इस ढंग से संपीड़ित किया गया होता है कि दक्षिणी विमानों के तलों जैसा स्पष्ट तल विभाजन दिखाई नहीं देता। केवल समरूप भूमियां होती हैं। रेखा प्रासाद के इस

1. वही, प्लेट, XIX, ऐहोल मंदिर क्रमांक 10–दक्षिण पश्चिम की ओर से

शिखर पर गला या ग्रीवा होती है जिसके ऊपर एक बड़ा आमलक आकार का आमलसार या आमलशिला होती है जिसके शीर्ष पर स्तूपी या कलश रहता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उत्तरी रेखा प्रासादों में जिसे शिखर कहा जाता है, वह दक्षिण के स्तर युक्त विमानों में उसी नाम से ज्ञात अवयव नहीं है। छोटे आमलक, प्रासाद की अधिरचना के कोनों पर भिंचे हुए होते है, इसलिए कर्णामूलक कहलाते हैं और भूमि विभक्त करने का एकमात्र आधार होते हैं। प्रायद्वीप के आंध्र और कर्नाटक क्षेत्र में, अपने विशिष्ट चालुक्य मुहावरे सहित, अपनी निजी भिन्नताओं के बावजूद, ये उत्तरी प्रकार के प्रासाद एक ऐसा समूह बनाते हैं जो पश्चिमी, उत्तरी या पूर्वी भारत के ऐसे प्रासाद मदिरों से एकदम अलग दिखाई देते हैं। उनके अधिष्ठान सामान्य रूप से दक्षिणी विमान में पाए जाने वाले प्रतिमानों का अनुसरण करते हैं और धड़ मे एक स्पष्ट प्रस्तर होता है और उसके ऊपर के अधिरचना भाग को पृथक करता है। वर्गाकार योजना या पाद स्थिति को आधार से शिखर तक हर पृष्ठ पर तीन या पांच खंडों में उभारा जाता है। ये उभरे हुए भाग रथ कहलाते हैं, और वे मंदिर को त्रिरथ या पंचरथ रूप देते हैं। सर्वाधिक विशिष्ट और स्पष्ट शुकनासिका अंतराल की छत के ऊपर अधिरचना के सम्मुख भाग से प्रक्षिप्त होती है और शिखर के अग्रभाग में उसके निम्न भाग की चौड़ाई के लगभग बराबर चौड़ी होती है और पूर्ववर्ती उदाहरणों में शिखर के आधार की चौड़ाई के दो तिहाई नहीं तो कम से कम आधे के बराबर आगे प्रक्षिप्त होती है। तथापि अक्षीय मंडप उसी प्रतिमान के हैं, जो क्षेत्र के विमान मंदिरों के हैं और उनकी सपाट छत प्रक्षिप्त शुकनासिका को, अन्यत्र उत्तरी शैली के मंदिरों की शुकनासिकाओं, जो भद्रा प्रक्षेपों की चौड़ाई से शायद ही अधिक होती है, से अधिक स्पष्ट बनाती है। मंडपों के अतिरिक्त, चालुक्य क्षेत्र के इन उत्तरी शैली के मंदिरों की, स्थानीय विमान प्रकारों के साथ अनेक समानताएं हैं, जैसे उनके स्तंभों के रूपाकार, द्वारों की चौखटें, मूर्तियां, विशेष रूप से प्रवेशों के दोनों ओर स्थित द्वारपालों की मूर्तियां, प्रतिमा विज्ञान और अलंकरण की अन्य विशिष्टताएं।

ऐहोल में हच्चीमल्लीगुडी, हुच्चाप्पय्यागुडी और तरप्पागुडी, उसके निकट सिद्धनकोल्ला, महाकूटेश्वर में मल्लिकार्जुन और पट्टदकल में कादासिद्धेश्वर, जंबुलिंग, पापनाथ, काशी विश्वेश्वर और गलगनाथ बादामी चालुक्य प्रदेश में प्राप्त ऐसे उदाहरणों मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। हच्चीमल्लीगुडी, हुच्चाप्पय्यागुडी और मल्लिकार्जुन इस समूह में सबसे प्राचीन हैं। ये अग्रमंडपों सहित सामान्यतया त्रिरथ हैं। बाहरी दीवार सादी या अलंकृत है जिसमें प्रायः एक स्तंभयुक्त ड्यौढ़ी है। पहले मंदिर संधार प्रकार के हैं जबकि बाद के निरंधार प्रकार के हैं, तथापि वे अपने सामान्य बाह्य रूप में पहले के समान हैं।

पट्टदकल स्थित कादासिद्धेश्वर और जंबुलिंग बिलकुल सादे हैं। उनमें एक

त्रिरथ शिखरयुक्त एक मंदिर (वेदिका) और एक अग्रमंडप है। काशीविश्वेश्वर पंच रथ है, जबकि गलगनाथ संधार प्रकार का है जिसकी वेदिका की बाहरी दीवार की तीन भुजाएं स्पष्ट रूप से सपाट छत वाली ड्यौढ़ियों के रूप में प्रक्षिप्त हैं। इसमें एक त्रिरथ शिखर है। पापनाथ में एक निम्न और रैखिक योजना है और मुख्य भवन पर एक बौना शिखर है, जो सामने की ओर अननुपार्तिक बड़े अंतराल और उसके आगे एक मंडप और ड्यौढ़ी की कुल लंबाई के अनुपात में बहुत छोटा है। सबसे रोचक विशेषता है सामने कोनों पर कर्णकूटों से युक्त शालाओ का हार और बीच मे कुछ पंजर जो अविच्छिन्न रूप से अक्षीय मंडपों की छत के ऊपर तक विस्तृत हैं। यह एक दक्षिणी विशेपता है जो विमान प्रकार के मंदिरों के लिए ही उपयुक्त है। महाकूटेश्वर समूह में संगमेश्वर त्रिरथ विन्यास का है जिसमें सामने एक स्तंभयुक्त मंडप है। वेदिका मंदिर के फर्श से पानी के निकास के रूप में अधिष्ठान के ऊपर इसकी उत्तरी भुजा में एक आयताकार विवर पर समाप्त होती नाली के रूप में ढालू नाली की उपस्थिति एक रोचक विशेपता है।

पूर्वी चालुक्यो के क्षेत्र में, जिसमें कुर्नूल, मेहबूबनगर और गुंटुर जिले शामिल हैं, सातवीं आठवीं शताब्दियों से ऐसे रेखा प्रासाद बनते आए हैं। आलमपुर में नौ मंदिरों नवब्रह्म परिसर में, दक्षिणी विमान प्रकार के तारकब्रह्म के अतिरिक्त सभी इसी प्रकार के हैं। उनमें से अधिकांश 713 ईसवी के पूर्व के हैं, जब, एक शिलालेख के अनुसार ईशानाचार्य द्वारा संपूर्ण समूह को घेरते हुए एक प्राकार बनवाया गया था। अधिकांश निरंधार और कुछ संधार हैं। हर इकाई में एक वेदिका मंदिर, एक संतुलित त्रिरथ शिखर, एक अंतराल और दो स्तरों वाली सपाट छत युक्त मंडप हैं। संपूर्ण अक्षीय शृखला के लिए सामने की ओर एक अकेला प्रवेश है और उसे घेरती हुई एक अविच्छिन्न दीवार है, जो संधार प्रकार में बाहरी दीवार का गठन भी करती है। दीवार के बाह्य फलकों पर उत्कृष्ट रूप से तराशे हुए ताक हैं, जिन पर सुदर शिल्पांकनों और जालीदार खिड़कियों वाले उद्गम मॉटिफ आच्छादित हैं। उत्कीर्णन बढ़िया है और मध्य भारतीय और राजस्थानी शैलियों का स्मरण दिलाता है। समूह में सर्वाधिक उन्नत और अलंकृत बालब्रह्म है।

मदिर इकाइयों का महानंदी समूह एक सांझे प्राकार से घिरा हुआ है। इसमें अन्य संरचनाओं के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के छह लघु वेदी मंदिरों का एक समूह और प्रमुख महानदीश्वर के पीछे चार छोटे वेदी मंदिरों का एक समूह है। महानदीश्वर संधार रेखा प्रासाद जिसमें एक त्रिरथ प्रकार का शिखर है और इसका निर्माण 750 ईसवी के आसपास हुआ था। सत्यावोलु (जिला कुर्नूल) स्थित परिसर के भीमलिंगेश्वर और रामलिंगेश्वर जो समूह की प्रमुख इकाइयां हैं, दोनों ही वर्गाकार धड़ के ऊपर त्रिरथ शिखर सहित निरंधार है। उनके अधिष्ठान ही दक्षिणी विमान प्रकार के नहीं हैं, बल्कि उनमें एक व्यालवारी या व्यालमाला, प्रस्तर में व्यालों

की एक चित्रवल्लरी भी है, जो दक्षिणी विमान मंदिरों का एक अपरिवर्तनीय अवयव है, और जो अन्य सभी रेखा प्रासादों में नहीं है। बड़े रामलिंगेश्वर में एक मंदिर, एक अंतराल और सामने एक अक्षीय मंडप है। हर दिशा में एक देवकोष्ठ ताक के अतिरिक्त मदिर की दीवार अनलंकृत हैं। छोटे मंदिरों में वर्गाकार आयताकार और अर्धवृत्ताकार योजनाओं के नमूने मिलते हैं। वर्गाकार मंदिर अपने रूपाकार में हुच्चीमल्लीगुडी के सदृश हैं, जो छह क्षैतिज कपोत जैसे स्तरो की ऊपर उठती शृंखलायुक्त हैं जिस पर एक आमलसार है। कदंब चालुक्य प्रतिमान का उदाहरण है।

कुर्नूल के ही निकट, पंचलिंगेश्वर, तथापि इसका अब काफी नवीनीकरण हो चुका है, इसी श्रेणी का है। इसकी योजना संधार प्रकार की है और इसकी वर्तमान अधिरचना कदंब चालुक्य शैली में आधुनिक नवीनीकरण है। इसमें सामने एक स्तंभयुक्त मंडप है, जिसमें रोशनदान की तरह मध्य में उठी हुई छत और ढलवां छतों वाले पश्च खंड हैं। इसमें लगभग 750 ईसवी का विजयादित्य के समय का एक शिलालेख है। इस प्रकार का सुरक्षित अन्य मंदिर निकट ही मे बांदी तंद्रापाडु में प्राप्त है जिसका धड़ निरंधार है और इसकी भुजाओं पर उभरे हुए भद्रा ताको में गणेश, दुर्गा और कार्तिकेय के उत्कीर्णन हैं। शिखर के सामने के भाग में शुकनासिका स्पष्ट है।

चेब्रोलु स्थित सोमेश्वर और पंचलिंगुला स्थित पंचलिंगेश्वर भी इसी वर्ग के हैं। येलेश्वरम उत्खनन में प्राप्त लघु मदिर सत्यावोलु और महानदी परिसरों में पाए गए छोटे प्रयोगों के सादृश्य हैं।

इस क्षेत्र में इस प्रकार के रेखा प्रासाद जल्दी प्रचलन से बाहर हो गए और आगे बढ़कर दक्षिण में तमिल क्षेत्र में विस्तार नहीं पा सके।

केरल मंदिरों के प्रकार

केरल के मंदिरों का अपने आप में एक अलग वर्ग ही है। क्योंकि उनके निर्माण में एक सीमा तक इमारती लकड़ी सम्मिलित थी, जैसा कि पाषाण विमानों के आरंभ के पूर्व दक्षिण भारत में हर कहीं यही स्थिति थी। यद्यपि कुछ स्थानों पर मध्यकालीन और उत्तर मध्यकालीन समय और शैली के (जैसे तमिलनाडु में) विमान मंदिर मिलते हैं, अधिसंख्य मंदिरों के आंधार और दीवारें क्रमशः ग्रेनाइट और लेटराइट की हैं जिन पर लकड़ी के तख्तों या खपरैलों या लकड़ी के ढांचे के ऊपर धातु की चादरों की छतें हैं और उनका आकार क्षेत्र की अधिक वर्षा के उपयुक्त बनाया गया है। जबकि विमान या श्रीकोयिल का अधिष्ठान तराशे गए पाषाण खंडों का है और उसके सारे अंग किसी भी दक्षिणी मदिर के अधिष्ठान के अंगों

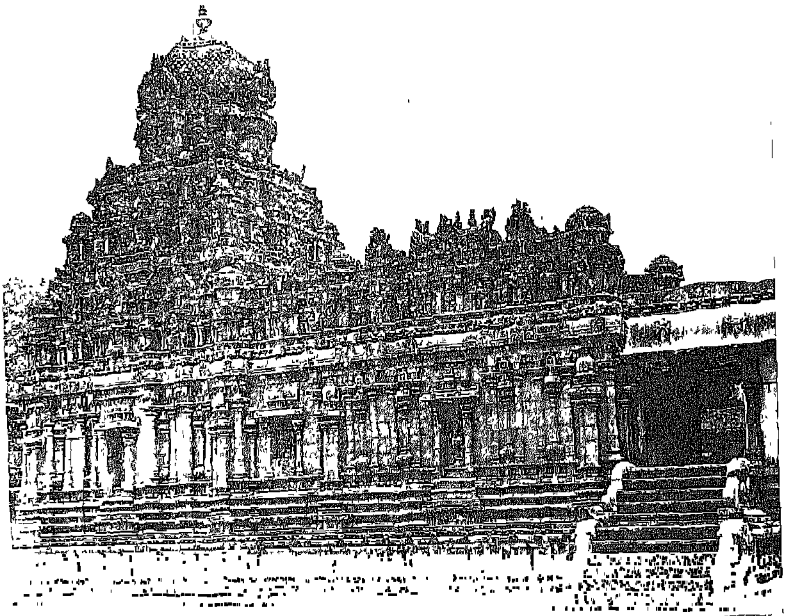
के सदृश्य हैं, दीवारें सामान्यतया लेटराइट खंडों की हैं जो इस क्षेत्र में प्रचुरता से प्राप्त है, और खदान से निकाल कर ताजा ताजा आसानी से उसे काटा और आकार दिया जा सकता है। उनकी अनगढ़ और चेचकरू सतह के कारण दीवारो पर गहरा प्लस्तर किया गया और थोड़ी बहुत सजावट गचकारी से की गई है। दीवारें भित्तिचित्रों के लिए बहुत अच्छी पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं, जिसने उभारदार शिल्पांकन का स्थान ले लिया। इस प्रकार केरल के मंदिर अपने समृद्ध रंगचित्रों के लिए उल्लेखनीय हैं, जो चूने से प्लस्तर की गई दीवारो पर भित्तिचित्र टेकनीक में बनाए गए हैं। छत की बल्लियां सीधे दीवारों के ऊपर दीवार की पट्टियों पर रखी जाती हैं, वे त्रिअंकी रूप में मुड़कर शीर्ष पर एक बिंदु पर मिल जाती हैं। लकड़ी के ढांचे को आवृत्त करनेवाली छत निर्माण सामग्री खंगर (ईट) से बनती है। यह पटलीकृत लकड़ी के तख्तों से बनाई जाती है, जो कुछ अंशों तक एक दूसरे पर आच्छादित (खपरैलों के समान रखे जाते हैं और खंगर खपरैलों से या भट्टे में अत्यधिक आंच में तपाए गए काचाभ या चमकदार चिकनी सतह युक्त खपरैलों से आच्छादित किए जाते हैं। उनकी यह काचाभता उन्हें जलसह (वॉटर प्रूफ) बना देती है। खपरैलों की मत्स्य शल्कों जैसी यह आच्छादन पद्धति दक्षिणी विमानों के ईट और गारे से निर्मित शिखरों के आच्छादक प्लस्तर में दोहराई गई पाई जाती है। छत वैकल्पिक रूप से धातु–ताम्र या कांस्य चादरों की भी हो सकती है। इसकी भी नकल महाबलिपुरम के आरंभिक एकाश्मक प्रतिमान, यथा द्रौपदी रथ में पाई गई है। द्रौपदी रथ के ही समान केरल के मंदिरों में अपने एकदम सादे रूपाकार में, सादे विमान के छह अंगों के स्थान पर केवल चार अंग ही होते हैं, यथा, आधार या अधिष्ठान, भित्ति, शिखर और स्तूपी। सबसे ऊपर की अंतिम छत के नीचे का प्रस्तर और ग्रीवा विलुप्त है। प्रस्तर और हार केवल मंजिलों वाले रूपाकार में दिखाई देते हैं। श्रीकोयिल या विमान की सामान्य योजना वर्गाकार या वृत्ताकार और अर्धवृत्ताकार है। मंडपों और गोपुरों के लिए, जो कि पदिप्पुरा कहलाते हैं, आयताकार अधिक सामान्य है। छत की कड़ियां दीवार से आगे निकली हुई हैं, जो सुगठित ओलती जैसे कपोतों का निर्माण करती हैं। इन्हें प्रायः दीवार से निकली हुई तराशी लकड़ी की स्त्री आकृतियों के दीवारगीरों से युक्त तराशे हुए लकड़ी के ढांचों से अतिरिक्त अवलंब दिया जाता है। बड़े विमानों में धड़ संधार, या प्रदक्षिणा पथ सहित दुहरी दीवार वाला या 'इदई नाली' हैं। प्रदक्षिणा पथ मंदिर कक्ष के चारों तरफ होता है, जिसमें भीतरी दीवार ऊपर उठकर द्वितीय तल का निर्माण करती है और ऊपर शंकु के आकार की या पिरामिडी त्रिअंकी छत है। प्रदक्षिणा के एक निचले स्तर पर भीतरी दीवार के मध्य से एक ढलवां छत बाहरी दीवार के आगे तक ओलती के समान निकलती है। शंकु के आकार या ढलवां मुख्य छत में खिड़की या नासिका प्रक्षिप्त होती है, जो स्थानीय रूप से किलिवसल

कही जाती है, जिस पर सामने उत्कृष्ट तराशी हुई तोरण चौखट होती है। उसका पूर्ण रूपाकार या कम से कम उसके अग्रभाग मुखपत्ती में अधिकांशतया मेहराबदार या घोड़े की नाल के आकार के और कुछ मामलों में त्रिकोणी हैं। स्थानीय नाम किलिवसल (शुक प्रवेश) शुकनासिका नाम के सादृश्य है। बाहर की दीवार का वृत्ताकार और मंदिर के चारों ओर की भीतरी दीवार का वर्गाकार या इसके विपरीत होना असामान्य नहीं है। सामान्य रूप से श्रीकोयिल के पूर्व या पश्चिम पर केवल एक प्रवेश होता है। शेष पार्श्वो पर ताक या छद्म द्वार होते हैं। कुछ मामलों में प्रवेश पूर्व और पश्चिम दोनों ओर होता है और मंदिर कक्ष के भीतर का खाली स्थान एक अनुप्रस्थ दीवार द्वारा पूर्वी और पश्चिमी भागो में बंटा होता है और दोनों भागों में अलग अलग देवता होते हैं। प्रवेश के सामने पाषाण की सीढ़ियों का एक सोपान होता है जिसके अगल-बगल में पत्थर के पटों का जंगला होता है, जिन पर समृद्ध उभारदार शिल्पांकन होता है, जंगले या मुंडेर को हाथी की सूंड का आकार दिया गया होता है, जो एक व्याल मुख से निकलती हुई होती है या फिर ऐसे ही अन्य रोचक प्रतिमान बने होते हैं। उत्तरी दिशा से प्रक्षिप्त प्रणाल या जल निकास एक विशिष्ट आकार की होती है, मोटी, लंबी, बेलनाकार और ट्यूब जैसी, जिसमें एक संकीर्ण नली बनी होती है, जो व्याल के मुंह से निकलती हाथी की सीधी सूंड के सदृश्य होती है। बाहरी रूप से यह तीलियों युक्त और बीच बीच में वर्तुलाकार बिंदुओं में विभाजित रहती है और नीचे से 'भूत' या गण पर टिकी होती है। श्री कोयिल में एक पृथक अग्रमंडप होता है, प्रायः ढलवां छत युक्त वर्गाकार, जिसे नमस्कार मंडप कहा जाता है। बाह्य रूप से चतुर्भुज खुला प्रांगण एक प्राकार से घिरा होता है जिसमें एक विहार, या मालिका होती है जिसे स्थानीय रूप से नलांबलम या चुट्टांबलम कहा जाता है। एकाधिक चतुर्भुज अहाते भी हो सकते हैं। सबसे बाहर वाले में मुख्य गोपुर या पदिप्पुरा सामने की ओर होता है और कभी कभी पीछे और पार्श्वो पर भी अतिरिक्त प्रवेश गोपुर होते हैं। भीतर के सादे प्राकार के अलावा त्रिचूर में वडक्कुन्नाथ मंदिर जैसे बड़े मंदिर परिसर में चारों दिशाओं में बहुतलीय गोपुर युक्त बाह्य प्राकार भी है, और प्रांगण में पृथक मंडप जैसे रंगशाला या कुट्टांबलम हैं, जो ऑपेरा, नृत्य और ऐसे ही कला प्रदर्शनों के लिए हैं, जिनके लिए विशेष रूप से नृत्य नाटिका और मूकाभिनय प्रदर्शनों जैसे 'कथकह ओट्टांतुल्लाल' के लिए केरल उल्लेखनीय है। वडक्कुन्नाथ मदिर में, षष्ट के लिए, बाहरी प्रांगण के उत्तर-पूर्वी कोने पर बना उपमंदिर लकड़ी और धातु की चादरों की छत से युक्त और अर्धवृत्ताकार है।

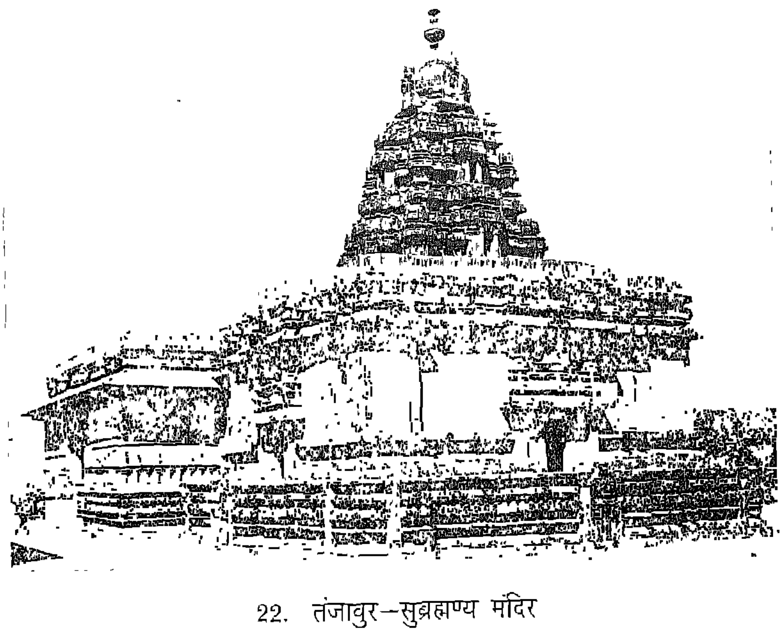
केरल के इस समय विद्यमान अधिकांश मंदिर बहुत पुराने नहीं हैं। सबसे पुराना मध्यकालीन या उत्तर मध्यकालीन है। निर्माण की नाशवान सामग्री के कारण सबसे पुराने मंदिर नष्ट हो चुके हैं। केवल उनके पाषाण अधिष्ठान और देवताओं,



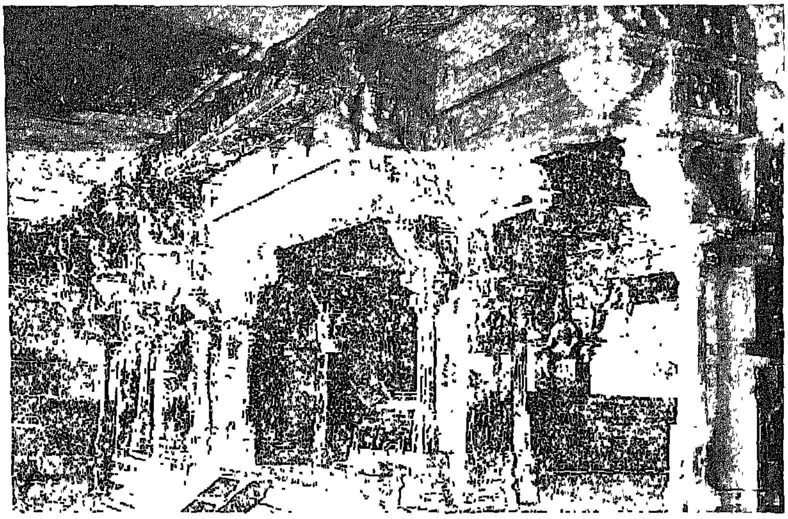
20. श्रीरंगम–रंगनाथ मंदिर–मंडप



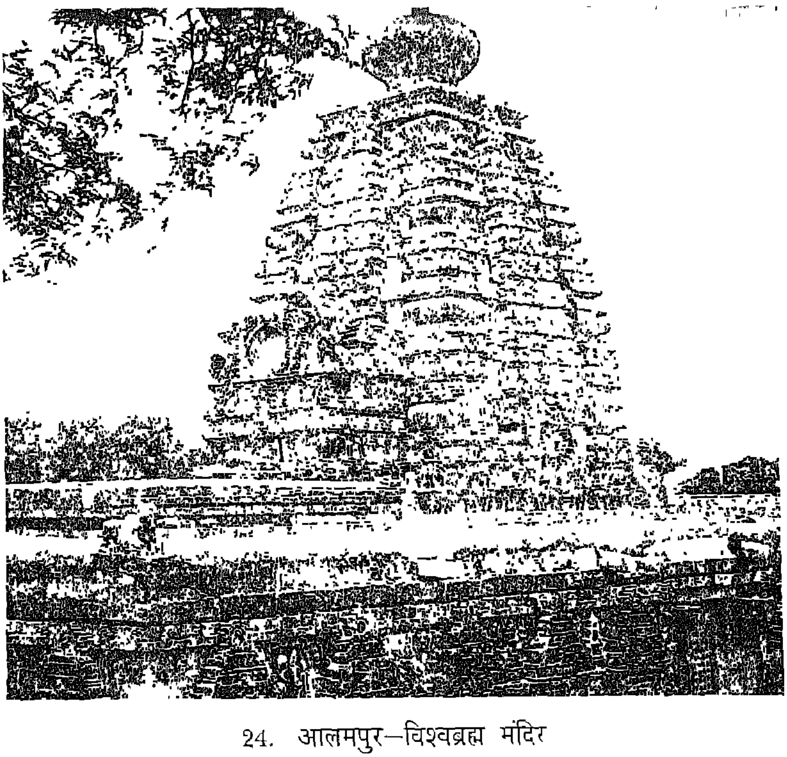
21. श्रीविल्लपुत्तुर–वातपत्रशायी मंदिर–मुख्य गोपुरम



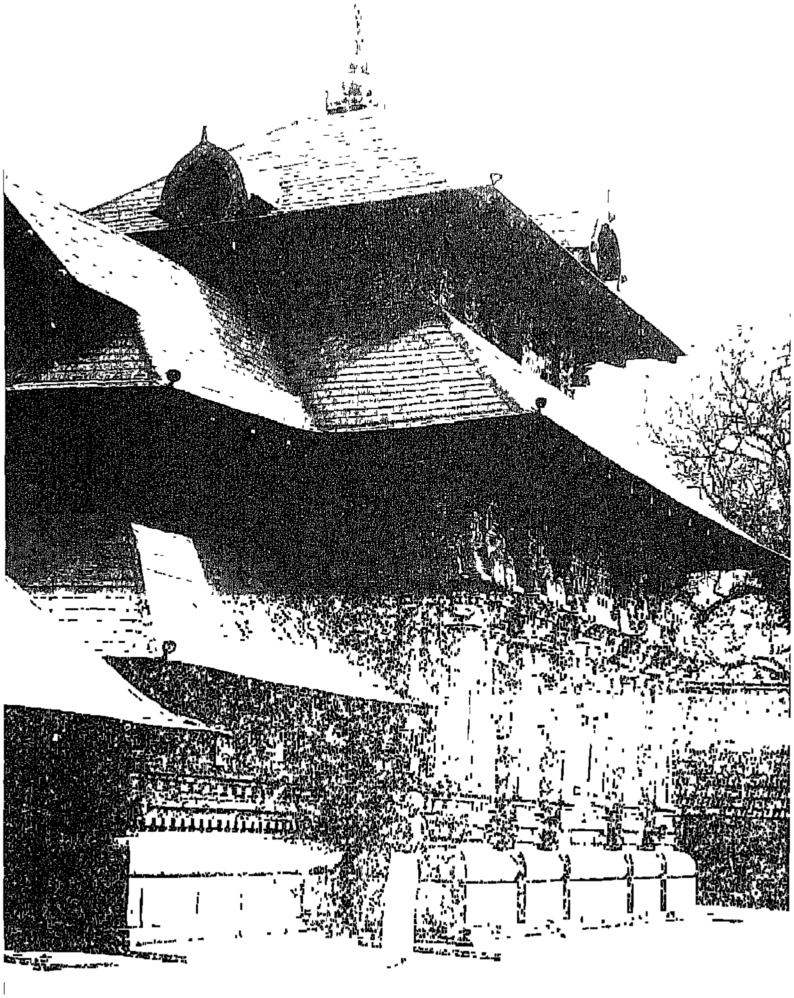
22. तंजावुर–सुब्रह्मण्य मंदिर



23. इक्केरी—अघोरेश्वर मंदिर



24. आलमपुर—विश्वब्रह्म मंदिर



25. त्रिचुर—वडक्कुन्नाथा मंदिर

द्वारपालों आदि की मूर्तियां शेष हैं। इनसे हमें यदि और पहले से नहीं, तो कम से कम दसवीं शताब्दी ईसवी से अविच्छिन्नता का बोध मिलता है।

स्पष्ट ढलवां छतों या त्रिअंकी किनारेदार छतों से युक्त ऐसे मंदिर विस्तृत रूप से मानसून प्रभावित तटवर्ती क्षेत्र, दक्षिण में कन्याकुमारी से लेकर उत्तर में दक्षिण कनारा और गोवा तक बिखरे मिलते हैं। उनके श्रीकोयिल या विमान आयोजन में वृत्ताकार, जो अधिक प्रचलित है, दीर्घवृत्तीय (अंडाकार), वर्गाकार, दीर्घायताकार और अर्धवृत्ताकार सम्मिलित हैं, और वे प्रायः एकाधिक मंजिलों वाले हैं। मंजिलों की ढलवां छतें मंजिलें होने की स्थिति में निचली कड़ियों पर अवलंबित रहती हैं और उनकी लटकती हुई ओलतियां या बाहरी दीवार से निकलते दीवारगीरों से उसे और सहारा मिलता है। साथ ही भीतर दीवार में ऊंचे पर लगे आंकड़ों पर शहतीर से नीचे ढलवां होती हैं। सबसे भीतर की दीवार पर स्थित शीर्ष मंजिल वृत्ताकार, अष्टभुजाकार और वर्गाकार संरचना पर एक कलशयुक्त शंकु के आकार की या चतुर्भुज कूट छत आच्छादित होती है और त्रिअंकी दीवारों पर मगरेदार शाला या सभा प्रकार की, आयताकार और अर्धवृत्ताकार संरचनाओं के मामले में स्तूपियों की एक पंक्ति युक्त छत से आच्छादित होती है। अधिष्ठान निरपवाद रूप से ग्रेनाइट पत्थर का होता है, जबकि दीवारें और अधिरचना ग्रेनाइट, लेटराइट या ईट और लकड़ी की होती हैं। छत तख्तों, धातु की चादरों या खपरैलों या साधारण निर्माणों में फूस की भी हो सकती है। इन मंदिरों में से अधिकांश, जिनमें से कुछ की नींव दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी की है, निकट की शताब्दियों में पर्याप्त रूप से नवीनीकृत या पुनर्निर्मित हो चुके हैं और ऐसा कुछ अधिक प्रदर्शित नहीं करते, जिसे विकासमान प्रवृत्तियों के रूप में परिभाषित किया जा सके।

सामान्य रूप से जिस पर ध्यान नहीं जाता वह है श्रीकोयिल की भीतरी गढ़न और संरचनात्मक अंतर्वस्तु, क्योंकि कर्मकांड, परंपरा और रूढ़ि के अनुसार केरल के मंदिरों का अंतर्भाग अभिषिक्त पुरोहितों के अतिरिक्त किसी और के लिए भी वर्जित है। श्रीकोयिल के संबंध में जो भी कुछ दिखाई देता है, वास्तव में वह एक वाह्य कवच है जैसे कि वह मूल रूप से विमान या भीतर गर्भकुंडी है। अभ्यंतर जिसमें गर्भगृह या वेदिका है, मूल रूप से एक विमान रूपाकार ही है, जैसा कि दक्षिण में अन्यत्र मिलता है जो अपने संपूर्ण अंगों से युक्त होता है, जिसमें गर्भगृह के ऊपर बहुस्तरीय अधिरचना होती है, जिस पर शिखर होता है या अधिक सामान्यतया अधिरचना की समाप्ति ग्रीवा पर होती है। दोनों ही मामलों में अधिरचना गर्भगृह पर कदलिका करण पद्धति से ऊपर उठाई जाती है। वेदिका मंदिर में प्रमुख देवता जिस स्थान पर विराजते हैं, उसे पीठिका कहते हैं और कक्ष के भीतर पीठिका के आसपास का स्थान वीथिका कहलाता है और कक्ष की दीवारें अंतरमंडल कही जाती हैं। अंतरमंडल के बाहर का घेरा अंतरहार कहा जाता है,

जिसमें बाहरी छत को अवलंब देने वाले खंभों के वलय खड़े किए जाते हैं। अंतर हार श्रीकोयिल की अंतर्भित्ति से घिरा होता है। संधार रचना में अंतर्भित्ति और बाह्य भित्ति के बीच परिक्रमा पथ होता है जिसे इदई नाली कहा जाता है। इस केंद्रीय इकाई की योजना प्रायः श्रीकोयिल की आधार योजना और नींव से मेल नहीं खाती और यह सामान्य बात है कि बाहर से जो संरचना वृत्ताकार या अर्धवृत्ताकार है, उसके भीतर गर्भगृह वर्गाकार हो या फिर इसके विपरीत भी हो सकता है। अंतिम बाहरी शंकु के आकार (गुंबदी) या मगरेदार छत अपनी स्तूपी सहित भीतरी केंद्रीय संरचना के ऊपर भीतरी शिखर को छाते के समान आच्छादित करती है या यह ग्रीवा के ऊपर स्थित होती है जिससे दोनों के लिए सांझे शिखर और स्तूपी का गठन होता है।

इस शिखर के अवलंबन चारों भुजाओं को आगे बढ़ाकर ढलवां बनाए गए हैं (जो फलक से बाहर तक प्रक्षिप्त खिड़कियों या नासिकाओं से युक्त हैं) ताकि बाहरी अधिरचना के नीचे लटक और आड़ पा सकें जैसे छाद्य या प्रक्षिप्त, ढलवां अवलंबन नीचे के विभिन्न स्तरों से अपने नीचे के भागों के लिए भी, बहुमंजिली संरचनाओं के मामले में उनमें से सबसे निचले भाग के लिए और एकतल संरचना में एकमात्र मुख्य छत या शिखर का अवलंबन संरचना के अधिष्ठान के ऊपर उठती मुख्य बाहरी दीवार के ऊपर के लिए भी प्रभावी होता है।

जबकि, मूलभूत रूप से केंद्रीय भाग या गर्भगृह सामान्य विमान प्रकार का होता है, जैसे कि पश्चिमी घाट के पूर्व में मुख्यभूमि के भाग मे मिलता है, श्रीकोयिल संरचना का बाह्य सुरक्षात्मक कवच के सदृश्य है, जो पश्चिमी तट के अत्यधिक और निरंतर मानसूनी वर्षापात से भीतर के मुख्य भाग की रक्षा करता है, काफी कुछ एक छाते की तरह—एकल या बहुस्तरीय या शंख के आकार का। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है श्रीकोयिल की योजना सामाम्य रूप से वर्गाकार या शयनमुद्रा में देवता की प्रतिष्ठा की जानी हो तो दीर्घायताकार या दीर्घवृत्ताकार, या वृत्ताकार या अर्धवृत्ताकार होती है। अर्धवृत्ताकार की स्थिति में अर्धवृत्त भुजा सामान्य रूप से आनुपातिक रूप में अधिक चौड़ी होती है जो आकार में अर्ध गोलाकार सदृश्य होती है। इसलिए यह चाप (धनुष) के नाम से अभिहित है। छत या शिखर कूटागार या गुंबद के आकार का होता है और भुजाएं एक स्तूपी युक्त शिखर पर मिलती हैं, या फिर विस्तृत त्रिअंकी छोरों सहित सलाकार स्तूपियों की एक पंक्ति युक्त अनुलंबित मगरे में मिलता है। दोनों ही मामलों में यह नीचे की रचना की योजना और आकार के अनुरूप बनाया जाता है। सादे एक तल श्रीकोयिल के अतिरिक्त दो या तीन मजिले प्रकार भी सामान्य हैं। किंतु स्थानीय ग्रंथों और श्रीकोयिल के विद्यमान नमूनों से लगता है कि तीन मंजिलों से अधिक से तलच्छंद अपेक्षित या प्रयत्नयोग्य नहीं लगता। निरंधार (इकहरी दीवार का)

एकतल संरचना शुकनासा रहित है, जबकि संधार (दुहरी दीवारवाला जिनके बीच वलयाकार मार्ग हो) एकतल संरचना, चाहे किसी योजना की हो, उसमें शुकनासा अनिवार्यता है, जैसा कि इसकी संधार प्रकृति से भी और दुहरी या तिहरी मंजिलों वाली संरचना से स्पष्ट है। बहुमंजिले प्रकार हर स्तर या तल के (केरलीय ग्रंथों में ग्रीवा) के ऊपर एक हार योजना प्रदर्शित करते हैं, जो अपनी अध्यारोपण (एक के ऊपर एक) पद्धति में उत्तरोत्तर ऊंचाई में घटते जाते हैं। बाहर से भी संधार प्रकार की जानकारी इस तथ्य से हो जाती है कि बहुमंजिली संरचनाओं के अधिरोपित अवलंबन (जो कि ऊर्ध्वगामी योजना में मध्यवर्ती तल या ग्रीवा द्वारा एक-दूसरे से पृथक होते हैं।) नीचे के तल प्रस्तर के हार तत्वों के ऊपर लटकते हुए छाद्य के रूप में आते हैं। यह, अपने अपने छाद्यों के उस भाग से निकलने के कारण होता है जिसे दक्षिणी विमान के आदि प्रारूप में तल प्रस्तर का कपोत स्तर कहा जाता है। मोटी दीवार युक्त निरंधार प्रतिमान में हार, छाद्यो या अवलंबनों के निकलने की रेखा के ऊपर दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि यह छाद्यो के एक सुविधाजनक स्तर से निकलने और स्वयं दीवार उभरे हुए, तराशे हुए दीवारगीर द्वारा अपने स्थान में ठीक से बैठाने का मामला है। भीतर शिखर छत और नीचे उत्तरोत्तर छाद्य अवलंबनों को सहारा दीवारों की पद्धति और स्तभों के संकेंद्रित वलयों के साथ मिलकर गर्भकुद्या के शीर्ष द्वारा दिया जाता है। ये स्तंभ क्रमिक ऊंचाई के होते हैं। जिन पर शहतीरों, ढलवां बल्लियों, आड़ी लकडियों का ढांचा जिसे तख्तो से और मजबूती दी जाती है, बनाया जाता है। वास्तविक जलसह (वॉटरप्रूफ) आच्छादन खडंजे की खपरैलो या धातु (तांबे या कांसे) की चादरों के रूप में तख्तों पर डाला जाता है। यह क्षेत्रीय जलवायुगत आवश्यकताओं के अनुकूल होता है और शिखर की भुजाओं और छाद्य अवलंबनों का गहरा ढाल न केवल भारी वर्षा के पानी को शीघ्रता से निकाल देता है, बल्कि तल की दीवारों और नीचे की मुख्य दीवार पर चित्रित गचकारी या काष्ठ शिल्पाकन की भी रक्षा करता है। इस प्रकार एक अध्यवसायी तुलनात्मक अध्ययन, दक्षिणी विमान प्रकार के साथ, उडीसा के पिदादेऊल या पश्चिम भारत की फलसनकर शैलियों या हिमालय की तराई के छत्रीदार मंदिरों के साथ दिखाई पड़ती समरूपता की अपेक्षा विशेष रूप से शिखर और छाद्यों के संबंध में स्थानीय जलवायुगत वातावरण की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन वर्गीकृत समधर्मिता का अधिक संकेत देगा।

गर्भकुद्या के द्वार के ठीक सामने और इसके और श्रीकोयिल के प्रमुख बाहरी द्वार के बीच में पड़ने वाला इदई नाली का मध्यवर्ती भाग, व्यावहारिक रूप से योजना में अर्धमंडप भाग वनाता है और इसलिए मुख्य श्रीकोयिल अधिरचना के अग्र प्रक्षेपण के रूप में उस पर शुकनासा की अधिरचना आती है। चालुक्यों और उनके समकालीनों के मंदिरों के समान ही यह श्रीकोयिल के शीर्ष पर महानासिका

के अतिरिक्त है।

बाहरी द्वार के सामने एक सीढ़ियों का जीना है। यह एक ही सोपान मार्ग हो सकता है जो द्वार के सामने से सीधे ऊपर जाने की सुविधा प्रदान करता है। या, प्रायः द्वार के सामने अवतरण मंच होता है और दोनों बाजुओं पर सोपान बने होते हैं। सामने के सोपान मार्ग अगल-बगल में सुरुल्याली जंगले होते हैं जिनके बाहरी फलकों पर शिल्पांकन किया गया रहता है। पार्श्व सोपानों में भी वैसा ही एक सीढ़ियों के सामने के किनारों पर उत्कीर्णनों सहित होता है। मध्य खंड, जिसके ऊपर अवतरण मंच होता है, का अग्रभाग इसी प्रकार शिल्पांकन युक्त होता है। द्वारपाल की आकृतियों सहित जंगलों पर ये शिल्पांकन ही श्रीकोयिल की बनावट में महत्वपूर्ण पाषाण शिल्पांकन हैं।

मंदिरों की इस श्रृंखला में शायद सबसे बड़ा परिसर वडक्कुन्नाथ या तेन कैलासम या श्री मूलनाथ मंदिर है, जो त्रिचूर शहर के मध्य में एक नीचे पहाड़ी अंतरीप पर चित्रोपम रूप से अवस्थित है। त्रिचूर शहर भी केरल प्रदेश के लगभग मध्य में है। इसके शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह मंदिर बारहवीं शताब्दी से अस्तित्व में है, तथापि इसकी नीव और भी प्राचीन हो सकती है। नलांबलम या आंतरिक मालिका प्रकार के भीतर तीन केंद्रीय संरचनाएं है। ये तीन स्वतंत्र मंदिर हैं, जो लगभग उत्तर-दक्षिण रेखा मे स्थित हैं और उन सबके मुंह पश्चिम की ओर हैं। पंक्ति में सर्वाधिक उत्तर में स्थित वडक्कुन्नाथ के वृत्ताकार श्रीकोयिल का गर्भगृह एक अनुप्रस्थ कर्ण दीवार से विभाजित है। पश्चिमी अर्धभाग, जिसमें शिव प्रतिष्ठापित है, का अपना द्वार और सामने एक सोपान और एक पृथक नमस्कार मंडप है। पूर्वी अर्धभाग देवी पार्वती को समर्पित है, जिसमें पूर्व में एक द्वार है। उत्तरी और दक्षिणी पार्श्वों पर छद्म द्वार या घनद्वार हैं। पाषाण निर्मित अधिष्ठान के ऊपर संधार संरचना की बाहरी दीवार और उसके प्रस्तर पर भित्तिस्तंभों और कूट, शाला और पंजर नमूनों के लघु मंदिरों के विशिष्ट शिल्पांकन हैं, जैसे कि तमिलनाडु के मंदिरों में हैं। धातु की चादरों की शंकु के आकार की ढलवां छत अपनी लटकती हुई ओलतियों के द्वारा इसे आच्छादित करती है। ओलतियों को दीवार से बीच बीच में निकले दीवारगीरों से सहारा दिया गया है। भीतरी दीवार ऊपर उठती हुई वास्तव में इस विशाल शंकु आकार की छत या शिखर को सभालती है जिसके ऊपर धातु की एक स्तूपी है। समूह मे सबसे दक्षिण में राम का दुमंजिला मंदिर स्थित है। योजना में वर्गाकार इसकी अधिष्ठान, दीवारें और प्रस्तर इसके चारों पार्श्वों में पांच पांच बार उभरे हुए हैं। पार्श्वो और पृष्ठभाग में बीच वाले उभारों में भित्तिस्तंभों के बीच छद्म द्वार हैं, जबकि पश्चिम में वास्तविक द्वार है। भित्तिस्तंभो के शीर्ष शाला मॉटिफ बने है। कोने के खंडों मे कोनो पर कर्णकूट हैं और बीच के खडों में पंजर। संकीर्ण अंतरालों में भित्तिस्तंभ जोड़ियों

पर लघु मंदिर मॉटिफ हैं। इन कूट, शाला पंजर उभारों पर ढलवां छत की लटकती हुई ओलतियां छाई हुई हैं, जबकि छत भीतरी दीवार के फलक पर ऊंचे लगे आंकड़ों और बल्लियों से नीचे ढलती है और बाहरी दीवार के शीर्ष पर टिकती है। लटकती हुई ओलतियों को बाहरी दीवार के ही ऊपरी भाग से निकले सूक्ष्मता से तराशे गए नारी आकृतियों के लकड़ी के दीवारगीर से और सहारा मिलता है। भीतरी दीवार और आगे ऊपर उठती है जिस पर चार भुजाओं वाली गुंबद के आकार की छत या शिखर है, जो धातु की चादर का है, जिसके ऊपर एक स्तूपी है। शिखर छत में उसकी चारों भुजाओं के मध्य मे चार नासिकाएं या बहिर्गत खिड़कियां हैं। राम और शिव मंदिर के बीच में एक तीसरा मंदिर शंकरनारायण या हरिहर को समर्पित है, जो योजना मे वृत्ताकार और दुमंजिला है। इसका अधिष्ठान और दीवारें भी इसी प्रकार उभरी हुई हैं। उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशाओं मे मध्य के बड़े खंड शाला प्रकार हैं जिनमें मकर मेहराब वाले स्तंभ तोरण के भीतर छद्म द्वार हैं। अन्य खंड कूट और पंजर प्रतिमानो के अनुरूप हैं—सभी दुमंजिले नमूने—जबकि अंतरालों में ऐसे ही छोटे आकार के दुमंजिले नमूने हैं जिनके साथ छोटे और अधिक निकट बनाए गए भित्तिस्तंभ युगलों के शाला शिखर मॉटिफ हैं। वडक्कुनाथ मंदिर के दक्षिण में खुले प्रांगण में सप्तमातृका समूह है और इन अंगभूत देवियों के प्रतीक के रूप में केवल पद्म पीठों की एक पंक्ति है जो केरल के मंदिरों की विशिष्टता है। तीनों केंद्रीय मंदिरों के मुखमंडपम पश्चिम मे हैं। शिव और हरिहर मंदिर के बीच में एक छोटा-सा गणपति मंदिर है। मदिरों की दीवारें प्रचुर मात्रा में चित्रांकित और काष्ठ कार्य और दीवारगीर अलंकृत रूप से तराशे हुए हैं। नलांबलम या स्तंभों से युक्त गलियारा केंद्रीय समूह को घेरे हुए है। इसके बाहर की ओर एक लंबा चौडा खुला प्रांगण है, जिससे लगा हुआ बाहर की ओर एक पक्का प्रदक्षिणा पथ है। कृष्ण, नंदी, परशुराम और षष्ट जैसे उपदेवताओं के लिए छोटे छोटे मंदिर भी बाहरी प्रांगण में हैं। दक्षिण-पश्चिम में षष्ठ का मंदिर, सुचारु, छोटा, पूर्वाभिमुखी, एकतल, अर्धवृत्ताकार संरचना, गजपृष्ठाकार और षष्ठ के उपयुक्त है, जिनका वाहन गज है। यह शायद निर्माण की केरलीय पद्धति में सबसे छोटा अर्धवृत्ताकार निर्माण है। बाह्य प्रांगण के उत्तर-पश्चिमी कोने में बड़ा कुट्टांबलम या ऑपेरा हाल है, जो आकार में आयताकार और विशिष्ट केरल शैली में निर्मित है। केंद्रीय मंडप के भीतर, सभागार के तराशे हुए स्तंभों के अलावा सुचारु रूप से खराद पर आकार दिए गए स्तंभ और भीतरी छत या वितान का काष्ठ कर्म संरचना की भव्यता को बढाता है। संपूर्ण परिसर एक विशाल पाषाण प्राकार से घिरा हुआ है, जिसमें चार मूलभूत दिशाओं में ढलवा त्रिअंकी छतों से आच्छादित चार मंजिले गोपुर केरल शैली में बने गोपुरों के बढ़िया उदाहरण हैं।

केरल के दक्षिण में एक अन्य बड़ा और महत्वपूर्ण मंदिर परिसर

पद्मनाथस्वामी या अनंलशयनम मंदिर है, जो त्रिवेद्रम है और पिछली दो शताब्दियों में जिसका संपूर्ण रूप से पुनर्निर्माण किया गया है। पाषाण निर्मित केंद्रीय मंदिर कक्ष उचित रूपेण दीर्घायताकार है जिसमे अनंतशायी विष्णु की लेटी हुई प्रतिमा है। यह दो मंजिला है और इसकी मजिलो पर ढलवां और त्रिअंकी प्रकार की छत है। दीवारें चित्रांकित हैं और कृष्ण, क्षेत्रपाल, नरसिंह, षष्ठ, गरुड़ आदि उपदेवताओ के लिए उपमंदिर वने हुए हैं। परिसर के आसपास खुला स्तंभयुक्त मंडप स्तंभों और पाषाण के धड और ईटो की अधिरचना वाले पूर्वी गोपुर सहित तमिलनाडु के मंदिरों की शैली में है, जबकि गोपुर के उत्तर में एक उपप्रवेश पारंपरिक केरलीय शैली में त्रिअंकी छत और किलिवसन नासिकाओं से युक्त है।

कृष्ण को समर्पित प्रसिद्ध गुरुवपुर मंदिर का श्रीकोयिल वर्गाकार और दो मंजिला है जिस पर धातु की चादरों वाली त्रिअंकी छत है, जैसी कि उपरोक्त दो मामलों में है। इसमें एक चुट्टांवलम और आसपास एक प्राकार है। अन्य उल्लेखनीय एकल या बहुमंजिले और लेटराइट, ईट और काष्ठनिर्मित, धातु की चादरों या खपरैलों की छतवाले मंदिर, तिरुवनचिकलम, ताली (कोझिकोडे के निकट) तालीपरांबा, तिरुप्राणगोड़े, पेरुमानम, त्रिक्कंदीयुर, त्रितल और सुकापुरम के शिवमंदिर, त्रिच्यांवरम और तिरुनवय स्थित रामा मंदिर, और कोडुंगल्लुर स्थित भगवती मंदिर हैं। तिरुवनचिकलम मंदिर वर्गाकार, संगीन चिनाई से निर्मित, दुहरी दीवारों वाला और दुमंजिला है। निचली ढलवां छत बाहरी दीवार पर टिकी है और ऊपर वाली छत उठी हुई भीतरी दीवार पर, दोनों छतें धातु की चादरों से युक्त हैं। ऊपर की छत की ओलतियां प्रचुर रूप से तराशे गए काठ के दीवारगीरों के सहारे से आगे बढ़ी हुई हैं और ढलान की दिशा में चार किलिवसल नासिकाएं प्रक्षिप्त हैं। दीवारों पर कुछ बढ़िया शिल्प और उत्कीर्णन हैं। शीर्षस्थ स्तूपी सोने का मुलम्मा चढ़े तांबे की है।

तालीपरांबा मंदिर भी लगभग समान है, आधार योजना पर चतुर्भुज और दुहरी दीवारवाला, दो मजिलों में छत से युक्त। निचली ढलवां छत ढलकर छोटी बाहरी दीवार के ऊपर आकर टिकती है और भीतरी दीवारों के शीर्ष पर पिरामिडी याकूट छाद्य (छत) है। सामने एक नमस्कार मंडप है, जिस पर एक ढलवां छत और दोनों छोरों पर एक प्रक्षिप्त त्रिअंकी है। टीपू सुल्तान के आक्रमणों के समय नष्ट किए गए बड़े गोपुरम के अवशेष अभी भी विद्यमान हैं।

कोझिकोडे के निकट ताली मंदिर इसी प्रकार का, वर्गाकार, दुहरी दीवार युक्त और दुमंजिला मंदिर है, जिसकी छत आधुनिक टाइलों (खपरैल) से वनी है। अधिष्ठान और दीवारों पर दोनों पार्श्वों और पीछे की ओर सामान्य पांच उभार हैं। बीच का उभार सबसे चौड़ा और प्रस्तर पर एक शाला से युक्त है। नीचे दीवार में भित्तिस्तंभों के बीच एक तोरण में छद्म द्वार है; छोरों पर स्थित खंडों में कर्णकूट

हैं, जबकि मध्यवर्ती सबसे छोटे खंडों में प्रस्तर के पंजर हैं। बीच के खाली स्थानों में भित्तिस्तंभो की पास पास बनी जोडियों के बीच संकरी खिड़कियां हैं। भित्तिस्तंभों पर पंजर शीर्ष हैं जो प्रस्तर के कपोतों की ऊंचाई तक पहुंचते हैं। इसका पाषाण शिल्प और नमस्कार मंडप के वितान पर काष्ठ उत्कीर्णन भी उत्कृष्ट स्तर का है।

उत्तरी केरल में तिरूवनगड का राम मंदिर अपने रैखिक अभिविन्यास युक्त आयताकार श्रीकोयिल में अद्वितीय है और वह यह कि आयताकार संरचना की दो छोटी भुजाओं में उसका प्रवेश द्वार है। यह दुमजिला है। सामने की ओर मुख्य द्वारयुक्त अग्र उत्थान लगभग ऊर्ध्वगामी है जबकि बाजू की दो लंबी भुजाओं और पीछे की छोटी भुजा पर निचले स्तर पर ढलवां छत है और ऊपर के स्तर पर मगरेदार त्रिअंकी छत है जिस पर लंबवत अक्षीय कंगूरे पर एक रैखिक पंक्ति में तीन स्तूपियां हैं। छतें तांबे की चादरो की हैं। सामने एक आयताकार मुखमंडप है, परंतु उसका लंबा अक्ष श्रीकोयिल के लंबे अक्ष से अनुप्रस्थ (आड़ा) है और इसके आनुप्रस्थिक पूर्वाभिमुख कंगूरे पर स्तूपियां स्थित हैं। चारों तरफ एक कम ऊंचाई का नलांबलम है।

त्रिच्चाम्बरम स्थित कृष्ण मंदिर भागवत से प्रसंगों को चित्रित करने वाले उत्कृष्ट काष्ठ उत्कीर्णनों के लिए उल्लेखनीय है। श्रीकोयिल की आधार योजना वर्गाकार और संधार प्रकार की है, जिस पर दोनों मंजिलों की छत तांबे की चादरों से आच्छादित हैं। निचली ढलुवां छत के साथ ही शुकनासा, जिसका अग्रभाग त्रिकोणी त्रिअंकी है, इदई नाली या रैखिक अंतराल मंडप तक बढ़ी हुई है, जिसके सामने एक स्वतंत्र नमस्कार मंडप स्थित है। ऊपर की चार भुजाओं वाली पिरामिडी छत में चारों तरफ प्रक्षिप्त किलिवसल नासिकाएं हैं जिनके अग्रभाग मेहराबदार या-घोड़े की नाल के आकार वाले हैं। शीर्ष पर केवल एक स्तूपी है। तिरुनवय विष्णु मंदिर भी इसी श्रेणी का है। इरत्तायाप्पन को समर्पित पेरुनामन शिव मंदिर उस श्रेणी का तिमंजिला संस्करण है, जिसमें सामने की ओर दो मंजिलों का सामने का अंतराल प्रक्षिप्त होता है और ऊपर की पिरामिडी छत इस अर्थ में अद्वितीय है कि वह अष्टभुजाकार है। यह एक अष्टभुज ग्रीवा के ऊपर उठी हुई है जिसमें सभी आठो अष्टांक फलकों पर किलिवसल नासिकाएं हैं। निचली छते खपरों और अष्टभुज शिखर धातु की चादरों से बनी है।

तिरुवल्ल्यमलै में साथ साथ खड़े राम और लक्ष्मण के जुड़वां मंदिर, जिसमें राम मंदिर पूर्वाभिमुखी और लक्ष्मण मंदिर पश्चिमाभिमुखी है, रोचक हैं। दोनों एक ही आधार योजना, उत्थान, वर्गाकार, संधार और रैखिक अग्रभाग में स्थित अंतराल मंडप के ऊपर निचले स्तर से प्रक्षिप्त त्रिअंकी छत के हैं। छतें धातु की चादरों से बनी हैं और चतुर्भुज पिरामिडी शिखर में चार किलिवसल नासिकाएं हैं और ऊपर सोने का मुलम्मा चढ़ी धातु की केवल एक स्तूपी है। दीवारों पर शिल्पांकन है जिसमें

लक्ष्मण मंदिर की दीवारों पर दशावतार की मूर्तियां विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। राम मंदिर का अभी हाल ही में नवीनीकरण किया गया है।

तिरुप्रायर स्थित राम मंदिर में एक वृत्ताकार, एकतल श्रीकोयिल है और यह अपने प्राचीन काष्ठ उत्कीर्णनों के लिए प्रसिद्ध है। नमस्कार मंडप मे प्रचुर मात्रा में काष्ठ उत्कीर्णन हैं जबकि मंदिर की दीवारों पर रोचक भित्ति चित्र हैं। वैकोम स्थिति श्रीकोयिल भी ऐसा ही, वृत्ताकार और एकतल है जिस पर विशाल, शकु के आकार की तांवे की चादरों वाली छत और केवल एक स्तूपी है। त्रिकोटिशनम का श्रीकोयिल एक अन्य प्राचीन संरचना है और ऐसे ही वृत्ताकार आधार योजना का, किंतु दुमंजिला है। इसी के समान पय्यानूर का श्रीकोयिल है, जिसका स्पष्टता से बना अधिष्ठान है और वढ़िया तराशे हुए नारी आकृतियों वाले दीवारगीरों से निचली ढलवां छत की ओलतियों को सहारा दिया गया है। इत्तुमानुर स्थित शिव मदिर में सादा वृत्ताकार एकतल श्रीकोयिल है और यह अपने चित्रांकनों, विशेष रूपेण नटराज के चित्रांकन के लिए उल्लेखनीय है।

त्रिचूर स्थित वडक्कुनाथन मंदिर के बाहरी अहाते में, जबकि, छोटा षष्ठ मदिर सादे, एकतल, अर्धवृत्ताकार और गजपृष्ठ विमान का उदाहरण है, तिरुवान्नूर स्थित शिव मंदिर इस श्रेणी के दुमंजिले और बड़े संस्करण का दृष्टांत है। नीचे के तल को ढंकती ढलवां छत और ऊपर अर्धवृत्ताकार मगरेदार छत है जिसका अग्रभाग त्रिअंकी और शीर्ष पर तीन स्तूपियों की एक पंक्ति है। पय्यानूर स्थित सुब्रह्मण्य मंदिर गज पृष्ठ श्रेणी की दुमंजिली संरचना का अन्य उदाहरण है, जिसमें एक वर्गाकार नमस्कार मंडप और एक अनुप्रस्थ रूप से आयताकार मुख मंडप, धातु की चादरों की छत से आच्छादित और चारों ओर एक कम ऊचाई का खपरैल युक्त नलांबलम है। त्रिप्परनगोडे स्थित जीर्ण शीर्ण मंदिर और कोझिकोडे के निकट तिरुवन्नूर स्थित मंदिर इसी वर्ग के दूसरे उदाहरण हैं। उत्तर मलाबार में मधुर स्थित तुलनात्मक रूप से आधुनिक अनंत विनायकार मंदिर गजपृष्ठ है और इसकी छत तीन स्तरों में है। नीचे की दो छतें ढलुवां और खपरैल युक्त हैं, जबकि ऊपरी एक ढालू छत या सायबान और अंतिम अर्धवृत्ताकार छत तांबे की चादरों की है।

कोडुंगल्लुर स्थित प्राचीन प्रसिद्धि का भगवती या दुर्गा मंदिर अब संपूर्ण रूपेण आधुनिक नवीनीकृत है, तथापि देसी शैली में ही है। मुख्य श्रीकोयिल दुमंजिला है और उसके बाएं शिव का एक उपमंदिर है।

दक्षिणी त्रावणकोर और कन्याकुमारी क्षेत्रों में संकेंद्रित तमिलनाडु के संलग्न जिलों के मंदिरों के सदृश्य, दक्षिणी शैली के विमानों से युक्त मंदिरों में उल्लेखनीय है—कन्याकुमारी का मध्य चोलकाल में निर्मित गुहनाथ स्वामी का पाषाण मंदिर, जिसकी अधिरचना नष्ट हो चुकी है; परवर्ती चोल या पाड्यकाल का पाषाण के धड़ पर ईट और गारे की अधिरचना युक्त, चार मंजिला पार्थिवशेखरपुरम मंदिर;

विजयनगर काल का त्रितल विमान युक्त वनतीर्थ मंदिर। इनमें सारे विमानों की आधार योजना वर्गाकार है। तिरुवल्लम मंदिर परिसर में परशुराम मंदिर और वलिय उदैयादिचापुरम मंदिर, जो पाषाण के धड़ और ईटों की बनी अधिरचना से युक्त हैं, सोलहवीं शताब्दी और बाद के वृत्त आधार योजना के द्वितल और त्रितल विमानो के उदाहरण हैं। इस प्रकार का सबसे बड़ा मंदिर परिसर सुचिंद्रम में है, जिसके भीतर नवीं-दसवीं शताब्दी तक की संरचनाएं हैं। इसमें एक चित्र सभा 1410 में, चेंपकरामन मंडपम 1471 मे और गोपुर लगभग 1545 में बनाए गए।

कनारा मंदिर, जैसा कि कजिंस ने उनका नामकरण किया है, एक रोचक समूह है। यद्यपि संख्या में कम हैं, किंतु पाषाण पटों की सादी ढलवां छतों की पार्श्वों को बंद करने की अपनी विशिष्ट व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध हैं। ऐसा उस स्थान पर होने वाली अत्यधिक वर्षा से अनुकूलन के लिए किया गया है। इसमें छत का ढाल काफी गहरा बनता है और नीचे की ओर उसका विस्तार वर्षा की मार से बचाता है। भीतर के सभागारों के पार्श्व जालियो से बंद कर दिए जाते हैं और प्रायः वे मंजिलों वाले होते हैं। भीतर प्रायः खराद पर तराशे हुए स्तंभ होते हैं, किंतु सामान्य रूप से खंभे छोटे, गोल मटोल और अनगढ़ बल्कि चालुक्य रूपाकारों के विकृत रूप हैं। उनके संबंधों का पहले उल्लेख किया जा चुका है और केतापि नारायण मंदिर के अतिरिक्त स्वयं भटकल में, और मुदाबिद्री और उसके आसपास भी ऐसे मंदिरो के उदाहरण हमारे सामने हैं।

भारतीय वास्तुशिल्पीय पारिभाषिक शब्दावली

अधिष्ठान : विमान या मंडप या ऐसी ही किसी संरचना का आधार, जो दीवारों और भित्तिस्तंभों या स्तंभों को अवलंब प्रदान करने वाले एक विशिष्ट वास्तुशिल्पीय रूपाकार या अवयव बनता है और जिसमें विशेष अलंकरण युक्त विभिन्न स्तर होते हैं।

अल्पनासिका : किसी अर्धवृत्ताकार मंदिर का प्रक्षेपित अग्रभाग, जो भित्तिस्तंभों के ऊपर 'कुदु' मेहराब जैसा दिखाई देता है और जो सामान्यतया कूटों, कोष्ठों और पंजरों में मूलभूत रूप से एक छोटे विवर या गवाक्ष के रूप में काम आता है।

अल्पविमान : छोटा, एकतल विमान। उसके अंगो के नाम हैं—अधिष्ठान, भित्ति या पद, प्रस्तर, ग्रीवा, शिखर और स्तूपी। यह सामान्यतया हार से रहित होता है।

आमलक, आमलसर, आमलशिला : कड़ियों से युक्त मसूर के आकार का या गोलाभ अंग जो आमलक (आंवले के समान दिखता है और उत्तरी शैली के शिखर पर उसकी एक विशिष्टता के रूप से अवस्थित होता है। कदब चालुक्य रूपाकारों में शीर्ष के रूप में, कभी कभी दक्षिणी विमान रूपाकार के ग्रीवा शिखर अवयव के विकल्प के रूप में भी—अपनाया गया।

अनर्पित हार : प्रत्येक विमान तल के कगार पर लघु मंदिरों (हार) की कड़ी जो ऊपरी तल के धड़ से, मध्यवर्ती स्थान सहित पृथक होती है। (अर्पित का विपर्यय)

अंतर भित्ति : ब्रहुंभित्ति गर्भगृह या तल की भीतरी दीवार

अर्पित हार : प्रत्येक विमान तल के कगार पर लघु मंदिरों की एक शृंखला जो बिना किसी मध्यवर्ती अंतराल (स्थान) के ऊपरी तल के धड़ (हर्म्य) से जुड़ी होती है। (अनर्पित का विपर्यय)

अर्धमंडप : प्रमुख मंदिर या दो पंक्तिबद्ध स्तंभों से युक्त मंडप का दूरस्थ

भाग, जैसा कि शैलोत्खनित गुफा मंदिरो में होता है।

अष्ट परिवार : केंद्रीय मंदिर के साथ मूल और गौण दिशाओं में आसपास आठ उपमंदिरों (नंदी मंदिर सहित) का अभिविन्यास

आयतन : मंदिर, विमान

आयतास्र विमान : आधार योजना समतल चित्र पर दीर्घायत विमान जिसकी छत डिब्बे के शीर्ष जैसी हो

बाह्य भित्ति : अनेक दीवारों वाले गर्भगृह या तल की सबसे बाहरी दीवार (अंतरभित्ति का विपर्यय)

भद्रा : विमान या प्रासाद के धड़ की हर बाजू के मध्य में उभरा हुआ या प्रक्षिप्त भाग जो कोनों प्रक्षेपों (कर्णों) से पृथक है।

भद्राशाला : विमान के तलो के ऊपर हारों के प्रत्येक पार्श्व के मध्य में, दीर्घायत, डिब्बे और शीर्ष वाले आयतास्र प्रकार का लघु मंदिर

भित्ति : दीवार

भित्ति तोरण : दीवार पर आलंकारिक वंदनवार, सामान्यता मकर तोरण जो दो भित्तिस्तंभों के सहारे से बधा प्रतीत होता है (देखिए, तोरण, मकर तोरण)

भूमि : वक्र रेखीय अधिरचना (शिखर) या उत्तरी शैली के मंदिर में 'अंड' की एक अवस्था, प्रायः संपीड्य आमलकों, कर्णामलको या भूमि आमलकों द्वारा कोनों पर चिह्नित

भूत : पिशाच, प्रेत

चतुर्मुख : मंदिर या विमान जिसमें चारों ओर प्रवेश द्वार हों।

चित्रपोतिका : टोडे जिन पर लताओं, फूलों आदि के उत्कीर्णन या चित्र हों।

देवकोष्ठ : मंदिरों और मंडपों की दीवारों पर बने ताक जिनमें देवताओं की मूर्तियां हों; प्राय तोरण या मंदिर मॉटिफों, कूट, शाला, पंजर या कुदु या उद्‌गम से सज्जित

गला, ग्रीवा : गरदन; वह रोशनदान जो विमान प्रकार में उसके पार्श्वों में प्रकाश और हवा के लिए खुले विवर (नासिका) सहित छत (शिखर) को ऊंचा उठाता है। प्रासाद प्रकार में ग्रीवा आमलक के नीचे किंतु नासिका रहित होती है

गर्भगृह : मदिर कक्ष या वह कक्ष जिसमें प्रमुख देवता प्रतिष्ठित हों

गोपुर : मुख्य फाटक या प्रवेश; किसी मंदिर, राजभवन या नगर को घेरने वाली दीवारों में बने प्रवेश या प्रवेशों के ऊपर बनी तल (मंजिल) युक्त संरचना

हार : विमान के प्रत्येक तल के ऊपर लघु मदिरों की माला जिसमें

कूट, कोष्ठ या शालाएं और पंजर जो छत से ढके रास्ते या उसके सदृश्य दिखाई देने वाले जंगले (हारांतर) से अतर्संबंधित हों।

हारांतर : देखिए **हार**

कदलिका करण : दीवारो के ऊपर छत के लिए (पाषाण) पटिए या ईटो को उत्तरोत्तर अंतर्मुखी रखने की पद्धति जिससे छत बनाने का स्थान संकरा होते होते अंत मे शीर्ष पर इतना ही रह जाए कि उसे केले के गुच्छों के समान परस्परवादी ढंग में एक पटिए द्वारा आच्छादित किया जा सके

कदंब चालुक्य : प्रमुखतया रेखा नागर शैली प्रासाद या मंदिर का रूप भेद, जिसमें अधिरचना स्तर कपोत और कंठ युक्त होते है और जो एक वृत्ताकार ग्रीवा या गले और एक आमलसार से, प्रायः शुकनासिका के बिना, आवृत्त होते हैं।

कलश (लसुन) : चौड़े मुंह वाला घट; स्तभ शीर्ष का निम्नतम अवयव जिसका नामकरण उसके आकार के आधार पर है। उत्तरी मंदिरों मे आमलक के ऊपर का घट के आकार का शृंग

कल्याण मंडप : दक्षिण भारतीय मंदिरो में वह मंडप जिसमें उत्सव मूर्तियो या कास्य प्रतिमाओं के रूप मे देवी देवताओं, वार्षिक विवाह समारोह किए जाते हैं

कपोत : कबूतर : लटकते हुए कोर्निस, सामान्यतया आकुंचित, मुख्य धरण से आगे तक निकले हुए ताकि धरण से पीछे की ओर की छत का और कुमुद और पद्म जैसे अधिष्ठान की कड़ी के सिरों या अंतरालों का पानी बाहर निकल सके

कर्णकूट : विमान के प्रत्येक तल के कोने पर, प्रस्तर के ऊपर, एकल स्तूपी युक्त लघु सम चतुरास्त्र (वर्गाकार) मदिर। यह विरले ही वृत्ताकार या अष्टास्र होता है।

कर्णशाला : बेलनाकार मेहराबदार छत सहित लघु आयतास्र मदिर जो किसी सरचना के, सामान्यतया गोपुरों में प्रत्येक तल के कोने पर अवस्थित होते हैं।

कट्टू : स्तंभ के वर्गाकार निम्न और शीर्ष भाग के बीच अंतर्वर्ती अष्टभुज या बहुभुज भाग

किलिवसल : नासिका के लिए केरलीय शब्द। देखिए **नासिका** और **शुकनासिका**

कोष्ठ : शाला के सदृश्य

क्षुद्रनासिका : छोटी नासिका; लघु अर्धवृत्ताकार मंदिर का प्रक्षिप्त अग्र छोर जो एक छोटे विवर के रूप मे काम आने वाले भित्तिस्तंभों पर मेहराब सहित हो; सामान्यतया हारंतर मे प्राप्त

कुदु : नीड़, घोंसला, आकुंचित कपोत के बाहर प्रक्षिप्त मेहराबदार या अश्वाकार विवर, मूलभूत रूप से शायद पक्षियों (कपोतो) के बसेरे के लिए निर्मित किंतु बाद के उदाहरणों में मानवाकृतियों (मिथुन आदि) से युक्त, जिसके ऊपर कलश होता है। मेहराब सामान्यतया मकर तोरण है।

कुद्य स्तंभ : दीवार की सतह पर नक्काशी के रूप में बने भित्तिस्तंभ

कुंभ : स्तंभ शीर्ष के ऊपर कलश और ताड़ी का अवयव, कंद जैसे गोल आकार का। मूलरूप से संकरे, छोटे मुंह वाला चपटा घर

कूट : सम चतुरास्र मंदिर जो चारों पार्श्वो पर अभिसरित छत और एकल कलश युक्त, या वृत्ताकार या अष्टभुजाकार गुंबद जैसी छत और एकल कलश या स्तूपी युक्त हो।

ललाट बिंब : 'शिखर आकृति' : किसी प्रवेश या द्वार की सोहावटी पर प्रमुख सजावटी मॉटिफ या आकृति, जो कभी कभी बृहद द्वार तक भी विस्तृत होता है।

महामंडप : अर्धमंडप या अंतराल के एकदम आगे स्तंभयुक्त मंडप, या गुफा मंदिरों में दो पंक्तियों में बद्ध स्तंभों सहित मंडप का समीपस्थ अर्ध भाग, बंद या खुला।

महानासिका : अर्धवृत्ताकार विमानों के सामने के पक्ष को दिखाने वाले ग्रीवा और शिखर के पार्श्वो से प्रक्षिप्त नासिका जैसा भाग जिसमें तोरण युक्त स्तंभ होते हैं।

मकर तोरण : प्रवेश द्वार पर सीधे या मेहराबदार वंदनवार की सजावट जो दो खंभों के शीर्ष को जोड़ती है। वंदनवार या तोरण सजावटी माला के रूप में मकरों के मुंह से निकलती है, जो अवलंब देने वाले स्तंभों के शीर्ष पर अवस्थित होते हैं। ऐसे मकर तोरण देवकोष्ठों, या मंडप के प्रवेशों या दीवारो (भित्ति तोरण) पर पाए गए हैं।

मालास्थान : शीर्ष के नीचे स्तंभ या भित्तिस्तंभ के दड का ऊपरी छोर, जो पद्मबंध से लटकती माला से युक्त होता है।

मंडप, मंडपम : खुला या बद स्तंभयुक्त सभागार, (हाल)

मुखमंडप : मंदिर के प्रवेश पर स्थित सामने के मंडपो की शृंखला में प्रथम, आरंभिक मंदिरों में प्रायः महामंडप का पर्यायवाची

नासिका : 'नाक'; प्रक्षिप्त मेहराव युक्त खिड़की। देखिए **अल्पनासिका, क्षुद्रनासिका, महानासिका** और **शुकनासिका**। केरल के मंदिरों मे इसे किलिवसल या शुकनासिका प्रवेश कहा जाता है।

नाट्य मंडप : नृत्य के लिए मडप। देखिए **नृत्तमंडप**

नवरंग : केंद्रीय खंड को घेरते हुए चार स्तंभों से युक्त मंडप, परिधि पर बारह मंडप और जो केंद्रीय स्तंभों की सीध में होते हैं और केंद्रीय मंडप के चारों ओर आठ खंडों का गठन करके कुल नौ खंड बनाते हैं; चालुक्य मंदिरों और उनके उद्‌भूतों की विशिष्टता

निद : लघु अर्धवृत्ताकार मंदिर। पंजर के समान

निरंधार : गर्भगृह के चारों ओर एक आच्छादित मार्ग से रहित क्योकि गर्भगृह की दीवार एकल और मोटी होती है। (सधार के विपरीत)

नृत्तमंडप : देखिए नाट्य मंडप

ओम : स्तंभ या भित्ति स्तंभ का आधार पीठ

पद : स्तंभ

पद्‌म : कमल, फलक के नीचे शीर्ष अवयव जिसका आकार पंखुरियों सहित कमल के समान है

पद्‌म बंध : चौड़ी पट्टिका, स्तभ के दंड के शीर्ष का वलय, कमल की पंखुरियों की पंक्तियों के बीच सजावटी पट्टियों से चिह्नित, जो दंड को शीर्ष से पृथक करता है।

पालि : पद्‌म के समान शीर्ष अवयव, किंतु कबु आकार की पंखुरियों से रहित

पंजर : निंद के समान लघु अर्धवृत्ताकार मंदिर

परिवार देवता : आवरण देवता भी कहे जाते है। परिवारालय या परिवार मंदिरों में प्रतिष्ठित उप देवगण

पट्ट : टोडे या कपोत के मध्य मुख पर सादी या अलंकृत पट्टी जैसे टोडे की तरंग आकृतियों को बांधती है

पट्टिका : अधिष्ठान की प्रक्षिप्त ऊपरी पट्टी जो ऊर्ध्व प्रतिमान या मानसूत्र के अनुसार होती है—पर्याप्त मोटाई का एक प्रमुख अलंकरण है।

फलक : शीर्षफलक : पोतिका को अवलंब देने वाले स्तंभ के आकार दिए गए शीर्ष या अंतस्थ सादुराम के ऊपर चौड़ा पटरा

पिदादेऊल : मंदिर के ऊपर सोपानयुक्त या स्तरयुक्त अधिरचना सहित

सरचना, जैसी कदंब चालुक्य मंदिरों में है। यह शब्द ओड़िसा (कलिंग) वास्तुशिल्प में मुख्य प्रासाद, जगमोहन के सामने वाले मंडप के लिए या ऐसी अधिरचना (रेखादेऊल से पृथक) से युक्त छोटे वैयक्तिक मंदिरों के लिए प्रयुक्त होता है।

पीठ : आधार मच, आधार

पोतिका : स्तंभ के ऊपर टोडे या दीवारगीर। देखिए **तरंग पोतिका, मकर पोतिका, चित्र पोतिका**

प्रणाल : पानी निकालने के लिए परनाले के समान प्रक्षिप्त (बाहर निकली) टोटी

प्रासाद : दक्षिण के विमान रूपाकार से भिन्न उत्तरी शैली का मंदिर

प्रस्तर : दीवारों और स्तंभों के ऊपर विभिन्न आकारो, यथा—उत्तीर (धरन), वाजन, कपोत, अलिंग और अंतरी से युक्त भाग

रंगमंडप : नवरंग के समान, जो दक्षिणी विमान मंदिरों के महामंडप के अनुरूप होता है

रथ : वाहन : एकाश्मक विमान

रेखा प्रासाद : विशिष्ट उत्तरी शैली का मंदिर रूपाकार, जो वक्र रेखीय अधिरचना या अंडयुक्त होता है जिसके पार्श्वो पर भद्रा प्रक्षेपणों और रेखाओं (वक्ररेखाओं) पर एक ग्रीवा और एक आमलक ऊपर कलश युक्त हो।

सभा मंडप : दक्षिणी मंदिरों में नटराज की वेदी सहित मंडप, सामान्यतया दक्षिणमुखी

सादुराम : स्तंभ का आधारीय, मध्यवर्ती या अंतस्थ वर्गाकार भाग जो अष्टभुज, बहुभुज या वृत्ताकार अंतर्वर्ती अंगों द्वारा पृथक निरूपित होता है।

शाला मंदिर : आयतास्र प्रकार का विमान जिस पर बेलनाकार छत और उसके कंगूरों पर स्तूपियों की एक शृंखला होती है।

शाला शिखर : शाला मंदिर का विशिष्ट शिखर, बेलनाकार, डिब्बे जैसे शीर्ष का या अंतर्मुखी नाव के आकार का

संधार : दुहरी दीवार वाली संरचना मे गर्भगृह के चारों ओर बंद गोलाकार मार्गयुक्त सरचना (निरंधार का विपर्यय)

स्नापना मंडप : उत्सवों के दौरान कांसे की उत्सव मूर्ति का अभिषेक (स्नापना) करने के लिए बना मंडप

शिखर : एक कलश युक्त गुंबदाकार या चतुर्भुज ग्रीवा के ऊपर विमान की छत, जो कगूरो पर अनेक कलशों से मेहराबी हो, या क्षैतिज

भाग के ऊपर अनेक कलशों से युक्त अर्धवृत्ताकार छत। उत्तरी प्रासादो की संपूर्ण अधिरचना या अंड

स्तंभ : खंभा (पाद)

स्तंभ तोरण : प्रवेश पर अलकरण या मुक्त रूप खड़ा अलंकृत प्रवेश जिसमें दरवाजे न हों किंतु स्तंभों के शीर्ष को जोड़ने वाली वदनवार हो। वंदनवार प्रमुखतया पत्तों या फूलों की माला के रूप मे होता था। कितु बाद मे उसने एक या अनेक वक्र और अलंकृत अर्गला का रूप या मकर मुख से निकलती पुष्पो और पर्णो की मेहराब का रूप धारण कर लिया जो अवलंब देने वाले स्तंभो पर खड़ी होती है।

स्तूपी, स्तूपिका : कलश, रूपात्मक दृष्टि से उष्णीय, जिसने बाद के समय में पूर्णघट या पूर्ण कलश का रूप ले लिया, और जो विमान, गोपुर, या किसी भी अन्य सरचना का सर्वोच्य अवयव बन गया

शुकनासिका (शुकनासा) : उत्तरी प्रासादों में अंतराल के ऊपर और ग्रीवा तथा आमलक के नीचे किसी अधिरचना के स्तरों (तलों) का एकीकृत बाह्य प्रक्षेपण जो उसकी छत का निर्माण करता है, जिसका अग्रभाग नासिका के समान होता है और जो मेहराब के भीतर उत्कीर्णन को संलग्न करता है। दक्षिणी विमान प्रकारो मे, जैसे कि चालुक्य और उनके व्युत्पाद्यों में अपनाए गए रूपांतरों में अग्रनासिका या महानासिका या केवल छोटे सादे विमान प्रकारो मे ग्रीवा शिखर क्षेत्र की प्रक्षिप्त खिड़की का, और बहुमंजिले प्रकारों में तलों के अग्र प्रक्षेपण के सहित, मूल रूप से आगे की ओर प्रक्षेपण, जिससे यह समस्त निम्न अंतराल या अर्धमंडप के ऊपर की ऊपरी छत (चांदनी) पर आ जाता है।

ताड़ी : कलश के ऊपर और कुंभ के नीचे तश्तरी के आकार का शीर्ष अवयव

तल : विमान या गोपुर की मंजिल

तरंग : लहर : टोडे या पोतिका का लहरों जैसा वलयाकार अलंकरण

तरंग पोतिका : पोतिका या दीवारगीर जिस पर तरंगों की आकृति बनी हो

तोरण : मुक्त रूप से खड़ा सजावटी पत्तों और फूलों का वंदनवार, जो दो खंभों पर अवलबित होकर प्रवेश का निर्माण करता है और प्रायः ऊर्ध्वस्थ रूप से अंतर्गुफित (जाल तोरण) होता है; काष्ठ

या पाषाण अनुकृति, जो अत्यधिक अलकृत और उत्कीर्णन युक्त हो, मकर तोरण का रूप धारण करते हुए दो स्तंभो पर अवलंबित है। उत्सव के अवसरों पर, नगरो, राजभवनों या मंदिरों के रास्तो पर इसे प्रायः अस्थायी रूप से खडा किया जाता है, (जैसा कि दक्षिण भारत में सामान्य है)। जब यह द्वार शोभा के रूप में बनाया जाता है, तो गृहद्वार तोरण कहलाता है। दीवार पर किसी ताक के ऊपर वना हो, तो भित्ति तोरण या देवकोष्ठ पर या प्रवेश का संकेत देने के लिए बनाए जाने पर घनद्वार कहलाता है। मुक्त रूप से खड़ा किया जाए, तब इसे स्तंभ तोरण कहते हैं।

तोरण स्तंभ : वह स्तंभ या भित्तिस्तंभ जो तोरण को अवलंब देता है

त्रिकूट, त्रिकूटाचल : एक सामान्य अधिष्ठान से सबद्ध एक ही रेखा में या एक सामान्य मंडप के पास अवस्थित तीन विमान, जैसे चालुक्य प्रकारों में हैं।

उद्गम : विशिष्ट रूप से उत्तरी शैली के मंदिरो और बौद्ध गुफा मंदिरों की मुखाग्र मेहरावों में प्राप्त समाचयी कुदु जैसी मेहरावों या अर्ध मेहराबों के गवाक्षित नमूने, उत्तरी मंदिरों में देवकोष्ठों के ऊपर शीर्ष के रूप में प्रयुक्त और मदिर वेदियों और मडपों की दीवारों पर आकृतिमूलक ताकों के लघु मंदिर के स्थान में भी इनका प्रयोग किया गया है।

उपान : अधिष्ठान का निम्नतम भाग या पाया, जो ऊर्ध्व प्रतिमान से बाहर तक प्रक्षिप्त और जिस पर जगति अवस्थित हो। यह विमान निम्नतम दृश्य भाग है, जिसकी उच्चतम सीमा स्तूपी होती है।

उपपीठ : अधिष्ठान से नीचे अतिरिक्त और अलंकृत मंच या उप आधार, जिस पर अधिष्ठान पर बनाए गए उत्कीर्णन दुहराए जाते है, जो प्रायः संख्या में कम या सादे होते हैं।

उत्सव मंडप : उत्सवों के समय उत्सव देवताओ की कांस्य प्रतिमाएं रखने के लिए मंडप

वेदिका : जगला

विमान : उपान से स्तूपी (कलश का आधार) तक मंदिर, संपूर्ण मंदिर में एकतल विमान हो तो अधिष्ठान, पद (स्तभ), भित्ति, प्रस्तर, ग्रीवा, शिखर और स्तूपी सम्मिलित हैं, जबकि एकाधिक मंजिल के विमानों में नीचे निम्नतम प्रस्तर और ऊपर ग्रीवा, शिखर

और स्तूपी के बीच में तल (मजिले) भी होते हैं

व्याल : सिंह सदृश आकृति

व्याल माला, व्यालवारी : व्यालों से युक्त आलंकारिक चित्रवल्लरी, जो सामान्यतया अधिष्ठान का अंग और प्रत्येक तल के प्रस्तर के ऊपर होती है। मूल काष्ठकार्य में ये आडी कड़ियों के सिरो को चिहित करती है।

अनुक्रमणिका

मुद्रक : ताज प्रेस ,ए / 35-4, मायापुरी फेस I, नई दिल्ली-110064